वरमाला से पाया ज्ञान उजाला

मुनि धर्मेश

• प्रकाशक •

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग

बीकानेर (राज.)

❖ वरमाला से पाया ज्ञान उजाला

❖ मुनि धर्मेश

❖ प्रथम संस्करण : मई 2005, 2100 प्रतियां

❖ अर्थ सहयोगी :
स्व. श्री चन्दमलजी धोका परिवार, बैंगलोर

❖ मूल्य : 20/-

❖ प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)
दूरभाष : 2544867, 2203150

❖ मुद्रक :
कल्याणी प्रिण्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरभाष : 0151-2526890

स्वकथ्य

प्रभु महावीर ने जीव का लक्षण इस प्रकार बतलाया है –

'नाणं च दंसण चेव, चारित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं।।'

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग – ये जीव के लक्षण हैं। जीव के इन लक्षणों को अनादिकालीन कर्म–वर्गणाओं ने आच्छादित कर रखा है जिसके फलस्वरूप यह आत्मा जन्म–जरा–मरण की व्याधियों से व्यथित होती हुई, उस स्वाभाविक आत्मा से विमुख होती हुई, वैभाविक परिणति के बहाव में बहकर, भ्रमित बनकर, संसार के विषय–भोग में आसक्त बनकर स्वयं के साथ अन्य को भी भ्रमित करने में आनन्द मान लेती है। पर जब आत्मा का वह आवरण निमित्त पाकर कमजोर पड़ता है अर्थात् उसका क्षयोपशम होता है, तो उस आत्मा की दशा व दिशा में कैसे मोड़ आ जाता है – इसी का चित्रण 'वरमाला से पाया ज्ञान उजाला' के कथानक में किया गया है। इसके मुख्य पात्र प्रचंड, अरुण, शिवसुंदर, गंगेश, स्वयंप्रभा एवं श्रेष्ठी सागरचन्द्र, सुमतिचंद्र, सिद्धिदेवी आदि हैं। श्रावकरत्न कोटानिवासी भूरीलालजी पोरवाल, जो कोटा–गच्छप्रमुख श्री हरखचंदजी महाराज (जो पूज्यश्री श्रीलालजी म.सा. के संसारपक्षीय बइनोई थे) के परम भक्त थे। हरखचंदजी म.सा. ने पूज्यश्री श्रीलालजी म.सा. के शासन में अपने शिष्य समुदाय सहित विलीनीकरण कर दिया तब इस परम्परा के अनन्य भक्त बन गये। जब स्व. आचार्यश्री नानेश का वि.स. 2029 में टोंक से बूंदी होकर कोटा पदार्पण हुआ तब आपने विहार में साथ रहकर खूब सेवा बजाई। साथ ही, हम छोटे संतों का मन बहलाने हेतु यह कथा मुझ पर घटा–घटाकर सुनाते थे, लेकिन काल के प्रवाह में यह कथा, रोचक होते हुए भी, विस्मृत हो गई लेकिन प्रवर्तक श्री उमेश मुनिजी म.सा. 'अणु' की 'लग्न की वेला' नामक पुस्तक हाथ में आने पर स्मृति पुनः ताजी हो उठी। इसको मैंने गद्य–पद्य, दोनों, विधाओं में लिखने का प्रयत्न किया। इस उपरोक्त शीर्षक से, जिसमें पद्य के बोल हैं – (तर्ज–जब तुम्हीं चले परदेश..।) ले मन में उमंग अपार, अरुणकुमार, जान सज आते। वरमाल पहन मुड़ जाते।। टेर।। इसकी लगभग हजार कड़ियां हैं और गद्य रूप से आपके सामने प्रस्तुत है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि इन दो विधाओं में इस कथानक को गाकर, पढ़कर, सुनकर युवकों के मन की अन्तःप्रेरणा जगेगी।

इति शुभम्।।

–मुनि धर्मेश

प्रकाशकीय

'वरमाला से पाया ज्ञान उजाला' पुस्तक प्रकाशित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत कथानक भोग से त्याग, राग से वैराग, प्रेय से श्रेय की ओर अग्रसर करने में पूर्णतया सक्षम है। आकार में लघु होते हुए भी कथानक प्रेरणा की दृष्टि से विराट् है।

भोगों से विरक्त अरुणकुमार पुनः भोगों में अनुरक्त बनकर दूल्हा रूप में विवाह मंडप में पहुंचता है। वर–वधू परस्पर वरमाला पहनाते हैं। विवाह की शेष रस्में पूरी करने की तैयारी होती है तब संयोग से वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। होश आने पर पूर्वभव स्मरण हो आता है। उसी समय विंरक्त बन दोनों पति–पत्नी अपने–अपने माता–पिता के साथ दीक्षित हो जाते हैं।

शासन प्रभावक, आदर्श त्यागी, तपस्वी, विद्वान श्री धर्मेशमुनिजी म.सा. ने इतिहास, काव्य, चिन्तन आदि विधाओं में तो साहित्य सर्जना की ही है, कथा साहित्य में भी आपकी अनेक रचनाएं हैं। प्रस्तुत प्रेरक कथा साहित्य के लिए हम मुनिश्रीजी के आभारी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन स्व. श्री चन्दनमलजी धोका परिवार – बैंगलोर के अर्थ–सौजन्य से किया जा रहा है, तदर्थ संघ धोका परिवार, बैंगलोर का आभारी है। आशा है, भविष्य में भी उनका इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा।

निवेदक

शांतिलाल सांड

संयोजक – साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ. भा. सा. जैन संघ

समता भवन, बीकानेर (राज.)

अर्थ-सहयोगी पुण्यश्लोक स्व. श्री चन्दनमलजी धोका एवं उनकी सहधर्मिणी स्व. श्रीमती केलीबाई धोका : संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत पुस्तक पुण्यश्लोक स्व. श्री चन्दनमलजी धोका और स्व. श्रीमती केलीबाई धोका की पुण्य स्मृति में उनके यशस्वी, समाजसेवी, दानवीर पुत्रों के अर्थ–सहयोग से प्रकाशित की जा रही है। स्व. श्री चन्दनमलजी धोका का जन्म 'गोदाजी का गांव', तहसील भीम, जिला राजसमन्द में हुआ था। गोदाजी का गांव जहां राजस्थान की अरावली पर्वत श्रेणियों की प्राकृतिक शोभा से भरपूर है, वहीं इस गांव की रत्नकुक्षि से अनेक स्वनामधन्य आत्माओं ने भी जन्म लेकर अपनी मातृभूमि के यश का दिग्दिगन्त में विस्तार किया है। स्व. श्री चन्दनमलजी धोका भी इसी प्रकार की विभूति थे और सौभाग्य से आपको धर्मप्राण, दानवीर, धर्म–सहायिका श्रीमती केलीदेवीजी धर्मपत्नी के रूप में प्राप्त हुई। श्री चन्दनमलजी धोका अपनी जन्मभूमि और कर्मभूमि हेतु सदैव सेवार्पित रहे। धोका दम्पती आदर्श सद्गृहस्थ, परदुःखकातर और दानधर्म में विशेष रुचिवान थे। आपने अपने गांव में विद्यालय, औषाधालय और विश्रामगृह आदि निर्माण में सदैव अग्रणी सहयोगी भूमिका निभाई। इसलिए सम्पूर्ण ग्राम और क्षेत्र में आप दोनों समादरणीय रहे तथा आज भी आप दोनों की स्मृति प्रेरक मानी जाती है। कालान्तर में आपने कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर को अपनी कर्मभूमि बनाया।

जीवन के सतरंगी गुणों से युक्त धोका दम्पती के सभी सात पुत्र सर्वश्री भंवरलालजी, मोतीलालजी, सम्पतराजजी, उत्तमचन्दजी, मदनलालजी, किरणलालजी और गौतमचन्दजी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय तथा परिवार, समाज और राष्ट्र की सेवा में समर्पित रहते हैं। सेवाकार्यों में आप सभी को विशेष रुचि रहती है। उदारता आप सभी का सहज गुण है।

धोका दम्पती को 4 धर्मशीला पुत्रियों की भी प्राप्ति हुई। ये हैं – सौ. शांतिबाई नाहर, प्रेमाबाई भंडारी, सौ. पिस्ताबाई परमार एवं सौ. मैनाबाई रूनवाल। चारों पुत्रियां दोनों कुलों के गौरव को अपने शील–स्वभाव से आगे बढ़ा रही हैं।

शासनदेव से प्रार्थना है कि यशस्वी, दानवीर, संघ समर्पित और समाजसेवी धोका परिवार भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में नित्य नवीन आयामों को स्पर्श करें और अपनी जन्मभूमि गोदाजी का गांव और परिक्षेत्र तथा वर्तमान कर्मभूमि बैंगलोर के विकास में उदारतापूर्वक सहयोग करते रहें।

इस पावन अवसर पर हम शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनिजी की निम्न पंक्तियों को उद्धृत कर परिचय को विराम देते हैं – वरमाला से पाया ज्ञान उजाला यह पंक्ति एक जाज्वल्यमान इतिहास की साक्षी है और किसी भी प्रसंग से ज्ञानमार्ग को स्वीकार करने की प्रेरणा प्राप्त करने का अविस्मरणीय आदर्श।

शुभम् भूयात्

मोहनलाल चोपड़ा

बैंगलोर

वरमाला से पाया ज्ञान उजाला

(१)

भारत–भू पर स्थित कुशस्थलपुर नगर अपने समय का एक गौरवशाली ऐतिहासिक नगर था। वहाँ के राजप्रसाद एवं उसके पास ही राज्याधिकारियों की आकाश को छूती हुई अट्टालिकाएं एवं प्रतिष्ठित नगरश्रेष्ठीजनों की हवेलियां और उन पर फहराने वाले ध्वज उसकी ऐश्वर्यता एवं प्रतिष्ठा की अभिव्यक्ति दे रहे थे। साथ ही राजमार्ग से सटी व्यापार–वीथिएं साफ–सुथरी, श्वेत पाषाण से मंडित सड़कें, उस नगर की समृद्धि का परिचय दे रही थी।

आवागमन के प्रचुर साधन एवं मार्गों की प्रशस्तता, निर्भयता से व्यापारियों का निरन्तर देश–देशान्तरों से आवागमन जारी रहता था। जिसमें कुशस्थलपुर नगर की व्यापारिक प्रतिष्ठा भी सुदूर प्रांतों में फैली हुई थी। यहां का व्यापारी वर्ग अपनी व्यापारिक कौशलता से उस की महिमा को मंडित करने में सहायक था, तो जन–साधारण अपनी–अपनी कला–वाणिज्य आदि कौशल से भरपूर संपन्नता की अनुभूति करता था। यहां तक कि यहां का कृषक वर्ग भी कृषियोग्य विस्तीर्ण भूमि एवं उसके सहयोगी सिंचाई के साधन– तालाब, कुएं, वापियें आदि उपलब्ध सुव्यवस्थाओं से अपने श्रम को सार्थक करता हुआ सुखद जीवन व्यतीत कर रहा था, जिसके कारण अन्याय, अनीति, दुराचरण, लूट–खसोट, डकैती आदि के भय नहींवत् ही थे।

मानव समुदाय धार्मिक स्वतंत्रता से अपने इष्ट की आराधना करता हुआ भी परस्पर हर समुदाय में स्नेह की सरिता प्रवाहित हो रही थी। प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानकर उसको दूर करने के लिए सहयोगी बनने हेतु तत्पर रहता और दूसरों को सुखी देखकर सुखानुभूति करता क्योंकि उनको सहज रूप से हर धर्म के ऋषि–मुनियों, योगियों, संन्यासियों का सान्निध्य प्राप्त होता रहता था। उनके सत्संग व धर्मोपदेश से उनके मन में पापभीरुता, कर्तव्यनिष्ठा सदाचरण की सजगता, दयालुता, परस्पर सहयोग की

भावनाएं लहारती थी। साथ ही आतिथ्य–सत्कार, दीन–दुःखी अभावग्रस्तों के प्रति करुणा भाव से प्रेरित होकर अनेक दानशालाएं, धर्मशालाएं, अनाथालय, वृद्धाश्रम आदि की प्रचुर व्यवस्थाओं से कोई किसी प्रकार की कमी महसूस नहीं करता था।

अपने–अपने धर्मानुष्ठान की तो मानों प्रतिस्पर्धा ही चलती थी, जिसके फलस्वरूप हर धर्मानुयायियों के विशाल प्रतिष्ठान, स्थानक, मंदिर, उपाश्रय, पौषधशालाओं आदि का प्रचुर मात्रा में निर्माण था और निर्माण चल रहा था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी वहां अच्छे स्कूल एवं गुरुकुलों का निर्माण था जिनका मूलभूत उद्देश्य जन–साधारण के बाल–बच्चे अक्षरीय ज्ञानार्जन के साथ ही लेखक, वक्ता, कवि, कलाकार आदि के रूप में अपनी–अपनी योग्यतानुसार कला को वरण करने में सक्षम बन सकें और अपने जीवन को सार्थक करते हुए स्वतंत्र–सुखद जीवनयापन की कला प्राप्त कर सकें। साथ ही, उच्च परिवारों के बाल–बच्चों के उच्च शिक्षण हेतु कुशस्थलपुर नगर से 50 योजन दूर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में, शहरी कोलाहल से दूर एक आदर्श विद्याश्रम निर्मित था, जहां पर सुदूर क्षेत्रों के राजकुमार, श्रेष्ठिपुत्र व उच्च विद्यार्थीगण व उनके परिजन अध्ययन करने में अपनी प्रतिष्ठा व गौरवानुभूति करते थे। वहां के ज्ञानदाता गुरुजन सदाचारी, कर्तव्यपरायण, विश्रुत विद्वान एवं अपनत्व भाव से ओतप्रोत थे। आज की तरह केवल वेतनभोगी ही नहीं थे। वे विद्यार्थियों को अपनी संतानवत् स्नेह प्रदान करते हुए भी त्रुटियों पर सूक्ष्म निगरानी रखते हुए उनके परिमार्जन हेतु सजग रहते थे। वे चाहते थे कि यहां के विद्यार्थी ऐसी कला प्राप्त करके जायें कि जीवन के हर क्षेत्र में अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करते हुए एक आदर्श जीवन जी सकें। साथ ही, उनका जीवन नैतिक, प्रामाणिक व आदर्श बने। वे इसी में अपने श्रम की सार्थकता, गौरव एवं विद्याश्रम की गरिमा व प्रतिष्ठा समझते थे।



(२)

उसी कुशस्थलपुर नगर में आर्हत धर्म के उपासक, ऐश्वर्य एवं सद्गुण की साकार मूर्ति, सार्थवाह गुणसुन्दर श्रेष्ठी निवास करते थे। साथ ही शैव मतानुयायी लब्धप्रतिष्ठ आदर्श श्रद्धालु श्रेष्ठिवर्य महेश्वरदत्तजी भी निवास करते थे। इन दोनों के पुत्र शिवसुन्दर और गंगेश उसी आदर्श विद्याश्रम में ज्ञानार्जन कर रहे थे। दोनों कुशस्थलपुर के होने से पास–पास के कमरों में ही रहते थे। साथ ही धार्मिक मान्यताओं के अलावा दोनों समवयस्क एवं समान रुचि वाले थे। जिससे रात–दिन साथ रहने से उनकी मैत्री में भी प्रगाढ़ता बढ़ती गई मानों

दो शरीरों में एक आत्मा निवास कर रही हो। दोनों की शारीरिक छवि मनमोहक थी। सौम्य, हंसमुख मुद्रा, वचन–सौष्ठव हर व्यक्ति को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

जब भी अवकाश पाकर वे कुशस्थलपुर आते, तो उनकी विकसित प्रतिभा, व्यावहारिक वैचक्षण्य लखकर सहज ही नगर–नागरिकों के मन में प्रमोद भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता। निकट सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति सहज आनन्दानुभूति प्रगट करता हुआ आदर्श विद्याश्रम की गौरव–गाथा गाये बिना नहीं रहता एवं अपने बच्चों को भी विद्यार्जन हेतु वहां प्रविष्ट कराने का मनोभाव बना लेता।

उसी नगर में नगरश्रेष्ठी पद से सम्मानित सागरचंद्र श्रेष्ठी भी निवास करते थे। वे भी इनकी श्रेष्ठ प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। उनके मन में भी यह भावना उछालें मारने लगी कि मेरे लघुपुत्र अरुण को भी उसी आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश दिलाना उचित है। वैसे वह स्वयं प्रतिभावान है और उस विद्याश्रम में प्रवेश पाने से तो सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ हो जायेगी और मेरी प्रतिष्ठा में भी चार चांद लग जायेंगे।

यह निश्चय करके मौके की इन्तजार में थे कि अरुण की मनोभावना को जानकर उसे उत्साहित करूं। लेकिन अरुण को तो दूसरा ही रंग लगा हुआ था। सर्वप्रथम तो उसे माता से ऐसे धर्म–संस्कार प्राप्त हुए थे कि जिनसे उसके जीवन में सदाचार, सादगी, विनय, भक्ति आदि, एक उच्चकुलीन बालक में जो सस्ंकार जाग्रत होने चाहिये, वे सब उत्तरोत्तर विकसित होते जा रहे थे, जिससे स्वयं श्रेष्ठी सागरचंद्र व माता सिद्धिदेवी व भाई, भाभी, बहिन कल्याणी आदि सबको वह प्यारा लगता था। जब भी वह घर से बाहर निकलता तो सब बड़ा सूनापन महसूस करते।

इधर कुशस्थलपुर नगर के असीम पुण्योदय से जिन–शासन के उज्ज्वल नक्षत्र विद्वत्‌शिरोमणि, चरित्रचूड़ामणि आचार्यदेव श्री मुनिचंद्र महाराज के अपने प्रधान शिष्य श्री मुनि धर्मप्रियजी के साथ पधारने के समाचार मिले। वे ज्ञान–पर्याय और वयस्थविर हो गये थे। शारीरिक बल तो इतना क्षीण हो गया था कि 10 किलोमीटर में ढाई घंटे की जगह ढाई प्रहर लग गये। बड़ी थकान महसूस हो रही थी, जिसको देखकर शिष्य धर्मप्रियजी आदि सभी संत व्याकुल हो उठे। वे उनको डोली आदि से कन्धों पर उठाकर चलने का आग्रह करने लगे और इसी तरह आगे की विहार योजना भी बनाने लगे। उनकी अन्तरंग इच्छा थी कि ऐसी दिव्य विभूति की विहारचर्या जारी रहने से अनेक क्षेत्रों को लाभ भी मिलेगा एवं अनेक भव्यों का उद्धार भी होगा। लेकिन आचार्यश्री मुनिचन्द्र महाराज

आगमविहारी थे और उसी के निर्देशानुसार आचरण हेतु पूर्ण सजग थे। वे अपवाद को उत्सर्ग बनाकर शिथिलाचार को बढ़ावा देने के बिल्कुल पक्षधर नहीं थे। वे नहीं चाहते थे कि मेरे निमित्त से पीछे इसका दुरुपयोग हो अर्थात् आपने किसी साधन से विहारचर्या को जारी रखने के लिए निषेध करते हुए फरमाया कि यदि शारीरिक बल सहायक बना, तो धीरे–धीरे, थोड़ा–थोड़ा भी विहार करने का भाव रखता हूँ। आचार्यदेव के इन अभिप्रायों को जानकर शिष्य समूह गद्गद हो उठा और धन्य–धन्य कहता हुआ वंदन करके बोल उठा – प्रभो! ऐसे मर्यादा–रक्षक आचार्यों से ही श्रमण संस्कृति सुरक्षित रह सकती है।

ज्योंही कुशस्थलपुर में आचार्यदेव के आगमन की चर्चा फैली, तो जिसने भी सुना, सब अपना कार्य छोड़कर उसी दिशा में चल पड़े जिस दिशा से आचार्यदेव पधार रहे थे। कुछ मुनि पहले पधार चुके थे। आचार्यश्री छोटे संतों के कन्धों के सहारे मन्थर गति से चल रहे थे। थकान से श्वास फूल रहा था, शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था, परन्तु चेहरे पर परम शान्ति की प्रसन्नता झलक रही थी। नयनों से वही वात्सल्यामृत प्रवाहित हो रहा था। भक्तों के समूह आते जा रहे थे और वंदना करके अपने भाग्य को सराहते हुए आचार्यदेव की जय–जयकार से नभ और धरती को गुंजायमान कर रहे थे। बहनें मंगल गीत गा–गाकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन करती हुई गुरु–चरणों में वंदन करके अपने भाग्य को सराह रही थीं। आचार्यदेव सभी की वन्दना झेलते हुए 'दयापालो, पुण्यवान, भाग्यवान' का मंगल सन्देशरूप आशीर्वाद प्रदान करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

धीरे–धीरे भव्य एवं विशाल जुलूस के साथ नगर–द्वार में प्रवेश किया एवं मुख्य बाजारों से होते हुए स्थानक में पधारे। शिष्यों ने उच्च पट्ट पर पहले ही आसन बिछाकर तैयार रखा था। उस पर शिष्यों ने आचार्यदेव को आसीन किया और स्वच्छ वस्त्र से पादपोंछन कर, वंदन करके आचार्यदेव के समीप विराज गये। सामने विशाल सभामंडप में श्रावक–श्राविकाओं का समूह बैठ गया। आचार्यदेव ने मंगल उद्बोधन देकर मंगलपाठ का श्रवण करा दिया। समय की अल्पता के कारण सभा विसर्जित हो गई।



(३)

इधर नगरश्रेष्ठिवर्य सागरचंद्रजी, सार्थवाह गुणचंद्रजी, श्राविकारत्न सिद्धिदेवीजी आदि स्थानक में ही ठहर गये और परस्पर चर्चा करने लगे कि हमारे अहोभाग्य से आचार्यदेव का पदार्पण तो हो गया, पर अब हमारा कर्तव्य–भार

भी बढ़ गया है। सबसे पहली बात तो है आचार्यदेव की शारीरिक रुग्णता की। इसलिये सबसे पहले इसी के बारे में सोचना अनिवार्य है। इसके लिए कुशल वैद्य या डाक्टर से मिलना जरूरी है ताकि कल प्रातः ही उपचार प्रारम्भ हो जाय और आचार्यदेव शीघ्र स्वास्थ्यलाभ प्राप्त कर सकें ताकि हम सबको अधिक से अधिक उनकी उपासना का, प्रवचन–पीयूष श्रवण का लाभ प्राप्त हो सके। श्रेष्ठी सागरचंद्र ने ज्योंही ये भाव अभिव्यक्त किये तो सब एकस्वर से बोल पड़े– आपका चिंतन समीचीन है। यही कार्य सर्वोपरि है। यथाशीघ्र यह कार्य किया जाय।

बस, फिर क्या था। सब एकमन से उत्साह–उमंग के साथ चिंतन करते हुए इस निर्णय पर पहुंचे कि डाक्टर के बनिस्पत सबसे पहले विश्वंभरजी वैद्य को लाना ही उचित है क्योंकि वे अनुभवी, कुशल एवं जैन मुनिचर्या के जानकार व आचार्यदेव के पूर्वपरिचित भी हैं। वैद्यजी आचार्यदेव पर प्रगाढ़ श्रद्धा एवं भक्तिभाव भी रखते हैं। सब के इस निर्णय पर पहुंचते ही सागरचंद्र श्रेष्ठी आदि स्वयं विश्वंभरजी वैद्य के घर पहुंच गये।

विश्वभरजी वैद्य ने ज्योंही आज अकस्मात् इन श्रीमंतों, नगरप्रमुखों को अपने घर में प्रवेश करते देखा, वे आश्चर्यानुभूति के साथ उनके सन्मान हेतु सामने आये और बोलने लगे – आज आप श्रीमंतों के चरण मेरे आंगन में पड़े, मैं धन्य हो गया। फरमाइये, मेरे लायक सेवाकार्य। वैद्यजी की इस मधुर वचनावली को श्रवण करके आनन्दविभोर होते हुए श्रेष्ठी सागरचंद्र बोले – वैद्यजी! आज हम आपके उपचार कौशल की कसौटी लेकर आये हैं। आपको यह तो विदित हो गया होगा कि हमारे नगर के असीम पुण्योदय से आचार्य मुनिचन्द्रजी म.सा. का कल शाम को ही आगमन हुआ है और वे स्थानक भवन में विराजमान हैं। उनकी शारीरिक अवस्था कुछ वय एवं कुछ विहार– श्रम से अति म्लान हो रही है, हालांकि उनके चेहरे से ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता। वे तो उसी शांत भाव से आत्मभावों में रमण कर रहे हैं, पर हमारी आंखें उस दशा को देखकर व्यथित हैं। इसलिये हमको आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आपके उपचार से उनको शीघ्र स्वास्थ्यलाभ प्राप्त होगा जिससे हम सबको उनकी सेवा–सान्निध्य का सहज सुखद लाभ प्राप्त होगा।

वैद्यजी सागरचंद्र श्रेष्ठी की बात श्रवणकर भावविभोर होते हुए बोल पड़े – अहो श्रेष्ठिवर्य, आज तो सचमुच मेरा भाग्य ही उदित हुआ है जिसके फलस्वरूप ही ऐसे दिव्य महापुरुष की सेवा–उपासना का लाभ प्राप्त हो रहा है। आप निश्चिंत रहिये – आचार्यदेव तो मेरे पूर्वपरिचित व आराध्य हैं। मैं उनकी सेवा तन–मन से करने हेतु तत्पर हूं। आप कहें तो अभी चल दूं। सागरचंद्र

बोले – वैद्यजी! अभी तो रात्रि हो चुकी है। आप जानते ही हैं, वे रात्रि में तो कुछ भी उपचार लेने को तत्पर नहीं होंगे, चाहे प्राण भी चले जायं। इसलिये उचित यही रहेगा कि प्रातः हम सब यहीं पहुंच जायेंगे और साधन द्वारा आपको भी साथ ले चलेंगे। विश्वंभरजी वैद्य कहने लगे – आप इसके लिए इतना कष्ट न उठावें। मैं स्वयं ही वहां पहुंच जाऊंगा, आप निश्चिंत रहे। लेकिन सागरचंद्र श्रेष्ठी कहने लगे – इसमें कष्ट की कोई बात नहीं हैं। हम सवेरे यहीं पहुंच जायेंगे। बस, आप तो आवश्यक उपचार–साधनों के साथ तैयार रहें। यह कहकर सब अपने निवास–स्थल की ओर रवाना हो गये।



(४)

प्रातःकालीन मंगल वेला में शय्या तजकर सामायिक प्रतिक्रमण आदि मांगलिक कार्यों से निवृत्त हुए, फिर शारीरिक आवश्यक निवृत्ति के साथ अपनी प्रतिष्ठानुरूप पोशाक सजी एवं उत्तरासन के साथ रथ में सवार हुए और सीधे वैद्य विश्वंभरजी के निवास के पास आकर रुके। ज्योंही विश्वंभरजी वैद्य की दृष्टि पड़ी, वे तो सवेरे से ही तैयार होकर बैठे ही थे, श्रेष्ठिवर्यों का स्वागत करते हुए उनके साथ रथ में सवार हो गये। और रथ सीधे स्थानक के बाहर आकर रुका। सेठजी के साथ सार्थवाहजी आदि प्रमुख श्रावक व श्राविकाएं भी थे। सब रथ से उतरे। उत्तरासन धारण करते हुए वैद्यजी के साथ निस्सही–निस्सही का उच्चारण करते हुए स्थानक में प्रवेश करके आचार्यदेव की सन्निधि में पहुंच गये। वंदन करके अर्ज करने लगे– प्रभो! आपका स्वास्थ्य वय एवं श्रम से अतिक्लान्त हो रहा है। इसलिये आपके शिष्यों के साथ ही हमको आपकी सन्निधि का लाभ लेने में बाधा पड़ रही है। इसलिये हमारा अनुरोध है कि आप अपनी कल्प मर्यादानुसार कुछ औषधोपचार लेकर स्वस्थ होवें, ताकि हम सबको सन्निधि का अधिक लाभ प्राप्त हो सके। इसलिए इन विश्वंभरजी वैद्य को सेवा में लाये हैं। ये कुशल साधुचर्या से विज्ञ एवं श्रद्धावान भी हैं।

इतना कहते ही विश्वंभरजी वैद्य आचार्यदेव के चरणों में झुक गये और करने लगे सेवा के अनुग्रह हेतु निवेदन। पर आचार्यदेव तो देह–ममत्व से बहुत ऊपर उठ चुके थे, फिर विश्वंभरजी वैद्य को देखते ही हर्षविभोर होकर फरमाने लगे – वास्तव में आपका कथन यथार्थ है, इनकी सेवाभावना सराहनीय है, पर मैं इसकी अभी आवश्यकता नहीं समझता हूं, क्योंकि यह शरीर का स्वभाव है। थोड़ा विश्राम करने से अपने–आप सब–कुछ ठीक हो जायेगा, आप निश्चिंत रहें।

पर श्रेष्ठिवर्य और वैद्यराजजी कहने लगे – नाथ! अब यह शरीर आपका नहीं, सारे संघ व मानव समुदाय का है। इसलिए हमारी भी जवाबदारी है कि आपका शरीर ठीक हो जायेगा तो चतुर्विध संघ के साथ सारे विश्व के आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। अनेक भव्यात्माओं का त्राण होगा। इसलिये हमारी अर्जी पर मर्जी फरमाइये। साथ ही वैद्यराजजी ने भी अर्जी की– प्रभो! आप निश्चिंत रहिये। मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाता हूं कि आपके धर्म–संयम–मर्यादा के विपरीत कोई दवा का प्रयोग नहीं होगा। आप कृपा करके उपचार की स्वीकृति प्रदान करें।

इस विनम्र निवेदन को श्रवणकर आचार्यदेव ने स्मित मुस्कानभरे चेहरे से फरमाया – मैं आपकी सेवाभावना से विह्वल हूं। आप जो उचित समझें, वह उपचार–औषध तैयार करें एवं मुझे किन–किन बातों की सावधानी रखनी है, वह बता दें। साथ ही मुनि धर्मप्रियजी को भी सारी बात समझा दें क्योंकि सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। आचार्यदेव की स्वीकृति के साथ ही सब का चेहरा खिल उठा। वैद्यराज विश्वंभरजी बड़ी प्रसन्नता एवं अपनी गहरी अनुभूति के साथ आचार्यदेव का नाड़ी–परीक्षण करके, विभिन्न औषधियों का मिश्रण करके, मात्रा बनाकर धर्मप्रियजी महाराज को सारी विधि व परहेज का निवेदन करके पुनः सेवा में हाजिर होने की भावाभिव्यक्ति के साथ वंदन करके प्रस्थान कर गये।

वैद्यराजजी की विनम्र वृत्ति, निःस्वार्थ सेवाभावना, मधुर मुस्कान ने सहज ही आचार्यदेव के हृदय में स्थान बना लिया था। आधी कमजोरी तो वैसे ही रफू हो गई। शेष कमजोरी औषध–सेवन एवं पथ्य–परहेज से जाती रही। पर उम्र का तकाजा तो शरीर को प्रभावित कर ही रहा था। फिर भी पूर्ण मनोबल से, साधना की सजगता के साथ आगन्तुकों की शंका का समाधान, शिष्यों को अध्ययन कराना एवं प्रवचन आदि में पधारना, मंगलपाठ श्रवण कराना आदि कार्य प्रारम्भ हो गये जिससे सारे कुशस्थलपुर–वासियों में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। आबालवृद्ध सब उत्साहपूर्वक धर्मक्रियाओं में यथासमय रुचिपूर्वक भाग लेने लगे। इस प्रकार बिना चातुर्मास के ही चातुर्मास जैसा मेला लग गया।



(५)

नगरश्रेष्ठिवर्य सागरचंद्र का लघुपुत्र अरुण अभी बच्चा ही था, फिर भी संस्कारित तो था ही। वह अध्ययन में व्यस्तता के कारण आचार्यदेव के पधारने व ऐसे पवित्र–पावन धर्म–माहौल से अनभिज्ञ ही रहा। मालूम तो उसको तब पड़ा जब उसके साथियों ने इसकी चर्चा की कि हम हमेशा धर्मस्थान में

आचार्यदेव व अन्य मुनिराजों के दर्शन हेतु जाते हैं और उनका मंगलपाठ श्रवण करके जब अध्ययन करने बैठते हैं तो पढ़ने में बड़ी एकाग्रता व शान्ति का अनुभव होता है।

अरुण, क्या तुम कभी गये ही नहीं दर्शन करने? क्या तुमको मालूम ही नहीं पड़ा?

अरुण – हां, दोस्तो! मुझे तो आज ही मालूम पड़ा, आपसे ही।

दोस्त – यार! तुम भी कैसी बातें करते हो। जैसे नींद में सोये हुए हो। तुम्हारी मां, बहिन कल्याणी, भाभियों आदि को तो हमेशा हम स्थानक में देखते हैं और तुम कहते हो कि मुझे मालूम ही नहीं है। बड़े आंश्चर्य की बात है – 'दीये तले अंधेरे' जैसी।

दोस्तों की बात सुनकर अरुण को बड़ा अटपटा–सा लगा। वह स्कूल से छुट्टी होते ही बड़े अनमने भाव से घर पहुंचा और जोर–जोर से सुबक–सुबक कर रोने लगा। आज पहली बार अरुण को रोते देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सबसे पहले बड़ी भाभी देखते ही पास आई और बड़े स्नेह के साथ कहने लगी – आज देवरजी को क्या हो गया? क्या तबीयत ठीक नहीं है या किसी से झगड़ा हो गया या किसी ने अपमान कर दिया? क्या बात है कुछ बताओ तो सही? माता सिद्धिदेवी भी आ गई। उसको भी अरुण की यह दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। आखिर हुआ क्या? वह बहुत अनुनय–विनय करके अरुण को मनाने लगी। बहिन कल्याणी भी पास में आ गई और उसके दोनों हाथों को अपने हाथों से पकड़कर हटाते हुए जोर–जोर से हँसने लगी और कहने लगी– क्या बात है अरुण, आज लड़कियों की तरह मुंह छिपाकर क्यों रोने का ढोंग कर रहे हो? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया? पुनः यह अपमान की बात सुनकर तो वह बिफर उठा और बोला – मेरा अपमान करने वाला और कौन है, तुम्हीं लोगों ने मेरा अपमान किया और आज इसीलिए मुझे साथियों के बीच अपमानित होना पड़ा। जब उन्होंने गुरुदेव के आगमन की बात कही और मैंने सहज अनभिज्ञता व्यक्त कर दी तो वे सब चटकारा लेते हुए कहने लगे – वाह भाई वाह, नगरसेठ एवं संघपति के पुत्र की यह दशा कि सारा शहर आचार्यदेव की दर्शन–सेवा का लाभ लेने हेतु उमड़ रहा है और आज उनके घर में ही ऐसा घोर अंधेरा कि तुझे गुरुदेव के आगमन का ही पता नहीं चला। तब साधारण परिवार के सदस्यों की तो बात ही क्या? अब आप ही बोलिये – इससे बड़े अपमान की और क्या बात हो सकती है! आचार्य भगवन् के आगमन को इतने दिन हो गये और आप सब बराबर दर्शन–सेवा का लाभ ले रहे हैं और मुझे आपने बताया ही नहीं? क्या मैं इन शुभकार्यों के योग्य नहीं हूं? इस प्रकार बोलते–बोलते पुनः जोर–जोर से सुबक–सुबक कर रोने लग गया।

इस प्रकार अरुण को रोते देखकर कल्याणी और जोर से ठहाका मारकर हँसते हुए बोली– वाह भाई वाह, यह हुई अपमान की बात। इसके लिए इतना तूफान मचा दिया मानों किसी ने इसका बहुत बड़ा लक्की ड्रा छीन लिया हो। खैर भैया! हम हमारी गलती की क्षमा चाहते हैं। आप अब भी जल्दी से भोजनादिक से निवृत्त होकर पधार जाइयेगा गुरुदेव की सेवा में और इच्छा हो तो वहीं रह जाना। हम तुमको दीक्षा की अनुमति देकर महाराज बना देंगे। और फिर जय–जयकार के नारे लगायेंगे : अरुण मुनिजी महाराज साहब की जय हो। और मैं अपने भैया महाराज को बड़ी भक्ति–भाव से वंदना करूंगी। यह कहती हुई कल्याणी, भाभी और मां को भी कहने लगी– क्या आप भी वन्दना करेंगी? बोलो ना मम्मी, भाभी! ऐसा कहती हुई कल्याणी अपने छोटे भैया अरुण के पास आकर, उसके पांव पकड़कर क्षमायाचना को उद्यत हुई तो अरुण एकदम उछलता हुआ पीछे हट गया और कहने लगा – दीदी! यह क्या? आप मेरी मजाक उड़ा रही हो? यदि वास्तव में आपकी भावना सफल हो जावे तो रोने कौन लगोगी? ऐसा कहकर अरुण खिलखिलाता हुआ भोजन करने बैठ गया और शीघ्र निवृत्त होकर सीधा स्थानक की ओर चल पड़ा।



(६)

अरुण संस्कारित बालक था। माता, पिता व पारिवारिक जनों के संस्कार उसमें पल्लवित थे। इसलिये स्थानक में प्रवेश के पहले ही उसने उत्तरासन से मुंह ढककर अंजलिबद्ध होते हुए निस्सही–निस्सही का उच्चारण करते हुए अन्दर प्रवेश किया। सीधा पट्टासीन आचार्यदेव के चरणों में पहुंचकर विधियुक्त वंदन करके अर्ज करने लगा– प्रभु! इस छोटे–से सेवक को आपके चरणस्पर्श की अनुज्ञा प्रदान करें।

आचार्यदेव भी अरुण की ओर दृष्टि पड़ते ही आश्चर्यान्वित हुए बिना न रहे। इतनी छोटी वय में इतनी विनम्रता, माधुर्यता और विवेक! पहली दृष्टि में ही जैसे जौहरी की दृष्टि जवाहरात पर टिक जाती है वैसे ही आचार्यदेव की दृष्टि अरुण पर टिक गई। उन्होंने गहराई से उसे देखा, परखा और विश्वस्त हो गये कि यह कोई निकट भव्यात्मा है। उन्होंने पूर्ण आत्मीयता से स्नेहामृत बरसाते हुए मधुर शब्दों में फरमाया– देवानुप्रिय! तुम्हारा क्या परिचय है?

आचार्यश्री के इस मधुर शब्दोच्चारण से तो वर्षा की बूंदें पाकर कदम्ब पुष्प खिल उठता है वैसे ही अरुण का हृदयकमल खिल उठा। वह और विनम्र होकर बोला – भंते! मेरा नाम अरुण है और मैं आपके चरण–सेवक सागरचंद्र श्रमणोपासक का सबसे लघपुत्र हूं।

आचार्यदेव – अरे, तो इतने दिनों में तुम दिखे ही नहीं?

अरुण संकुचित होता हुआ कहने लगा – मेरे पापोदय से मैं आपके आगमन से ही अनभिज्ञ रहा। बस, आज यह सन्देश प्राप्त होते ही चरण–सेवा में हाजिर हो गया। बस, अब तो नागा होने का प्रश्न ही नहीं है, आपकी कृपादृष्टि बनी रहे मुझ अबोध पर।

आचार्यदेव ने फरमाया – भैया! जैसा आपका नाम है, उसी के अनुरूप आत्मा में सम्यग्ज्ञान का अरुणोदय करो। हर आत्मा में परमात्म शक्ति निहित है। उस पर आवरित जो अष्टकर्म की परतें हैं, उनमें सबसे जटिल परत मोहकर्म की है। उसको जो आत्मा स्वपुरुषार्थ से चीर देती है, उस आत्मा में सम्यग्ज्ञान व दर्शन का अरुणोदय हो जाता है। वही आत्मा अपने पुरुषार्थ से आगे चलकर पंचपरमेष्ठी पद पर प्रतिष्ठित होकर जन–जन की आराध्य बन जाती है।

अरुण – प्रभो! ऐसे पंचपरमेष्ठी पद कौन–कौनसे हैं?

आचार्यदेव – क्या आपको 'नमस्कार–मंत्र' याद है?

अरुण – तहत् भगवन्।

आचार्यदेव – बस! यही तो पंचपरमेष्ठी पद हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु – इन्हीं पांच पदों को नमस्कार किया गया है।

अरुण – भगवन्! इनका स्वरूप भी कृपा करके समझाइये?

आचार्यदेव – जो आत्मा के संसार–मोह–बंधन को तोड़कर जीवन–भर के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म एवं परिग्रह आदि सर्वपापप्रवृत्ति का त्याग करके संयमी जीवन धारण करता है, वह साधु रूप परमेष्ठी पद में प्रवेश पाता है। फिर उन्हीं साधकों में से ज्ञानाराधना करके 25 गुणों को विकसित करता हुआ साधक उपाध्याय पद में प्रतिष्ठित होता है। उन्हीं गुणों के साथ संयम–मर्यादाओं का स्वयं सजगता से पालन करता हुआ अन्य साधकों को पालन करने में अनुशासनबद्ध सहयोगी बनने की क्षमता रूप छत्तीस गुणों को साध लेता है, वह साधक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होता है। और जो साधक स्वपुरुषार्थ से इन ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय रूप घनघाति कर्मों का क्षय करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, वे ही साधक अरिहंत पद पर प्रतिष्ठित होते हैं, जो सामान्यकेवली और तीर्थंकर रूप से प्रतिष्ठित होते हैं। और जो आठों ही कर्मों का क्षय कर देते हैं, वे जन्म–मरण की शृंखला से मुक्त होकर सिद्ध–बुद्ध–निरंजन–निराकार अवस्थारूप अष्टगुण की प्राप्ति कर लेते हैं और सिद्ध पद में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। अब आप समझ गये होंगे कि महामंत्र में किनको नमस्कार किया गया है?

अरुण – तहत् भगवन्। आपने महती कृपा की मुझ अबोध बालक पर। अब मैं चरणोपासना में प्रतिदिन प्रस्तुत होकर ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करूंगा। यह कहता हुआ मंगलपाठ श्रवण करके, वंदन कर वह बड़ी उत्सुकता से घर की तरफ रवाना हो गया।



(७)

आज अरुण की खुशी का ठिकाना ही नहीं था। हर्षावेग उसके चेहरे पर झलक रहा था। इस प्रकार खुशी से उछालें मारते हुए जब उसने अपने घर में प्रवेश किया तो सारे परिवार को आश्चर्य होने लगा। बहिन कल्याणी तो अरुण को देखते ही बोल पड़ी– अरुण, क्या बात है आज ऐसी खुशी की? इस तरह उछल–कूद रहे हो जैसे कोई तुम्हें बहुत कीमती अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई हो। क्या अपनी बहिन को भी नहीं बताओगे? इस प्रकार उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए पूर्ण प्रेम और वात्सल्य दिखाते हुए बोली।

अरुण ने कहा – बहिन, सच है आपका कहना। मुझे ऐसी ही अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई है, वह है आचार्य गुरुदेव की कृपा। बहिन, क्या बताऊँ – आचार्य भगवन् तो साक्षात् भगवान् ही हैं। वे परम कृपालु हैं। बहिन, तू खुद ही सोच, जिनके चरणों में बड़े–बड़े व्यक्ति नतमस्तक होते हैं, वहां मुझ जैसे छोटे–से बच्चे की क्या औकात? पर बहिन कल्याणी, क्या बतलाऊँ, आचार्यदेव की कृपा का! उनके पहले दर्शन ने ही मुझे धन्य बना दिया और अपने मुखारविन्द से मुझे महामंत्र व उसका विस्तृत अर्थ भी समझाया और मेरी अनेक शंकाओं का समाधान भी ऐसी सरलता से किया कि मेरा अन्तर्मन जाग्रत हो गया। बहिन, अब मैंने यह निश्चय कर लिया है कि इस पावन कल्पतरु का जितना हो सके, अधिक–से–अधिक सान्निध्य प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। आचार्यदेव ने इसके साथ ही फरमाया कि हर आत्मा में परमेष्ठी बनने की क्षमता है। आवश्यकता है उसका रहस्य समझकर पुरुषार्थ जाग्रत करने की। न उसमें वय बाधक होती है, न जाति, न कुल। क्या कहूँ – बहिन, आचार्यदेव की सरलता, वचन–माधुर्य का! वे तो मेरे जैसे नादान बच्चे को भी आप कहकर सम्बोधित करते हैं। उनका एक–एक वचन मिश्री से भी अत्यधिक मिष्ट एवं सारगर्भित है कि सुनने वाला सहज भावविभोर हो उठता है, फिर चाहे वह कितना ही क्रूर से क्रूर भी क्यों ना हो। बहिन कल्याणी, सच कहता हूँ, मेरा तो आचार्यश्री की चरणोपासना से उठने का ही मन नहीं होता। मन तो यही चाहता है कि उनकी चरणोपासना करता ही रहूं।

कल्याणी – अरुण! इतने बड़े महापुरुष आचार्यदेव से बात करने में पापा–मम्मी आदि बड़े–बड़े लोग भी डरते हैं, तो क्या तुझे कुछ हिचकिचाहट नहीं हुई?

अरुण – बहिन, क्या बताऊँ। पहले तो मैं भी कुछ हिंचकिचाया आपके कथनानुसार। पर जब आचार्यश्री ने मेरा परिचय पूछा और जो स्नेहामृत की वर्षा की, उसके पश्चात् तो मेरी सारी हिचक दूर हो गई। और मेरे प्रश्नों के समाधान से तो मेरे हृदय का तार ऐसा जुड़ गया मानों गुरुदेव मेरे हृदय में ही विराज रहे हों और मैं उनके पास ही बैठा हूं। बस, अब भी मन ऐसा हो रहा है कि उनके चरणों में चला जाऊँ और अधिक–से–अधिक उनकी उपासना, सेवा का लाभ उठा लूं।

कल्याणी – तब फिर यहां आया ही क्यों? किसी ने तुझे बुलाया था या तेरे बिना कोई हमारा काम अटक रहा था?

अरुण – आपके डर से।

कल्याणी – हमारे डर से, क्यों भाई – हमारा क्या डर है? हम क्यों रोकेंगे तुमको? मैं तो कहती हूं कि तू अभी ही चला जा और उन्हीं के पास रह। फोगट की बात करता है। यदि मैं लड़का होती तो उनका चेला ही बन जाती।

अरुण – बहिन कल्याणी! आप अभी तो मुझे कह रही हो कि चला जा और उन्हीं के पास रह जा। पर यदि आपका आशीर्वाद फल जाये और मेरी अन्तरभावना जाग्रत हो जावे तो आप विघ्न तो नहीं डालोगी?

कल्याणी – क्यों भैया! मैं ऐसे मंगलकार्य में क्यों विघ्न डालूंगी। मैं तो अपना अहोभाग्य मानकर आपको वंदन करूंगी और गौरव का अनुभव करूंगी।

इतने में माता सिद्धिदेवी भी आगई और बोली – आज दोनों भाई–बहनों में क्या बहस चल रही है?

अरुण – मम्मी! देखो, यह बहिन कल्याणी मुझे ताना मार रही है कि गुरु महाराज साहब के पास से उठने का मन नहीं होता तो तू यहां आया ही क्यों? मैं तो कहती हूं अभी भी चला जा और गुरु महाराज का चेला बन जा। यदि मैं लड़का होती तो जरूर चेला बन जाती।

सिद्धिदेवी – बेटा! यह सब बातें कहने की नहीं होती हैं। गुरुदेव का शिष्य तो वही बन सकता है जिसका महान् भाग्योदय होता है। अपने घर का कहां इतना पुण्य कि अपने घर से कोई त्यागी आत्मा निकले। मेरे अन्तर्मन में तो यह विचार उठता ही रहता है कि कोई भी पुण्यवान त्यागमार्ग अपनाकर मेरी कुक्षि को उज्ज्वल करे। बेटा, हमारे महान् पुण्योदय से आचार्यदेव के सत्संग का सौभाग्य मिला है। उसका जितना लाभ उठा सको, उठाओ और अपना जीवन धन्य बनाओ।

अरुण माता की अंतर्भावना को श्रवण करके गद्गद हो गया और नियमित रूप से आचार्यदेव के चरणों में सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत, प्रत्याख्यान की नियमित क्रियाएं अन्तर्भावना से करने लगा, साथ ही व्यावहारिक शिक्षण भी।



(८)

इधर आचार्यदेव के मासकल्प में भी कुछ ही दिन शेष रह गये थे। आचार्यदेव की वृद्धावस्था के साथ ही कुशस्थलपुरवासी जैन, जैनेतर धर्मप्रेमी भावुक भक्तों की अन्तर्भावना बन रही थी कि आचार्यदेव की हमको अधिक–से–अधिक सन्निधि कैसे प्राप्त हो? इसका कौन–सा उपाय है? बस, जहां देखो एक ही चर्चा, घर में, बाजार में, चौकियों, चौपाल, बगीचों में सबके मुंह पर एक आवाज थी कि इतनी–सी अल्पावधि में इतना धर्मध्यान का ठाठ लग गया। आबालवृद्ध में भारी उत्साह–उमंग आ गई। यदि दीर्घावधि तक यह पावन सान्निध्य मिल जाये तो नगर का कायाकल्प ही हो जायेगा।

इस प्रकार परस्पर चर्चा करते हुए सबने विचार किया – भाईसा, इसके लिए तो हम कर ही क्या सकते हैं। पर यह कार्य तो नगरप्रमुखों का है। यदि वे इस को समझलें और आचार्यदेव को अर्ज करें और यदि आचार्यदेव यहां स्थिरवास विराजने की स्वीकृति प्रदान कर दें तो सारे नगर का भाग्योदय ही हो जावे। इसलिए उचित यही है कि हमारा एक प्रतिनिधिमंडल नगरप्रमुखों के सम्मुख अपना अभिमत प्रस्तुत करे। ऐसा चिंतन करके उनमें से कुछ व्यक्ति नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र की पेढ़ी पर पहुंच गये।

श्रेष्ठी सागरचंद्र ने ज्योंही अपनी पेढ़ी पर स्वधर्मी बंधुओं को आते देखा तो बड़े हर्ष–भावों से अपने स्थान से उठकर जय जिनेन्द्र के उच्चारण के साथ अभिवादन करने लगे और बोले – फरमाइये, मेरे लायक सेवा। आज आपका किस उद्देश्य से शुभागमन हुआ है? तब नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र को आगंतुक सज्जन बोले – श्रावक श्रेष्ठिवर्य! हम सब आज सर्वहिताय–सर्वसुखाय भावना लेकर आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

श्रेष्ठी सागरचंद्र – कहिये–कहिये – आप संकुचित क्यों हो रहे हैं बोलते–बोलते। मैं तो संघ का सेवक हूं। मैं भी तो सुनूं – ऐसी श्रेष्ठ आपकी सर्वहिताय सर्वसुखाय भावना को।

आगंतुकों में से एक बोले – श्रेष्ठिवर्य! हमारे पुण्योदय से आचार्यदेव के चरण जब से हमारी नगरी में पड़े हैं तब से कैसा पवित्र धर्म का मेला लगा हुआ है। नगर के आबालवृद्ध जैन–जैनेतर अपने भाग्य को सराहते हुए कितनी

श्रद्धा–भक्ति के साथ आचार्यदेव की सेवा में उपस्थित होकर तत्त्वचर्चा, धर्मदेशना श्रवण करने का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। क्या ही अच्छा हो, यह मेला सतत लगा रहे। आचार्यदेव का देह–बल भी आयु के तकाजे से अतिकमजोर होता जा रहा है। अब चलने में भी कितनी थकान महसूस होती है। यह देख, स्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्यश्री की विहारचर्या अब ज्यादा दिन नहीं चल सकती। इसलिये कहीं–न–कहीं अब स्थिरवास विराजना ही पड़ेगा, तो क्यों नहीं गुरुदेव का यहीं विराजना हो जाय और हमारे नगर का भाग्य ही खुल जाय?

आप संघ–प्रमुख हैं आपने भी इसके बारे में सोचा ही होगा। क्या कुशस्थलपुर इसके लिए योग्य नहीं है कि गांव में आई गंगा अन्यत्र न मुड़ जाय? इसमें आपका क्या विचार है? इतने में सार्थवाह गुणसुंदर आदि भी पहुंच गये। सबने उनका भी अभिवादन करते हुए कहा – चलो, यह भी ठीक हो गया, आप भी समय पर पधार गये। साथ ही सेठानी सिद्धिदेवी, गाथापति संघदास, उनकी धर्मसहायिका अर्हदासी, सार्थवाह की पत्नी मेरुसुंदरी, शाह समरादित्य व उनकी पत्नी रतिमाला, भावदत्त व उनकी पत्नी सत्यबाला आदि संघप्रमुख श्रावक–श्राविकाएं भी वहां पहुंच गईं। आज सबको एक साथ एकत्रित देख आश्चर्यानुभूति हुई। सब परस्पर कह रहे थे– चलो, मौके पर आप भी पधार गये। सबका यथायोग्य अभिवादन करके सबके यथास्थान बैठने के बाद नगरश्रेष्ठी सबको संबोधित कर कहने लगे कि मेरे आत्मस्नेही स्वधर्मी बन्धुओ एवं नगर–नागरिक जनो! आज हमारे सम्मुख एक सहज भावनात्मक प्रश्न उभरकर आया है। वह यह कि हमारे नगर की धर्मप्रिय जनता का प्रतिनिधित्व लेकर प्रस्तुत सज्जनों का फरमाना है कि आचार्यदेव की अल्प सन्निधि से ही सारे नगर में इतनी धर्म की लहर व्याप्त हो रही है, तो क्या ही अच्छा हो कि यह सान्निध्य अधिक–से–अधिक प्राप्त होवे, जिससे हर मानव को सुख, आनन्द की प्राप्ति होती रहे। इस दृष्टिकोण से इनके मन में ये भाव पैदा हुए हैं कि आचार्यदेव के शारीरिक बल की उत्तरोत्तर क्षीणता को देखते हुए अब विहारचर्या ज्यादा चलना संभव नहीं लगती। अब कहीं–न–कहीं स्थिरवास विराजना ही होगा, तो क्यों नहीं हम, घर आई आचार्यदेवरूपी धर्मगंगा को अपने आग्रह, विनती, मनुहार के बांध से यहीं बांध लें। ताकि हर व्यक्ति इनकी चरणोपासना से धन्य हो सके। यही चर्चा चल रही थी। इसमें सहज सोने में सुहागे रूप आप संघप्रमुखों का आगमन हो गया। तो क्यों नहीं इसके बारे में अपन सब बैठकर, चिन्तन करके अपने–अपने विचारों से अवगत करावें ताकि उस पर चिंतन करके आगे की भूमिका का निर्धारण करने में सुगमता हो। इतना कहकर संघप्रमुख श्रेष्ठी सागरचंद्र सबका मुख निहारने लगे।

सब के मुंह से भावना की तो यही अभिव्यक्ति हुई कि इससे बढ़कर सौभाग्य की और बात क्या होगी। हम सब इस बात में सहमत व एकमत हैं कि इस अवसर का लाभ नहीं चूकना चाहिए। पर निर्णय भावुकता से ही नहीं, सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की भूमिका का चिंतन करके लेना ही उचित है। यह बात सार्थवाह गुणचंद्रजी ने कही। इस पर सब की मुखमुद्रा गंभीर हो गई और पूछने लगे– इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की भूमिका पर किस बात का चिंतन करना है? क्या हमारे पास द्रव्य की कमी है? क्या क्षेत्र की दृष्टि से इतने बड़े स्थानक में कोई कमी है? रही बात काल व भाव की, जिसमें विहारचर्या के अनुकूल अब आचार्यदेव का स्वास्थ्य भी नहीं है, इसलिए अन्य क्षेत्र की स्वीकृति के पहले ही हमको विनती करके स्वीकृति प्राप्त कर लेना उपयुक्त है। रही बात भाव की – उसमें भी कहीं किसी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम देख रहे हैं इतने समय से कि आचार्यश्री जब से पधारे हैं तब से हर व्यक्ति में भाव–भक्ति का सैलाब उमड़ रहा है। सब तन–मन–धन से सेवा में जुटे हुए हैं। बोलिये, और क्या विचार करने की आवश्यकता है? ऐसे ही अभिप्राय अर्हदासी, मधुप्रियाजी व सिद्धिदेवी ने भी अभिव्यक्त किये।

तब सब बात सुनकर गंभीर मुद्रा को धारण करके वे बोले – आपकी सारी बातों पर चिंतन करने पर यह तो स्पष्ट हो चुका है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की दृष्टि से हमारा यह क्षेत्र सब तरह से गुरुदेव की कसौटी पर अनुकूल ही उतरेगा। और मन में भी पूरा विश्वास है कि हमारी विनती को आचार्यदेव पूरा मान देकर स्वीकृति भी फरमा देंगे। पर विचारणीय बात तो यह है कि यह कार्य खाली शेषकाल या चातुर्मास जैसा ही नहीं, न मालूम कितने समय आचार्यदेव का यहां विराजना रहे और समय–समय पर कितने साधु–साध्वियों का आवागमन जारी रहे, साथ ही बाहर के श्रीसंघों का भी निरन्तर आवागमन जारी रहेगा। ऐसे में हमारा उत्साह, हमारी एकता व श्रद्धा एक–सी बनी रहे, तब तो ठीक है, नहीं तो हम अपयश एवं आशातना के भागी न हो जायें – इसका मन में विचार आता है।

गाथापतिजी की बात को सुनकर सब गहरे विचारों में डूब गये। तब सिद्धिदेवीजी बोली – आप भी कैसी बातों में उलझ गये हैं। जरा आप विचार करें, आचार्यदेव की इतनी अल्प सन्निधि में ही हमारी श्रद्धा, एकता, उत्साह को इतना संबल मिला है तो आगे तो आचार्यदेव की दीर्घकालीन उपासना में अभिवृद्धि ही होगी। कमी आने का कारण ही क्या है? आप तो सब एकमत होकर आचार्यदेव से आग्रहपूर्वक विनती करके स्वीकृति का पुरजोर प्रयास करें। पूर्ण विश्वास है कि हमारी आशा फलीभूत होगी जिससे आनन्द–ही–आनन्द होगा।

तो पुनः गाथापतिजी बोलने लगे – श्राविकाजी! थोड़ा जोश के साथ होश भी होना आवश्यक है। केवल जोश में निर्णय लेने से ही काम नहीं चलता। सारी बातों पर सर्वांगीण दृष्टि से चिंतन भी अपेक्षित है। एकता में विभेदता, उत्साह में अनुत्साह, श्रद्धा में अश्रद्धा उत्पन्न होने में भी देर नहीं लगती। जब अवसर आता है तो साधारण–से निमित्त से ही सब–कुछ व्यक्ति को विपरीत बना डालता है। ऐसे अनेक बिन्दु मेरे मस्तिष्क में उभर कर विचारों की गहराई में बरबस ले जाते हैं।

अर्हदासी बोली – आपकी तो एक आदत–सी बन गई हर बात की गहराई में उलझने की। पर उलझने से ही तो कार्यसिद्धि नहीं होती। समस्या है तो उसका समाधान भी है। इसलिये यदि आपके मस्तिष्क में कोई ऐसी समस्या हो तो वह सबके सामने रखिये ताकि उस पर सब चिंतन करके उसका समाधान खोजें और कार्य को आगे गति प्रदान करें। केवल उलझने से ही काम नहीं चलता।

गाथापति अपनी धर्मसहायिका की बात को श्रवण कर कहने लगे – आप का चिंतन तो यथार्थ है और आप चाहती हैं समस्या को सुनना, पर बात ऐसी है कि सत्य सदा कटु होता है। इसी के अनुसार मेरे मस्तिष्क में सबसे बड़ी एक समस्या उलझती जा रही है जिसको सुनकर शायद आप उसको साधारण समझकर हँसने भी लग जायं और यथार्थता को समझकर उसकी गहराई में भी उतर जायं। वह समस्या यह है कि आचार्यदेव, संत, मुनिराज यहां विराजेंगे तो उनकी सेवा–भक्ति बजाने में, यश–गाथा गाने में तो कोई पीछे नहीं रहेंगे। पर समस्या यह है कि संत, मुनिराजों का उपदेश देने का काम है। उनका लक्ष्य रहता है कि अजैन जैन बनें, जो जैन हैं वे श्रावक बनें और श्रावक साधु बनें और जिन–शासन की प्रभावना करें। इस बात को सुनकर सार्थवाह की पत्नी मेरुसुंदरी बोल उठी – वाह, वाह, जीजाजी! क्योंकि इन तीनों ने आपस में धर्मबहन का सम्बन्ध जोड़ रखा था इसलिए बोली – आप भी शेखचिल्ली जैसी बातों की गहराई में उलझ जाते हैं। साधु–साध्वियों का क्या यह आगमिक कर्तव्य नहीं है और भव्य आत्माएँ इसको अपना अहोभाग्य नहीं मानती हैं कि हमारे कुल में कोई पुण्यात्मा इस प्रकार अपना आत्मोत्कर्ष साधे? यह सभी जानते हैं कि साधु–साध्वियों के दर्शन, वंदन एवं प्रवचन– चातुर्मास का सान्निध्य प्राप्त हो क्योंकि वे मंगल हैं, उत्तम हैं, वे ही शरणभूत हैं, तो साधु–साध्वी आएंगे कहां से? उनके तो पैदा होने से रहे। आयेंगे तो श्रावक–श्राविकाओं के घरों से और निकलेंगे जिनका महान् पुण्योदय होगा। और यह भी सत्य है कि जिनका चारित्रमोह का क्षयोपशम होगा वे तो एक दिन

के सान्निध्य से ही जाग्रत हो जायेंगे और निकल पड़ेंगे अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर, फिर कोई शक्ति उनको रोक नहीं सकती है। रात दिन–हम ऐसे कितने उदाहरण महाराजश्री के व्याख्यानों में सुनते आये हैं। फिर इतने गहरे उलझने की क्या आवश्यकता है? गाथापति – बाईजी! उलझने की बात नहीं है। ये बातें कहने में जितनी सरल, सुनने में जितनी कर्णप्रिय लगती हैं उतनी ही अपने पर घटते ही सारी श्रद्धा, भक्ति और एकता गौण हो जाती है और लोग किनारा लेने लग जाते हैं। साथ ही, साधु–संत भी कड़वे लगने लग जाते हैं।

सिद्धिदेवी बोली – कुछ अंशों में आपका चिंतन यथार्थ है, पर इन बातों में उलझकर हमको ऐसे महान् लाभ से वंचित होना उचित नहीं है। इसलिए आप सब से एक ही निवेदन है कि अपन सब एकमत होकर आचार्यदेव को आग्रहपूर्वक निवेदन करके स्वीकृति प्राप्त करें। हमारा महिला मंडल तो इसके लिए कृतसंकल्प है। यदि आप आगा–पीछा करोगे तो यह बीड़ा हमको उठाना पड़ेगा।



(९)

सिद्धिदेवी की इस मर्मभरी बात को सुनकर सब एकमत हो गये और 'शुभस्य शीघ्रम्' की कहावत को चरितार्थ करते हुए उठकर सीधे स्थानक में पहुंच गये और जिनको भी समाचार मिले, सब धीरे–धीरे स्थानक में पहुंचने लगे। थोड़ी ही देर में व्याख्यान–स्थल भर गया।

संघप्रमुख श्रेष्ठी सारगचंद्र आदि मुनिश्री धर्मप्रियजी के पास पहुंचे और अर्ज की – भगवन्। आज संघ गुरुचरणों में अपनी अन्तर्भावना निवेदन करने पहुंचा है। इसलिए आप आचार्यदेव को धर्मसभा में लाने का कष्ट करें।

मुनि धर्मप्रियजी श्रेष्ठी सागरचंद्र की बात श्रवणकर हर्षित होते हुए आचार्यदेव के चरणों में उपस्थित हुए और सारी बात अर्ज करके सभास्थल में पधारने का आग्रह करने लगे। आचार्यदेव हालांकि शारीरिक स्थिति से कुछ विश्राम फरमा रहे थे, पर संघ की भावना का सम्मान रखते हुए धर्मप्रियजी के कंधों का सहारा लेते हुए सभास्थल पर ज्योंही पधारे, सारा सभास्थल आचार्यदेव के जयनाद से गूंज उठा। आचार्यदेव भी सबकी वन्दना स्वीकार करते हुए उच्च पट्ट पर आसीन हुए और मंद मुस्कानयुक्त वचन–माधुर्य की रसधारा प्रवाहित करते हुए फरमाने लगे – देवानुप्रियो! बताइये – आज आप किस अभिप्राय से यहां एकत्रित हुए हैं?

सब वंदनकर नीचे बैठ गये। तब संघप्रमुख श्रेष्ठिवर्य सागरचंद्रजी यतनापूर्वक अर्ज करने लगे – भगवन्! हमने सुना है – कल्पतरु सर्वइच्छाओं की पूर्ति करता है, चिंतामणि हर चिंता से मुक्ति दिलाती है, पर वह सुना–सुना ही है, देखा किसी ने नहीं है। पर हमारे समक्ष तो आप साक्षात् कल्पतरु, चिंतामणि विराजमान हैं। संघ आपके चरणों में याचक बनकर आया है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि वह खाली नहीं जायेगा। वह इच्छा यही है कि अब आपकी शारीरिक दुर्बलता, बढ़ती हुई कमजोरी व अवस्था को देखते हुए आप यहीं स्थिरवास विराजकर संघ को अंतिम सेवा का लाभ दें। यह हमारी ही नहीं, जैन–जैनेतर सबकी अभिलाषा है। हम इसके लिए तन–मन–धन, तीनों, से समर्पित हैं। बस, आपकी एकमात्र स्वीकृति चाहते हैं। संघप्रमुख श्रेष्ठी सागरचंद्र के साथ ही सभी श्रावक–श्राविकाओं ने भी एकस्वर में अपनी भावना अभिव्यक्त की।

आचार्यदेव ने सबकी भावना को सुना, समझा और बोले – आप सबकी भावना श्रेष्ठ है। साथ ही कुशस्थलपुर का क्षेत्र भी संयमी जीवन के पूर्ण अनुकूल है और मेरा शारीरिक बल भी आपके चिंतन के अनुरूप ही है। फिर भी निर्णय के लिए कुछ समय मिलना आवश्यक है ताकि मैं अपने अंगरूप प्रमुख साधु–साध्वियों के अभिप्राय को भी जान सकूं। आचार्यदेव के इन अभिप्रायों से विश्वस्त होकर सब तहत्ति का उच्चारण करके बोले – नाथ! बस, हमको निराश न करें, यही सबकी अपेक्षा है। ऐसा कहकर वन्दन करके सब अपनी–अपनी दिशा की ओर प्रस्थान कर गये।

अब केवल संतवर्ग ही रह गया था। आचार्यदेव ने अवसर देखकर विचार–विमर्श किया तो सबको एकमत होते देर न लगी। सुदूर विचरण करने वाले संतों से भी विचार–विमर्श मंगाया गया तो सबके यही अभिप्राय आये कि आचार्यदेव की महानता है कि हमसे विचार–विमर्श मांगा। परन्तु हमारे संत–शिरोमणि धर्मप्रियजी महाराज आपकी सेवा में विराजमान हैं, वे आपके स्वास्थ्य की परिस्थिति से विज्ञ हैं। यदि आचार्यदेव और वे आवश्यकता महसूस करते हों तो कुशस्थलपुर क्षेत्र सब तरह से योग्य है। इससे किसी का मतभेद नहीं है। जैसा आचार्य भगवन् सोचें – वैसा निर्णय लेने की कृपा करें।

इधर संघ के सभी सदस्यों का प्रतिदिन, प्रतिपल एक ही आग्रह चल रहा है कि आचार्यदेव शीघ्र निर्णय लेकर हमें अनुगृहीत करें। साथ ही संघस्थ सब साधु–साध्वियों के अभिप्राय भी प्राप्त हो जाने पर आचार्यदेव ने संतप्रमुख मुनिश्री धर्मप्रियजी एवं साथ वाले संतों से पुनः विचार–विमर्श किया और आखिर इस निर्णय पर पहुंचे कि कल सभा में इसकी स्वीकृति दे देनी है।

ज्योंही संघ में इसका आभास हुआ तो जनसमूह इस सुखद संवाद को श्रवण करने हेतु उमड़ पड़ा स्थानक भवन में। विशाल स्थानक भवन खचाखच भर गया। आचार्यदेव भी मुनि धर्मप्रियजी का सहारा लेते हुए अन्य संतों के साथ सभा–स्थल में पधारे और पाट पर आसीन हुए। सब नर–नारी आचार्यदेव की जय–विजय का वर्धापन करते हुए वंदन करके अपने–अपने स्थान पर बैठ गये। उसके पश्चात् पुनः सागरचंद्र श्रेष्ठी के साथ श्रावक–श्राविकाओं ने अपना आग्रह दोहराया और पुरजोर अपनी भावनाओं की पूर्ति हेतु विनती प्रस्तुत करने लगे।

आचार्यदेव ने गंभीर मुद्रा में सब बातें श्रवण कीं और फरमाने लगे कि आपकी भावना, आग्रह, श्रद्धा, भक्ति सराहनीय हैं। फिर भी चिंतन करना अपेक्षित है। क्योंकि मेरे यहां रंहने से साधु–साध्वियों के साथ सुदूर प्रांतों से श्रावक–श्राविकाओं का भी निरंतर आगमन बढ़ सकता है। ऐसी दशा में आप पर उनकी व्यवस्थाओं का बोझ पड़ना भी स्वाभाविक है। हालांकि आपकी भक्ति–भावना में कोई कमी नहीं है, फिर भी चिंतन करना तो अपेक्षित है ही।

इतना सुनते ही संघप्रमुख, श्रावक–श्राविकाओं ने समवेत स्वर में अर्ज की– भगवन्! यह तो हमारे महान भाग्योदय की बात है। इसमें बोझ का सवाल ही कहां? हमारा तन–मन–धन, सब–कुछ धर्मसंघ एवं संघपति पर समर्पित है। हमारा है क्या? सब आपके पुण्यप्रताप व आशीर्वाद का ही सुफल है, तेरा तुझको अर्पित करने में किस बात का बोझ?

आखिर आचार्यदेव ने अपनी शारीरिक स्थिति, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता देखकर एवं पुनः मुनि धर्मप्रियजी से गहन विचार कर उनको ही अपने भाव अभिव्यक्त करने का निर्देश कर दिया।

मुनि धर्मप्रियजी ने गुर्वाज्ञा शिरोधार्य कर अपने अभिप्राय की अभिव्यक्ति के साथ ही फरमाया कि जब से हम आये हैं, उस दिन से आज तक कुशस्थलपुर नगरवासियों की भाव–भक्ति आदि अनुभव कर रहे हैं। यह नगर साधुमर्यादा के अनुकूल सब तरह से सहयोगी है। यहां उपचार के भी सब साधन हैं। जन–समुदाय भी सुलभ है। यह सब देखकर आचार्यदेव रखे जाने वाले सभी आगारों के साथ यहीं पर स्थिरवास विराजने की अनुमति प्रदान करते हैं। आप सब लोग जब तक गुरु महाराज यहां पर विराजें, उनके सान्निध्य से पूर्ण लाभ लेवें एवं अपने धर्मभावों की पुष्टि करें। आपसी तनावों से दूर रहें एवं किसी की धर्मभावना में अंतराय विघ्न पैदा न करें, इसी शुभभावना के साथ। यह शुभ सन्देश सुनते ही सभी ने जय–जय नाद से नभ गुंजा दिया और हर्षविभोर होकर इस संकल्प के साथ प्रस्थान करने लगे कि इस सुअवसर का पूर्ण लाभ उठाना है।



इस संवाद से अरुण को सबसे ज्यादा खुशी का अनुभव हुआ। अब तो बस, ज्योंही स्कूल से छूटता, भोजनादि से निवृत्त होता और चला जाता स्थानक में और अधिक–से–अधिक सामायिक लेकर ज्ञानाराधना करता। आचार्यदेव की सन्निधि से उसकी तत्त्वरुचि भी विकसित होने लगी। सामायिक, प्रतिक्रमण, बोल – थोकड़े आदि का ज्ञान प्राप्त करके अब शास्त्रवाचन व उनके अंतरंग भावों में पैठने हेतु तत्पर होने लगा। आचार्यदेव भी उसकी पात्रता को देखकर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करते और अधिक–से–अधिक शास्त्रों के गूढ़ार्थ को भी समझाते, साथ ही आत्मोत्कर्ष की भूमिका पर कैसे उत्तरोत्तर विकास हो, इसकी भी यथावसर प्रेरणा देते रहते। जिससे सहज ही अरुण के जीवन में एक नया मोड़ आने लगा। वह सादगी, सदाचार, सहजता, सरलता के सूत्रों को जीवन में उतारने लगा। रात्रि–भोजन का त्याग आदि व्रत–नियम का आराधन करने लगा व पर्व–तिथियों में उपवास, पोरुसी आदि का भी पालन करने लगा। अरुण की बढ़ती हुई धर्मभावना से सबको प्रसन्नता की अनुभूति होती। सब उसका ज्ञानीजी के उच्चारण से अभिवादन करते और अन्तर्भावों से धन्यवाद देते।

लेकिन उसकी यह चर्या परिवारजनों में, विशेष रूप से श्रेष्ठिवर्य सागरचंद्रजी के लिए समस्या बन गई। वे ऊपर से कुछ नहीं कहते, पर अंदर ही अंदर उस समस्या को सुलझाने का उपाय ढूंढने लगे। अनेक उपायों में से उनको श्रेष्ठ और सुगम उपाय यही लगा कि किसी तरह से इसको आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश दिला दिया जाय ताकि इस बहाने से यहां से उसका छुटकारा हो जायेगा तो अपने–आप उसकी दिशा में मोड़ हो जायेगा। ऐसा सोचकर मौके की तलाश में थे कि अवसर देखकर उसको पहले आदर्श विद्याश्रम के लिए प्रेरित किया जाय।

संयोग से एक दिन अरुण स्कूल से आया ही था कि सागरचंद्र श्रेष्ठी ने अपने पूर्ण स्नेहामृत का वर्षण करते हुए पुकारा– अरुण राजा! कहो, आप स्कूल से आ गये?

अरुण – हां, पिताश्री।

सागरचंद्र – कहो, कैसे चल रहा हैं अध्ययन?

अरुण – गुरुदेव की कृपा एवं आपके आशीर्वाद से ठीक–ठीक चल रहा है।

सागरचंद्र – बेटा अरुण! तुम मेरे सबसे छोटे व लाड़ले पुत्र हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम्हारी प्रतिभा का अधिक–से–अधिक विकास हो, जिससे

तुम्हारा और मेरा भी गौरव बढ़े। इसलिए मेरा विचार हैं कि अब तुमको आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश दिला दूं। क्योंकि उसमें अध्ययन करने से तुम्हारी प्रतिभा में अनुपम निखार आयेगा। मैंने अनुभव किया है कि जितने भी विद्यार्थी उसमें पढ़कर आये, सबने हर क्षेत्र में खूब प्रतिष्ठा अर्जित की है। तुमने सुना ही होगा – श्रेष्ठी गुणसुंदर का पुत्र शिवसुन्दर एवं महेश्वरदत्तजी का पुत्र गंगेश उसी विद्याश्रम में अध्ययन हेतु भर्ती हुए हैं।

इसी बीच सिद्धिदेवी भी आ गई – पिता पुत्र की बातों को ध्यान से सुनने लगी। अरुण कह रहा था – तात! अध्ययन तो मैं यहां कर ही रहा हूं। आपको मेरे बारे में क्या स्कूल के किन्हीं अध्यापकों की कोई शिकायत आई है? रही बात प्रतिभा की, वह तो स्वयं के पुरुषार्थ व विवेक पर आधारित है। यदि इनकी कमी है तो आदर्श विद्याश्रम में जाकर भी व्यक्ति पिछड़ सकता है और स्वयं का पुरुषार्थ व विवेक जाग्रत हैं तो व्यक्ति कहीं भी रहकर अपनी प्रतिभा में निखार ला सकता है।

साथ ही, दूसरी बात जो आप फरमा रहे हैं अपनी पद, प्रतिष्ठा की। उसका तो मूलाधार हैं – धर्म, संस्कार व सदाचरण, न कि सत्ता व संपत्ति। क्योंकि ऐसी प्रतिष्ठा तो दुराचारी व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है। यह तो मेरे भाग्य से सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ हो रही है कि मेरा व्यावहारिक अध्ययन के साथ ही गुरुदेव की पुनीत सन्निधि में धार्मिक अध्ययन भी प्रगति पर है। इससे मुझे बड़ी अन्तर्शान्ति का अनुभव हो रहा है और मैं स्वयं अपने–आप में अनुभव कर रहा हूं कि जैनागम ज्ञान में जो गहन तत्त्व समाया हुआ है वह किसी आदर्श से आदर्श विद्याश्रम में भी नहीं मिल सकता। जिन बातों का समाधान वैज्ञानिक भी नहीं ढूंढ पाते, उनका समाधान जैनागमों में गुरुदेव के द्वारा प्राप्त हो रहा है, जिससे मुझे व्यावहारिक शिक्षण में भी बहुत बड़ा सहयोग मिल रहा है। जब इसके आधार से मेरे प्राचार्यों के सामने चर्चा करता हूं तो वे भी बहुत आश्चर्य करने लग जाते हैं।

इसलिए तात! यदि आप वास्तव में मेरी प्रतिभा का विकास और आपकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं तो अन्यत्र भेजने का विचार छोड़ दें, यही मेरा आप से निवेदन है। यह कहते हुए अरुण का गला भर आया। वह डबडबाते नयनों से माता सिद्धिदेवी की ओर निहारने लगा।

माता सिद्धिदेवी अपने लाड़ले अरुण की यह दशा देखकर भावविह्वल हो गई। उसको अपने पास बुलाकर अपने अंचल से आंखों के अश्रु पोंछती हुई बोली – अरे पगले! इतनी–सी बात से इतना परेशान हो गया तू। जा, हाथ धोकर भोजन कर। मां के स्नेहिल वचनों से उसका दुःख कुछ हलका हुआ और

सीधा भीतर चला गया। मुंह धोकर भोजन करने हेतु भोजनशाला में गया। ज्योंही प्रभावती भाभी ने देखा – वह हँसती हुई, भोजन की थाली परोसकर ले आई। अरुण भोजन करने बैठा, पर दो–चार ग्रास लेकर उठ गया। आज भोजन भी उसको रुचिकर नहीं लगा।

इधर सेठानी सिद्धिदेवी सारी बात सुनकर श्रेष्ठिवर्य सागरचंद्र से कहने लगी – क्या बात है अरुण को आपने ऐसा क्या कह दिया जिससे वह एकदम उदासीन हो गया?

श्रेष्ठी सागरचंद्र बोले – कुछ नहीं, मैं उसको आदर्श विद्याश्रम में भर्ती कराने के लिए प्रेरित करने लगा तो वह अपनी तर्क देकर मुझे समझाने लग गया और वहां जाने के लिए बिल्कुल मना कर दिया।

सिद्धिदेवी – जब वह यहां के विद्या निकेतन में बराबर अध्ययन कर रहा है, अच्छी श्रेणी से उत्तीर्ण हो रहा है, न उसके बारे में स्कूल या अन्य स्थान से कोई शिकायत ही है तो फिर यहां से छुड़ाकर वहां भेजने में क्या सार है?

सेठ सागरचन्द्र – अरी, तुम तो बिल्कुल भोली हो। आगे–पीछे का कुछ चिंतन नहीं कर सकती। क्या तुम देख नहीं रही हो कि वह स्कूल से आते ही सीधा स्थानक भग जाता है और अधिकांश समय वहीं बिताता है। जिसका प्रभाव उसके रहन–सहन से सीधा परिलक्षित हो रहा है। इसलिए पानी पहले पाल बांधनी जरूरी है। नहीं तो फिर तुम खुद पछताओगी। यदि यही रंगत ज्यादा चढ़ गई तो पुत्र से हाथ धोने पड़ेंगे। इसलिए सीधा धर्मस्थान में जाने से निषेध न करके इस बहाने से ही इसको दूर किया जा सकता है।

सिद्धिदेवी – अच्छा, अब मालूम पड़ा आपकी बात का रहस्य। लेकिन विचार आता है कि आपके मन में यह धर्म व धर्मगुरुओं के प्रति दुर्भावना क्यों बनती जा रही है? क्या यही तो कारण नहीं है कि आप आजकल धार्मिक क्रिया में भी रुचि नहीं ले रहे हैं? बड़े आश्चर्य की बात है, जरा आप चिंतन करें, यदि साधु–संतों के पास जाने वाले सभी पर यह रंग लग जाता हो तो फिर कोई जाना ही क्यों चाहेगा? एक तरफ तो आप, जो लोग नहीं जाते, उनको जाने की प्रेरणा करते हैं, दूसरी ओर जो जाता है उसके प्रति ऐसी दुर्भावना रखते हैं। क्या यह आपकी पद–प्रतिष्ठा के अनुरूप है? जरा सोचें, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा कि जब हमारे संघप्रमुखों की श्रद्धा ही इतनी डावांडोल है तो फिर अन्यों की श्रद्धा में दृढ़ता आयेगी ही कैसे? इसलिए पतिदेव! मेरा आप से इतना ही नम्र निवेदन हैं कि आप इन व्यर्थ की चिंताओं से ग्रसित होकर न तो धर्मक्रिया छोड़ें, न किसी के बाधक बनें। जिस की जो भवितव्यता होगी, वह होकर रहेगा।

कदाचित् धर्म का रंग लग भी गया तो क्या कमी रहने वाली है? सुख लिखा होगा तो तीन पुत्रों से ही मिल जायेगा। इससे तो हमारी प्रतिष्ठा व गौरव भवों-भवों में बढ़ जायेंगे। मुझे तो लगता है गाथापतिजी की उस दिन की बात आप पर ही घटित न हो जाय।

सागरचन्द्र सेठानी सिद्धिदेवी की बात सुनकर पहले तो मन में झेंपे। फिर भी उसको दबाते हुए कुछ रोष में बोले – ठीक है, अभी तुम्हें कुछ मालूम नहीं पड़ता। तुम बेटे का पक्ष ले रही हो, फिर मुझे कुछ उपालम्भ मत देना।

सिद्धिदेवी – इसमें उपालंभ की कोई बात नहीं है। जब उसकी शिक्षा आदि सुव्यस्थित चल रही है तो हम उसकी इच्छा के विरुद्ध क्यों जबरदस्ती करें? अब तो वह सयाना भी हो गया है। बस, यथेष्ट यही है कि हम उसकी इच्छा पर ही छोड़ दें जिससे उसके अन्तर्मन में किसी प्रकार की कुंठा की गांठ न पड़ जाय। बस, यही निवेदन है।

बस, सिद्धिदेवी की इस बात को सुनकर बाद में श्रेष्ठी सागरचंद ने अपना आग्रह छोड़ दिया और अरुण अपने नियत कार्यक्रमानुसार व्यावहारिक अध्ययन के साथ धार्मिक अध्ययन भी करने लगा। इसी क्रम में उसने अपना अध्ययन भी पूर्ण कर लिया।



(११)

एक दिन आदर्श विद्याश्रम के निजी कक्ष के गवाक्ष में खड़ा-खड़ा प्रकृति के सौम्य वातावरण को निहारता हुआ शिवसुंदर अपनी रुचि के अनुसार उस समय के दृश्य को कवित्व कला के सौन्दर्य से वेष्टित करने में तन्मय, एकाग्र बना हुआ था। इतने में गंगेश अपने कक्ष से निकलकर अपने घनिष्ठ मित्र शिवसुंदर के कक्ष में पहुंच गया। हालांकि दोनों में से गंगेश शैवकुल व शिवसुंदर जैनकुल का होते हुए धर्म-संस्कार की भिन्नता के अलावा वे समवय और रुचि वाले थे। साथ ही दोनों विद्याश्रम के आदर्श छात्र व कलाचार्य के प्रिय शिष्य थे और दोनों ही कुशस्थलपुर के थे।

गंगेश ने शिवसुंदर के कक्ष में प्रवेश करते ही प्रकृति दृश्य में एकाग्र बन कर कुछ गुनगुनाते हुए शिवसुंदर को देखा और चुपचाप उसके पास आकर कौतूहलवश उसके कंधे को अपने हाथ से पकड़कर ज्योंही झकझोरा – शिवसुंदर की एकाग्रता टूट गई। खिन्नताभरे स्वर में बोला – यार गंगेश! तूने तो सारा मजा ही किरकिरा कर दिया।

तब गंगेश बोला – कौन–सा मजा लूट रहे थे? क्या किसी प्रेयसी की याद का, जिसमें मैं बाधक बन गया? श्रीमान्‌जी! जरा बताइये तो, ताकि मैं भी उस मजे का सहभागी बनकर अपने प्रियमित्र के मजे में अभिवृद्धि कर सकूं। ऐसा कहकर वह उसकी आंखों में गहराई से झांकते हुए बोला – दोस्त! इसमें सकुचाने की कोई बात नहीं है। पुरुष प्रकृति से ही प्रिया के अभाव में शून्यता का अनुभव करता हुआ रात–दिन उसी के स्वप्न देखता रहता है जिसकी अभिव्यक्ति पुरुष विभिन्न रूप से अभिव्यक्त करता रहता है। उसमें फिर कवित्व–स्वभावी का तो कहना ही क्या? वह तो जब उसको कविता के रूप में अभिव्यक्ति देता है तो बड़े से बड़ा सदाचारी भी आशिक बने बगैर नहीं रहता। पर मित्र, अभी उसमें गहरे उतरने का समय नहीं है। क्या तुम भूल गये, अभी हमको प्रधान कलाचार्य के पास पहुंचना है।

शिवसुंदर बोला – हां दोस्त! याद है; पर तू भी कैसा है, जो बात करनी चाहिये वह तो करता नहीं और बस, लगा है अपने विचारों की कसौटी पर ही सबको कसने–परखने। जबकि मेरे मन में ऐसे विचारों ने कभी स्थान ही नहीं पाया है। चला जा, जल्दी तैयार होकर आ। आज हमारा यहां से विदाई का एवं व्यावहारिक जीवन में प्रवेश का समय आ गया है। बस, आज से हमारी यह हंसी–ठिठोली और यह मनमोहक आह्लादकारी वातावरण, प्यारा–प्यारा मोदभरा बचपन सब छोड़कर हमको ऐसे जीवन क्षेत्र में प्रवेश करना होगा, जहां हमारे मन की कल्पनाएं मन तक ही समिति रह जायेंगी और हम जकड़ जायेंगे व्यावहारिक, सामाजिक, पारिवारिक बंधनों में।

गंगेश बोला– भैया! शिवसुंदर, बात तुम्हारी बिल्कुल सत्य है। हालांकि यहां का निर्मल–निश्छल वातावरण, कलाचार्यों का स्नेह, सुदूर विभिन्न प्रांतों के होते हुए भी सहपाठियों की आत्मीयता को छोड़कर जाने की इच्छा ही नहीं होती, पर जाना भी नियति है। यहां से ही क्या, संसार के हर क्षेत्र से यही क्रम जुड़ा है। अब छोड़ो इन बातों को, मैं तो तैयार होकर ही आया हूं, सिर्फ देर है तो तुम्हारे तैयार होने की।

शिवसुंदर – यार, तू भी कैसी बात करता हैं। मेरे तैयार होने में देर ही क्या लगती है! मुझे कोई हीरो का पार्ट तो अदा करना नहीं है जिसको सजाने–संवारने में देर लगे। कहते–कहते शिवसुंदर तैयार हो गया और अपने कक्ष को बंद करके चलकर सीधे प्रधानाचार्य के कक्ष के पास पहुंचकर भीतर प्रवेश–आज्ञा हेतु इंतजार करने लगे।

इतने में प्रधानाचार्यजी की दृष्टि दोनों पर पड़ गई। वे बोले – आओ मेरे प्यारे शिक्षार्थियो! मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था। आओ, तुम दोनों हमारे

आदर्श विद्याश्रम के आदर्श छात्र हो। तुम अपनी विनयशीलता, दिव्यप्रतिभा, काव्यरुचि से मेरे हृदय में बस गये हो। मुझे तुम दोनों छात्र रूप से ही नहीं, पुत्रों के समान ही लगते हो। लेकिन हम सब विवश हैं विधान की विडम्बना से। जिस प्रयोजन से तुमने यहां प्रवेश पाया, उस प्रयोजन की संपूर्ति हो गई है। अब तुम्हारी विदाई की दुःखद घड़ियां आ गई हैं। इसलिए कल तुम्हारा दीक्षान्त समरोह है, फिर घर चलने की तैयारी करना है। ताकि वहां जाकर तुम्हारे संरक्षकों एवं स्थानीय लोगों के बीच समारोहपूर्वक तुम्हारे अध्ययन की योग्यता का परीक्षण कराके उनको सुपुर्द किया जा सके। ऐसा कहते–कहते प्रधानाचार्य का गला अवरुद्ध हो गया।

प्रधान कलाचार्य की यह स्नेहिल अभिव्यक्ति सुनकर दोनों का हृदय गद्गद हों गया और चरणों में झुकते हुए बोले, आपका हमारे जीवन पर महाउपकार है। उस उपकार को हम कैसे चुका पायेंगे? आपने हमारा जीवन ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया है। जो सहज काव्यरुचि आपने हममें पैदा की है, वह जीवन के मरुस्थल में भी भव्य उपवन का निर्माण कराने वाली है। मन तो आपसे दूर होने का नहीं होता, पर संसार का कर्तव्यपथ इंतजार कर रहा है। साथ ही, न मालूम हमारा मन भी संसार की भव्य तरंगों के साथ अठखेलियां करने हेतु मचल रहा है। गुरुदेव, मन में यह प्रश्न भी उछालें मार रहा है कि ऐसा क्यों होता है? क्या यह वय का तकाजा है? कुछ समझ में नहीं आता।

शिवसुन्दर बीच में ही बोल पड़ा – गुरुदेव! यह गंगेश अपने मन की बात पर्दे में रख रहा है और स्वाभाविक भी है, अपने गुरुजनों के सामने ऐसी बात रखने में लज्जा की अनुभूति होना। पर सत्य को समझने हेतु पर्देरहित बात करना भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए स्पष्ट बात यह है गुरुदेव, कि इन दिनों में हमारे मन में स्त्री के प्रति सहज आकर्षण व लगाव उछालें मार रहा है। जिसको सामान्य भाषा में प्रेम कहते हैं। आखिर वह है क्या, कुछ समझ में नहीं आता। जिसके कारण व्यक्ति अपने परिजनों, सामाजिक बंधनों की उपेक्षा करता हुआ अपने–आप की भी विस्मृति कर बैठता है।

प्रधानाचार्य अपने दोनों प्रिय छात्रों की अप्रत्याशित जिज्ञासा से हतप्रभ हो उठे। फिर भी विद्यार्थियों की जिज्ञासा का समाधान करना अपना परम कर्तव्य समझके मर्यादित भाषा का विवेक रखते हुए बोले – वत्स! इस समस्या का समाधान अनादिकाल की परिधि से उलझता हुआ चल रहा है और जब तक नर–नारी का अस्तित्व है, तब तक उलझता ही रहेगा। क्योंकि यह परस्पर नर–नारी का आकर्षण शाश्वत तथ्य है। यह प्रेम जीवन का परम तत्त्व है। इसके बिना दोनों अपने जीवन में अपूर्णता का अनुभव करते हैं। तुम अनुभव कर ही रहे हो कि सारा काव्यशास्त्र इसी की महिमा से मंडित है।

प्रधानाचार्य की बात श्रवण करके शिवसुंदर कहने लगा – गुरुदेव, मुझे तो काव्य की सत्यता के प्रति संदेह ही होता है। गहराई से सोचें तो वास्तव में प्रेम कोई शाश्वत तत्त्व नहीं है। यह तो केवल संसारियों की वासना व भोग का रस है जो व्यक्ति को बेभान कर देता है। भले कवियों ने इसको कितना ही शृंगार रस से शृंगारित किया हो।

प्रधानाचार्य उनकी जिज्ञासा की गहराई में झांकते हुए बोले – वत्स, कुछ अंश में तुम्हारी बातों में सत्यता होते हुए भी वह जीवन के उन शाश्वत विधि–पक्षों को उजागर करता है जिनसे जीवन अलिप्त नहीं रह सकता। शैवदर्शन स्पष्ट बतला रहा है कि लक्ष्मी–नारायण, शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण, सीता–राम, महावीर–यशोदा, भी इससे अलिप्त नहीं रहे, जो आज जन–जन के पूज्य माने जाते हैं। वत्स! इसकी सत्यता का बोध तो अब तुम संसार में प्रवेश करने जा रहे हो, तो अपने–आप ही हो जाएगा।

इतने में गंगेश व्यंग्यात्मक भावाभिव्यक्ति से बोला – शिवसुंदर! अब सुनले और समझले तुम्हारे आराध्य एवं दर्शन की यथार्थता का महत्त्व। गंगेश की यह व्यंग्यात्मक वचनावली शिवसुंदर को अच्छी नहीं लगी। वह बोल उठा – गुरुदेव! सच्चे आराध्य तो वे ही हैं जो इस विषय–विकार पर विजय प्राप्त कर चुके हैं और वे ही आराध्य मुझे अच्छे लगते हैं। लेकिन भोगों के दास बने हुए नारी–आलिंगन में ही परमानन्द मानते हैं। उन्हें मैं अपना इष्ट या आराध्य मानने के लिए तत्पर नहीं हूं। आप जिस प्रेम को शाश्वत तत्त्व बता रहे हैं, वह एकान्त सत्य नहीं है। क्या नर का नर से, नारी का नारी से प्रेम नहीं होता? यदि नर–नारी का आकर्षण ही शाश्वत है तो बेचारे नपुंसक की क्या दशा होगी? बस, इन्हीं बातों का चिंतन करते हुए मेरा अन्तःमन आपकी बातों से समाहित नहीं हो पा रहा है।

शिवसुंदर की बात से प्रधान कलाचार्य को लगा कि आज जाते–जाते मेरी बातों से उसका मन व्यथित हो रहा है। ऐसा जानकर बोले – वत्स! जिनत्व अति उच्च आदर्श है। वहां तक पहुंचना वास्तव में हर सामान्य के वश की बात नहीं है। मैंने तो मेरे चिंतन के आधार पर ही बात रखी है। अब तुम स्वयं यथार्थता का चिंतन करने में सक्षम हो और समय–समय पर महापुरुषों के सत्सानिध्य से सत्य तथ्य का अनुसंधान करना और उसके अनुरूप अपने जीवन को आदर्श बनाना। गंगेश भी इसी प्रकार शिवसुंदर की बातों को सुनकर एवं उसके मन की व्यथा को समझकर विचारों की गहनता में उलझ गया। तब प्रधानाचार्य दोनों के मन की उथल–पुथल को देखकर मन्द–मन्द मुस्कान के साथ बोले– भैया! मैंने तो आपको इन विचारों में उलझने के लिए नहीं, तुम्हारे

दीक्षान्त समारोह की सूचना देने हेतु बुलाया था। यदि चर्चा में किसी प्रकार से मन व्यथित हुआ हो, तो क्षमा चाहता हूं। यह सुनते ही तो शिवसुंदर और गंगेश दोनों चरणों में झुझकर कहने लगे – आप यह क्या कह रहे हैं? इस चर्चा से तो चिंतन की गहरी सामग्री प्राप्त हुई। क्षमा तो हम हमारी अशिष्टता हेतु मांगते हैं। आप महान् हैं, हमें क्षमा करें। इस प्रकार दोनों हर्षित होते हुए अपने–अपने कक्ष में चले गये।



(१२)

प्राचीन विद्या–संस्कार पद्धति और अर्वाचीन संस्कार पद्धति में महान अंतर आ गया है। प्राचीन विद्या–संस्कार पद्धति में बालक को आठ वर्ष की वय में कलाचार्य को सौंप दिया जाता था। वहीं आठ वर्ष तक विद्यार्थी को रहना पड़ता था। बिना विशेष परिस्थिति के घर जाना तो दूर, पारिवारिक सदस्यों से मिलना भी नहीं होता था। इस प्रकार परिवार के मोह–बंधन एवं अन्य कोलाहल से दूर जीवन की सर्वकलाओं की शिक्षा प्रदान की जाती। शिक्षा पूर्ण होने पर शिक्षार्थी को दीक्षान्त समारोहपूर्वक कलाचार्य स्वयं अपने साथ ले जाते उनकी योग्यता की परिजनों से परीक्षा कराकर फिर छात्रों को सौंप दिया जाता। उसके बदले पारिवारिक जन पूर्ण हर्षित भाव से कलाचार्य को बहुमूल्य भेंट प्रदान करके उनका आभार मानकर ससम्मान विदाई देते थे।

गंगेश, शिवसुंदर को भी आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश पाये आठ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। जीवन की हर कला में उन्होंने विशिष्टता प्राप्त की थी जिससे सारे विद्यार्थीगणों के साथ कलाचार्य एवं प्रधान कलाचार्य के भी वे अतिप्रिय बन गये थे। उनके दीक्षान्त समारोह की बात सुनकर सब का मन व्यथित हो उठा था, पर कोई उपाय भी नहीं था।

दीक्षान्त समारोह की तैयारी होने लगी, विशाल सभाभवन में सब एकत्रित होकर अपने–अपने स्थान पर बैठ गये। गंगेश और शिवसुंदर भी कलाचार्यों के पास मंच पर बैठ गये। विद्यार्थियों ने मंगलाचरण करके विदाई गीत प्रस्तुत किया जिसमें उनके विछोह की व्यथा झलक रही थी। सुनने वालों की आंखें भी नम हो गई थी। क्रमशः सभी कलाचार्यों ने भी दोनों को जीवन–आदर्श की प्रेरणा प्रदान करते हुए मंगल भावनाएं अभिव्यक्त की। प्रधान कलाचार्य जब बोलने हेतु खड़े तो उनका कण्ठ अवरुद्ध–सा हो गया। फिर भी उन्होंने कहा – इन दोनों की विनयशीलता, काव्य–रसिकता, मिलनसारिता एवं अध्ययन की सजगता, सात्त्विकता ने हम सबको ऐसा प्रभावित किया है कि आज

विछोह के समय हमारा हृदय गद्गद हो रहा है। ये हमारे आदर्श विद्याश्रम के आदर्श छात्र बनकर आज संसार को आदर्श बनाने हेतु प्रस्थान कर रहे हैं, इसका हमें गौरव है। हम सब इनके उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करते हैं।

इसके पश्चात् गंगेश एवं शिवसुंदर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बोले – हमारे महान उपकारी कलाचार्यों एवं सहपाठियों! इस विद्याश्रम में प्रवेश किये आठ वर्ष हुए, जिसका हमें आभास ही नहीं हुआ, मानों आठ दिन ही हुए हैं। हमने यहां प्रधानाचार्य व अन्य कलाचार्यों का एवं आप सब सहपाठियों का जो स्नेह पाया उससे हमें जनक–जननी एवं जन्मभूमि की कभी याद ही नहीं आई। गुरुजनों की कृपा से हमको जीवन जीने की सर्वकलाओं के अच्छे संस्कार प्राप्त हुए, जिसके हम जीवनभर ऋणी हैं और रहेंगे। बस, आपके चरणों में यही विनम्र निवेदन है कि आपकी शिक्षाएं हमारे जीवन के हर क्षेत्र में वरदान बनती रहें। हम जीवन के समर में विजय के गीत गाते हुए आगे बढ़ते जायें, यही प्रार्थना है। साथ ही सहपाठियों के प्रति भी यही मंगलकामना करते हैं कि आप भी यहां से आदर्श जीवन जीने की कला सीखकर जायें ताकि आपका जीवन आदर्श बने, इसी शुभकामना के साथ गुरुजनों को प्रणाम।

ज्यों ही अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करके वे बैठे। सब धन्य–धन्य बोल उठे और सहपाठीगण अपने–अपने स्मृतिचिह्नों की भेंट प्रस्तुत करते हुए शुभकामनाएं अभिव्यक्त करने लगे। इसी सौहार्दमय वातावरण में दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ।



(१३)

प्रधान कालाचार्य अपने दोनों प्रिय छात्रों को साथ लेकर कुशस्थलपुर की ओर प्रस्थान कर गये। जब यह शुभ संदेश गंगेश के पिता श्री महेश्वरदत्तजी व शिवसुंदर के पिता श्री गुणसुंदरजी को प्राप्त हुआ तो वे हर्षविभोर हो गये। उनके वहां पहुंचते ही गृह प्रवेश के पहले मंगल आरती उतारकर कुंकुम के तिलक के साथ श्रीफल एवं मंगल कलश से बधाते हुए मंगल प्रवेश कराया। सारे परिवार में ही क्या, सारे शहर में हर्ष का वातावरण छा गया। प्रधान कलाचार्य ने बड़े हर्ष भाव से परिजनों के समक्ष विचार प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि इन दोनों छात्रों से हम व हमारा विद्याश्रम गौरव की अनुभूति करता है। साथ ही, इन्होंने अध्ययन के क्षेत्र में कैसी योग्यता प्राप्त की है इसके परीक्षण की भावना है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि ऐसी सार्वजनिक जगह पर आप अपने नगर के बुद्धिजीवी, प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित करें जो इनकी योग्यता का परीक्षण करके प्रमाण प्रस्तुत करें और हमें निर्देश दें।

प्रधान कलाचार्य की इस युक्तियुक्त बात को सुनकर सब प्रसन्नता की अनुभूति करने लगे और जुट गये व्यवस्था जमाने में। मुख्य अतिथि के रूप में नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र का निर्णय हुआ और उनके घर जाकर जब सागरचंद्र श्रेष्ठी को सार्थवाह गुणसुंदर एवं महेश्वरदत्तजी ने बात रखी तो वे प्रसन्नता से झूम उठे और उनकी राय से ही मध्येश्वर शिव मंदिर में आयोजन का निर्णय हुआ। साथ ही नगर के अन्य प्रमुख नागरिकों, विद्वानों तथा सगे–सम्बन्धियों को भी आमंत्रित कर दिया गया।

परीक्षण का प्रांगण भव्य तो था ही, साथ ही सजावट की भव्यता से उसका और अधिक आकर्षण बढ़ गया। समय पर नगर–निवासी हर्षित भाव से वहां पहुंचकर अपने–अपने स्थान पर बैठ गये। नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र भी पहुंचने की तैयारी करने लगे तो अचानक अरुण पर उनकी दृष्टि पड़ते ही बड़े स्नेह से अपने पास बुलाया और कहने लगे -- बेटा अरुण! तुम्हें यह ज्ञात हो ही गया होगा कि आज सार्थवाह गुणसुंदरजी एवं महेश्वरदत्तजी के सुपुत्र शिवसुंदर एवं गंगेश आदर्श विद्याश्रम का अध्ययन समाप्त करके घर पहुंचे हैं। उनके लिए आज परीक्षण सभा का आयोजन मध्येश्वर शिव मंदिर के प्रांगण में रखा गया है। मुझे मुख्य अतिथि पद का निमंत्रण दिया है इसलिए मैं वहां जा रहा हूं। मेरी इच्छा है कि तुम भी वहां चलो। क्योंकि ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेने से अनुभव बढ़ते हैं।

पिताश्री की बात को सुनकर अरुण पहले तो विचार में पड़ गया। क्योंकि उसे किसी समारोह – गोष्ठियों आदि में भाग लेने की इच्छा ही नहीं होती थी। क्योंकि उनमें होने वाले नाच–गान आदि से उसकी प्रकृति का मेल नहीं खाता था, फिर भी विद्यार्थियों के परीक्षण समारोह की बात सुनकर उसके मन में कौतूहल पैदा हो गया। सोचने लगा, उसमें तो विद्वद्वर्यों की उपस्थिति होगी इसलिए उसका मन बन गया और बोला पिताश्री – मैं अभी तो विद्यालय जाना चाहता हूं क्योंकि वहां परिणाम की घोषणा होगी। उसको सुनते ही सीधा मैं वहां पहुंचने की कोशिश करूंगा। यह कहकर वह सीधा विद्यालय चला गया।

इधर श्रेष्ठी सागरचंद्र अपने रथ में सवार होकर मंदिर के प्रांगण में प्रवेश करने लगे, इतने में अरुण भी वहां पहुंच गया। जिसको देखकर श्रेष्ठी सागरचन्द्र हर्षित होते हुए अपने साथ लाई उपहार सामग्री की मंजूषा अरुण के हाथ संभलाते हुए बोले – यह रख अपने पास में और जब मैं मांगूं, तब मुझे देना। अरुण पेटी हाथ में लेकर पिताश्री के साथ सभास्थल में पहुंच गया। सबने श्रेष्ठी सागरचंद्र का स्वागत किया और मुख्य अतिथि के लिए निर्धारित स्थान पर बिठा दिया। श्रेष्ठी सागरचन्द्र ने आसन ग्रहण किया और पास ही अरुण भी बैठ

गया अन्य अतिथियों के साथ। उनके पास में ही प्रधान कलाचार्य भी भद्रासन पर विराजमान थे। उन्हीं के पास गंगेश एवं शिवसुंदर भी बैठ गये और कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

सर्वप्रथम बालिकाओं ने समवेत स्वर में सरस्वती वंदन–गीत प्रस्तुत किया। बाद में प्रधान कलाचार्य ने आदर्श विद्याश्रम के उद्देश्य, स्थापना एवं कार्यपद्धति का वर्णन ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया कि सबका मन उसकी ओर प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। फिर बोले – आपके यहां के दो रत्नों ने हमारे आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश किया था। उनको कैसी शिक्षाएं दी गई व उन्होंने उस क्षेत्र में कैसी योग्यता पाई है, इसका आज परीक्षण समारोह रखा गया है। आप सुज्ञजन इनकी हर तरह से परीक्षा करके निर्णय करें। साथ ही यदि किसी बात की कमी महसूस हो तो सूचित करें ताकि हम उसका आगे के लिए परिमार्जन कर सकें।

प्रधान प्राचार्यजी के वक्तव्य के पश्चात् गंगेश एवं शिवसुंदर की परीक्षा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। दोनों के स्वजन–परिजन एवं प्रमुख विचारकों, विद्वानों एवं प्रतिष्ठितजनों ने अनेक प्रश्न प्रस्तुत कर विभिन्न दृष्टिकोणों से परीक्षा ली। उनकी हाजिर जवाबी, विषय की स्पष्टता, वचन–माधुर्य, विनयशीलता, शिष्टता से सबको हार्दिक सन्तुष्टि हुई। सबने अन्तर्मन के आशीर्वाद के साथ उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना प्रस्तुत की। साथ ही, एक प्रश्न ज्वलन्त रूप से यह भी उभर कर सामने आया कि आप इन कलाओं का कैसा उपयोग करेंगे?

इसके उत्तर में गंगेश बोला – जीवन सजाने, संवारने और आनन्द की अनुभूति में कला सहायक होती है, इसलिए यथाप्रसंग ही इसका प्रयोग अपेक्षित है और वैसा ही करेंगे। जबकि शिवसुंदर बोला – भूखे पेट सब कलाएं व्यर्थ हैं। कलाएं वही सार्थक हैं जिनसे स्व–पर के जीवन की समस्या सुलझे और जीवन को संस्कारित बनाने में सहयोगी बने। केवल भोग–विलास की समस्या को सुलझाना ही कला की सार्थकता नहीं है। कला तो वही सार्थक है जिसमें आत्मोन्नति के साथ ही व्यावहारिक विवेक जाग्रत रहे, उसी में कला का उपयोग करने की भावना रखता हूं। दोनों के इस उत्तर से साधु–साधु की आवाज से मंडप गूंज उठा।

नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र भी प्रसन्नता से झूम उठे, सिर्फ एक ही कसक थी कि काश मेरा अरुण भी इसी आदर्श विद्याश्रम में प्रवेश पाता। उन्होंने उसी प्रसन्नता के वातावरण में अरुण से मंजूषा लेकर एक बहुमूल्य मणिमाला निकाली और कलाचार्य के हाथ में थमाने लगे और बोले – यदि मेरा अरुण आपके विद्याश्रम में प्रवेश पाता तो और अधिक भेंट प्रदान करता। यह देख सार्थवाह

गुणसुंदर और महेश्वरदत्त भी मन में विचारने लगे – यह परीक्षक पद की मर्यादा के विपरीत है लेकिन कुछ नहीं कह सके, पर कलाचार्य की विचक्षण दृष्टि से उनके मनोभाव छिप नहीं सके। उन्होंने तुरन्त स्थिति को संभालते हुए मणिमाला नगरश्रेष्ठी को लौटा दी और बोले – यह दोषपूर्ण परम्परा डालना अनुचित है। आप परीक्षक पद पर नियुक्त हैं। यह पद भी विशिष्ट है तो इसकी मर्यादा भी विशिष्ट है। इसको पुरस्कार के साथ जोड़ना इसकी गरिमा को घटाना है। साथ ही, मैं विद्याश्रम के लिए राशि व पुरस्कार छात्रों के माता–पिता से पाने का अधिकारी हूं। वे जो भी प्रदान करेंगे, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा। प्रधान कलाचार्य के ये विचार सुनकर सारा सभा मण्डप धन्य–धन्य की आवाज से गूंज उठा। जिसकी नगरश्रेष्ठी भी प्रशंसा किये बगैर नहीं रहे। दोनों छात्रों के परिजनों ने कलाचार्य व विद्याश्रम को दिल खोलकर पुरस्कार व सहयोग राशि भेंट की।

इसी बीच नगरश्रेष्ठी ने दो मुक्ता माला अरुण के हाथ में पकड़ाई और सभा में बोले कि मेरे तरफ से इन छात्रों का सम्मान मेरा छोटा पुत्र अरुण करेगा, क्योंकि यह इनका समवयस्क भी है। अरुण आज वैसे ही इस कार्यक्रम को देखकर हर्षविभोर था। साथ ही, उन छात्रों की योग्यता से अपनी योग्यता की तुलना करता हुआ संतुष्टित हो रहा था। जब मुक्तामाला लेकर अरुण स्टेज पर जाने लगा। उसके साधारण सादगीमय वस्त्रों को देखकर नगरश्रेष्ठी अपने मन में लज्जा का अनुभव करने लगे। लेकिन जनसमूह का ध्यान उसकी वेशभूषा पर नहीं जाकर उसकी सौम्य, शांत, प्रशांत, गंभीर मुद्रा पर टिक गया। अरुण बड़ी शिष्टता से विद्यार्थियों के पास पहुंचकर मणिमाला पहनाने को उद्यत हुआ। स्वयं प्रधान कलाचार्य भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे और बोल पड़े – वत्स! क्या अपने समवयस्कों का मौन रहकर ही स्वागत करोगे या शब्दों द्वारा भी? अरुण विचक्षण तो था ही, वह कलाचार्य के इंगित को समझकर मुस्कराता हुआ बोलने को जब उद्यत हुआ तो उसकी गंभीर भावमुद्रा ने ही सबको भावविभोर कर दिया। जब बोलने लगा तो सब को ऐसा महसूस होने लगा मानों कर्णकुहरों में अमृत वर्षा रहा हो।

अरुण बोला – प्रिय आत्मस्नेही बंधु! आप आदर्श विद्याश्रम के विद्यार्थी हैं और मैं स्थानीय कलायतन का विद्यार्थी हूं। आज आपका भी अध्ययन पूर्ण हो चुका है और मेरा भी। सहज आज इस परीक्षण सभा में आने का प्रसंग बन गया – इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। साथ ही आपकी योग्यता से गौरवान्वित हूं। मैं आपसे वय में छोटा हूं इसलिए मैं आपके सम्मान की जगह आपको प्रणाम करता हूं। साथ ही कलाचार्यजी को भी, क्योंकि उन्होंने मुझे बोलने हेतु प्रेरित

किया है। इस प्रकार तीनों को नमन करके छात्रों के गले में मुक्ताहार पहनाकर हर्षित मन से बोला – प्रिय बंधु! सच मानिये, सर्वकलाओं में श्रेष्ठ धर्मकला है। धर्मकला ही जीवन को सच्ची शान्ति प्रदान कर सकती है। आप इसको हृदय में स्थान देकर अन्य सभी कलाओं का जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में यथासंभव प्रयोग करके जीवन को आदर्श बनावें ताकि हम भी उनका अनुकरण करके जीवनलक्ष्य को सिद्ध कर सकें, यही मेरी आप से करबद्ध प्रार्थना है। यह कहकर ज्योंही अरुण कलाचार्य को नमन करने हेतु तत्पर हुआ, तो कलाचार्य ने तुरंत उसे बांहों में भर लिया और जनसमूह की ओर मुंह करके अरुण की पीठ थपथपाते हुए बोले – आज सहज दो छात्रों की जगह तीन छात्रों का परीक्षण हो गया। अरुण के सहज–सौम्य व्यवहार एवं अभिव्यक्ति से स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि इसने खूब पुरुषार्थ से अध्ययन की गहनता तक पहुंचने का प्रयास किया है। मैं हर्षविभोर हूं इसकी वाक्पटुता एवं अध्ययन की गहनता पर मेरा आशीर्वाद है कि इसका जीवन आदर्श के शिखर को छूए और जन–जन का आदर्श बने।

कलाचार्य के इस उद्बोधन से सारा जनसमूह हर्ष–हर्ष की ध्वनि से मंडप गुंजाने लग गया। स्वयं नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र, जो अरुण के आदर्श विद्याश्रम में जाने से मना करने पर मन ही मन रुष्ट एवं अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल मानकर अफसोस करते थे, आज उनका वह सारा भ्रम दूर हो गया और अपने–आप में गौरवानुभूति करने लगे। सभा विसर्जित हुई, सबने अपने–अपने गंतव्य की ओर प्रस्थान किया।



(१४)

अरुण अब व्यावहारिक अध्ययन से निवृत्त हो चुका था, फिर भी व्यावहारिक क्षेत्र के उत्तरदायित्व का अभी तक उस पर कोई भार नहीं था। इसका कारण था एक तो घर में सब से छोटा, दूसरा मुनीम, गुमाश्ते, पिताश्री, तीन भाई, सब, अपना–अपना उत्तरदायित्व संभाल रहे थे। इसलिए अरुण बिल्कुल स्वतंत्र था। जिससे अब वह अपना अधिक–से–अधिक समय आचार्यदेव की चरण–उपासना में व्यतीत करता। आचार्यदेव भी उसकी छिपी प्रतिभा से पूर्ण प्रभावित थे। उनकी हर समय अरुण पर कृपा बरसती रहती थी। जब भी अरुण उपासना में बैठता, आचार्यदेव अपनी वैराग्य रस की अमृतधारा प्रवाहित करते और आगमों के गूढ़ रहस्यों को समझाते रहते थे। जिससे अरुण का आगमज्ञान भी गहन होता जा रहा था, साथ ही उसके जीवन–व्यवहार में उतरता जा रहा था।

वह नित्य सामायिक, आराधना, प्रतिक्रमण, रात्रिभोजन एवं सचित्त पदार्थ सेवन का त्याग आदि व्रत, उत्तरोत्तर जीवन में सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श को नियमपूर्वक अपनाता हुआ चल रहा था। अन्य मुनिराज भी अरुण की बढ़ती हुई धर्म–भावना से प्रभावित थे।

मुनिश्री धर्मप्रिय आचार्यदेव के श्रेष्ठ ज्येष्ठ शिष्य थे। आचार्यदेव का सारा उत्तरदायित्व वे बड़ी कुशलता से संभाल रहे थे। उन की साधना, वक्तृत्व कला एवं व्यक्तित्व से सारा संघ प्रभावित था। यह सत्य है कि किसी भी महानता का मूल्यांकन परीक्षण की कसौटी पर खरा उतरते ही होता है। मुनिश्री धर्मप्रियजी निश्चित रूप से महान् साधक थे।

एक दिन वे अपने लघुशिष्य के साथ स्थंडिल भूमि पधारे थे। शौचादि की निवृत्ति के साथ पुनः नगर की ओर जाने को उद्यत हो ही रहे थे कि अचानक दो नवयुवक गहरे जंगल की ओर से बड़ी भयभीत दशा में भागते हुए आये और मुनि धर्मप्रियजी के चरणों में गिर पड़े और त्राहिमाम्–त्राहिमाम् की आवाज करने लगे। उनका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था, सांस फूल रहा था। शरीर पर सिर्फ लाल रंग का अधोवस्त्र था और सिंदूर की टीकियों से चिह्नित था। वे इतने भयाक्रांत थे कि मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। बस, मूकभाव से मुनि धर्मप्रियजी के चरण कसकरके पकड़े हुए अपने सिर को रगड़–रगड़कर अपने अश्रुप्रवाह से मुनिश्री के पाद का प्रक्षालन कर रहे थे। मुनि धर्मप्रियजी उनको आश्वस्त कर रहे थे। इतने में उनकी दृष्टि जिधर से वो भगकर आये उसी रास्ते पर पड़ी तो देखा एक काला–कलूटा, बदरूप व्यक्ति हाथ में शस्त्र लेकर क्रोधित होता हुआ आ रहा था, मानों कोई दैत्य ही आ रहा हो। मुनिश्री को समझते देरी नहीं लगी कि यह कोई कापालिक संन्यासी है।

वह चिल्लाता हुआ कर्कश स्वर में बोल रहा था। ये मेरी पूजा सामग्री हैं। मैं इन्हें ले जाये बिना नहीं छोड़ूंगा। आप इसमें बाधक न बनें। ऐसा कहते हुए वह पास में आ गया। तब तक मुनिराज भी संभल चुके थे। उन्होंने एकाग्रता से महामंत्र का स्मरण किया और बोले, भैया – आप कौन हैं और इन्हें ले जाने का क्या उद्देश्य है? लगता है आप इनकी हत्या करना चाहते हैं अर्थात् बलि चढ़ाना चाहते हैं। मुनिश्री की बात सुनकर पहले तो वह सकपकाया, फिर दहाड़ते हुए बोला – आपको इससे क्या मतलब, मैं कुछ भी करूं?

मुनि धर्मप्रियजी बोले – भैया! हम तो जैन मुनि हैं। हमारा तो परमार्थ ही प्रयोजन है। स्वार्थ का तो हम त्याग कर चुके हैं। दया, करुणा, अहिंसा– यही धर्म का मूल है और इसी प्रयोजन से पूछ रहा हूं। यदि आप इनकी हत्या करना चाहते हैं तो यह तुम्हारे लिए भी उचित नहीं है क्योंकि हिंसा दुःख का

ही फल देने वाली है, सुख का कभी नहीं। आप खुद ही सोचें यदि इसी प्रकार आपके पुत्र या आपके लिए कोई बलि का सोचे तो आपको सुख होगा या दुःख? मुनिराज की बात को सुनकर तो वह और जोर से चिल्लाता हुआ कहने लगा – मुझे यह बकवास सुनने का समय नहीं है। मुझे तो मेरे इष्ट को संतुष्ट करके मेरी कामना की पूर्ति करनी है, फिर चाहे हिंसा से हो या अहिंसा। से मुझे आपकी किसी बात पर विश्वास नहीं है इसलिए सार इसी में है कि आप मेरी पूजा–सामग्री को सौंप कर अपने स्थान की ओर चले जावें। नहीं तो मुझे विवश होकर आपको भी पकड़कर ले जाना होगा। इसलिए सोच लीजिए।

मुनि धर्मप्रियजी बोले – भैया! यह तो संभव नहीं है क्योंकि ये मेरी शरण में आ गये हैं और शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है। रही बात मेरी, इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है। तुम्हारे में और तुम्हारे इष्ट में शक्ति हो तो मेरी बलि दे सकते हो। लेकिन मेरे जीते–जी इनको तो बलि का बकरा नहीं बनने दूंगा। मुनिराज के इन वचनों ने तो मानों आग में घी का ही काम किया। वह तत्क्षण क्रोधावेश में बेभान हुआ जोर से अट्टहास करते हुए बोला – जब तो ठहर जा – अभी देख, मेरा और मेरे इष्ट का चमत्कार। यह कहकर उसने उस यंत्र को घुमाया जिसमें से कुछ धागों के गुच्छ निकले और फैलते हुए पहले तो उन दोनों युवकों को लपेटने लगे और फिर मुनि धर्मप्रियजी के पांवों को। मुनि धर्मप्रियजी अपने ऊपर आया उपसर्ग जानकर कायोत्सर्ग में खड़े हो गये और महामंत्र का स्मरण करने लगे। देखते ही देखते वे तंतु पुनः एकत्रित होकर उस शस्त्र में समा गये जिससे उस पुरुष को भारी झटका लगा। उसी के साथ उसका सारा जोश शांत हो गया। वह पास आया और आश्चर्य से मुनिराज को निहारने लगा। मुनिराज की शांत मुद्रा एवं उनकी आंखों से प्रवाहित होने वाले प्रकाश ने उसकी रही–सही क्रूरता को भी विनष्ट कर दिया और वह शांत भाव से टकटकी लगाकर मुनिराज को देखने लगा। देखते–देखते मुनिराज ने कायोत्सर्ग पालकर अपनी करुणा दृष्टि से निहारा। दोनों की दृष्टि मिली, पूर्व–स्मृति जाग्रत हुई। वह दौड़ता हुआ पास आया और उच्चारण करने लगा – अरे यह तो मेरा प्यारा धर्मा है। मुनिश्री ने भी पहचाना और बोले– प्रचण्ड? यह क्या?

प्रचंड उसी समय चरणों में गिर पड़ा और फूट–फूट कर रोते हुए एक ही आवाज निकाल रहा था: अरे मेरे प्यारे धर्मा, अरे मेरे प्यारे धर्मा – मैं तुझे नहीं पहचान पाया। मुनिराज ने उसको उठाया और बोले – अरे प्रचण्ड, तेरी यह कैसी दशा हो गई? तू किसकी कुसंगत से यह अंधविश्वास पकड़कर नर–संहार जैसे दुष्कार्यों में प्रवृत्त हो गया। वहां हृदयद्रावक वातावरण बना हुआ था। मुनिराज खुद असमंजस में पड़ गये, फिर भी बोले– भैया शांत होओ और धैर्य

धारण करो। मुनिराज के वचन उसको परम शांतिदायक लग रहे थे जिससे वह कुछ आश्वस्त हुआ और कहने लगा – प्यारे धर्मा, मैंने तुझे गोद खिलाया, चलना सिखाया, बोलना सिखाया और आज तू क्या से क्या बन गया! तूने जीवन की कितनी ऊंचाई प्राप्त कर ली। तेरी साधना की शक्ति से मेरी सारी क्रूरता शमित हो गई। वास्तव में तू चंदन बन गया और मैं कैसा पापी, हत्यारा बन गया।

तूने तो प्राप्त महान ऋद्धि, संपदा, सुख का त्याग कर दिया और साधु बन गया और मैं इस सुख की प्राप्ति के लिए कितना भटक गया। जब से मैंने अपनी पत्नी की बात में आकर एक मुर्गे की बलि दी। इसके बाद इस अपराध के कारण तुम्हारे पिताजी के डर से मैं वहां से भाग गया। जब रास्ते में तू मुझे मिला तूने मेरे प्रति अथाह प्रेम के कारण खूब रोकने की कोशिश की लेकिन जब मैंने रुकने का विचार ही नहीं किया तब तूने अपने प्रेम की सौगात रूप में अपनी बहुमूल्य गले की माला मेरे गले में डाल दी। वह यह देख – वह माला इधर मैं घर पहुंचा तो देखता रह गया। वह मेरा साथ तजकर के दूसरे के साथ चली गई। मेरे मन में पागलपन समा गया और बदले की भावना से मैंने शक्ति रूप देवी की उपासना चालू कर दी और पुनः उसको घर लाया तब से वह मेरी पूरी सेवा करने लगी। मेरे मन में उस शक्ति की उपासना के प्रति आस्था जम गई। ज्यों–ज्यों मुझे कुछ लाभ होने लगा त्यों–त्यों मेरे मन में अधिक आस्था जम गई और उसी हेतु इस नरबलि जैसे दुष्कर्म हेतु तत्पर हो गया।

आज मुझे मेरे पुण्योदय से तुम्हारे दर्शन हो गये और आज मुझे तुझसे सम्यक् बोध की प्राप्ति हुई। जिससे मैं यह समझ पाया कि आसुरी दैव्य शक्ति की उपासना से दुख ही दुख व ह्रास ही ह्रास हुआ है मेरा। वास्तव में सच्ची शांति तो इस अहिंसा भगवती की आराधना से ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए हे धर्मा! अब तू मेरा उद्धार कर। अब मैं तेरी शरण में हूं। अब तेरी आज्ञा ही मेरे लिए सर्वोपरि है। तेरी शरण को पाकर अब मैं सब छोड़ दूंगा। बस, अब मुझे अपनाले, मेरा उद्धार करदे। इस प्रकार वह चरण पकड़कर गिड़गिड़ा रहा था। दोनों युवक व लघुमुनि सब देख–देख कर आश्चर्य कर रहे थे।

इतने में आचार्यदेव को स्मृति में आया कि मुनि धर्मप्रियजी स्थंडिल गये तो वे अभी तक क्यों नहीं आये? इतनी देर तो उन्हें कभी नहीं लगती। जरा खोज करो तो क्या बात है? आचार्यदेव की आज्ञा पाकर दो लघुमुनि स्थानक से रवाना हुए तो रास्ते में कुछ बच्चे और साथ हो गये और उसी दिशा में बढ़ गये। पैरों के चिह्न देखकर यह तो विश्वास हो गया कि छोटे गुरुदेव इसी रास्ते से पधारे हैं। साथ ही, कुछ आगे बढ़ते ही तो बच्चे भयभीत होते हुए कहने लगे –

मुनिश्रीजी बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखिये वहां तो वह प्रचण्ड कापालिक खड़ा है जिसका नाम सुनते ही तो हमारी घिग्घी बंध जाती हैं। जिसके नाम से सारे शहर से भय छाया रहता है। मुनियों ने कहा – अब आ ही गये हैं तो घबराओ मत। गुरुदेव वहां खड़े जब स्वयं बात कर रहे हैं तो फिर अपने को किस बात की चिंता! लेकिन उन बच्चों ने एक नहीं सुनी और मुनियों को वहीं छोड़कर तेजगति से दौड़े–दौड़े शहर में आ गये और बड़े भयभीत होते हुए संघप्रमुखों को बताया कि वहां तो प्रचण्ड कापालिक मुनिश्री को घेर कर खड़ा है। यह सुनते ही सब भयभीत हो गये और चल पड़े समूह के समूह उसी दिशा में।

थोड़ी ही देर में नगर का विशाल जनसमूह जंगल में एकत्रित हो गया। सब का मन भय, आशंका से ग्रस्त हो रहा था। पर ज्योंही वहां जाकर देखा तो वह प्रचंड तो मुनिश्री के चरणों में लौटकर क्षमा मांग रहा है। सब पास में गये, मुनि धर्मप्रियजी को सकुशल देखकर सब प्रसन्न हुए और कहने लगे– मुनि–श्रेष्ठ! आपके पुनः नहीं लौटने से आचार्यदेव बहुत चिंतित हो रहे हैं। सुनकर मुनि धर्मप्रियजी बोले – धर्मप्रेमी बंधुओ। मैं तो आ ही रहा था लेकिन हमारा बचपन का स्नेही प्रचण्ड मिल गया तो इसको समझाने में समय लग गया। चलो, अब शीघ्र चलते हैं। साथ ही प्रचंड को बोले – भैया! आपको समझाने में बहुत देर हो गई। मेरे आराध्य गुरुदेव इंतजार कर रहे हैं इसलिए अभी तो हम जा रहे हैं। तब प्रचंड बोला – अब आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका शिष्य हूं। यह जीवन अब आपको समर्पित है। आपकी आज्ञा ही मेरा जीवन–धन है। आप पधारिये, मैं कल खुद गुरुदेव के चरणों में उपस्थित होऊंगा। ऐसा कहकर नमन करता हुआ वह अपने उद्यान की ओर मुड़ गया।



(१५)

इतने में लोगों की दृष्टि उन दोनों युवकों पर पड़ी और देखते ही बोल पड़े– अरे ये युवक कौन और इस हालत में कैसे? तब मुनिवर बोले – भाई! ये युवक कौन हैं इसकी तो अभी मैंने पूछताछ नहीं की है। सिर्फ ये भयभीत होकर भगे हुए आये और मेरे पांव पकड़के बचाओ–बचाओ की आवाज कर रहे थे। इतने में प्रचंड पीछे आ गया। पहले तो मैंने उसको कापालिक साधक समझकर ही सारी पूछताछ की तो मालूम पड़ा कि उसने इन बच्चों की बलि चढ़ाने हेतु अपहरण किया है। मैंने उसको सच्चे धर्म का स्वरूप समझाया पर पहले तो उसके समझ में नहीं आया और मुझे भी बलि का बकरा बनाने हेतु उसने अपनी विद्या का चक्र चलाया। पर गुरुदेव एवं महामंत्र की शक्ति के प्रभाव से उसका

चक्र नहीं चला। बाद में जब उसका कोप शांत हुआ तो मैंने उस पर अपनी दृष्टि जमाई। तो पहचान गया कि यह तो है प्रचंड, जो गृहस्थावस्था में हमारे यहां रहता था। मुझे अपनी गोद में खिलाता था, तब मैंने उसको उसके नाम से ज्योंही संबोधित किया तो उसने भी मुझे पहचान लिया। इसके बाद उसके विचारों में जो परिवर्तन आया, वह आप देख चुके हैं।

इतना सुनते ही वे युवक बोले – गुरुदेव! क्या आपने हमको नहीं पहचाना? हम आपके श्रावकों के ही तो लड़के हैं। यह समरादित्यजी का पुत्र नरादित्य और मैं भवदत्तजी का पुत्र गुरुदत्त हूं। इतने में दोनों के पिता भी पहुंच गये और अपने लाड़लों को देखकर बोले – गुरुदेव! ये चार दिन से गायब हैं। सारे परिवार में हाहाकार मच रहा है। खोज करते–करते परेशान हो गये। आश्चर्य होता है, ये इस हालत में आप के पास कहां से, कैसे पहुंच गये? खैर, आपके पुण्य प्रताप से इनको पाकर हमारी भारी चिंता समाप्त हो गई।

फिर दोनों को देखकर बोले – अरे तुमने यह कैसा स्वांग रचा है? तब दोनों युवक बड़े लज्जित होते हुए बोले – क्या बतायें, यह स्वांग हमने नहीं बनाया है। यह तो सारी करतूत उस प्रचण्ड कापालिक की है। तब बोले, सच बताओ – वह तुम्हें पकड़कर ले गया या तुम स्वयं मंत्र–तंत्र–सिद्धि के चमत्कार के चक्र में फंस गये? हम जानते हैं तुम्हारी लालसाओं व वासनाओं की। इस प्रकार इतने लोगों के बीच अपने पिताओं के वचन–प्रहारों से वे सकपका गये और लज्जा की अनुभूति करते हुए नीचे दृष्टि टिकाकर खड़े हो गये। इतने में विचार आया कि इस दशा में ही इनको ले जाने से तो लोगों में एक तमाशा खड़ा हो जायेगा, जैसे बंदर और मदारी का होता है। इसलिए यथेष्ट यही है कि घर से कपड़े मंगवाकर, स्नान कराकर फिर घर में ले जाया जाए। तत्क्षण घर पर जाकर वस्त्र लाकर दिये और उनको स्नान कराकर वस्त्र पहनाये। फिर घर ले कर गये और दोनों से पूछा – सच–सच बताओ कि तुम उसके चक्र में कैसे आ गये?

तब वे बोले– क्या बतावें, आप स्वयं हमारी प्रवृतियों से विज्ञ हैं। कई बार आपने हमको सावधान भी किया पर हमने उसकी उपेक्षा की, उसी का दंड हमने भोग लिया है। यह तो हमारे कुछ पुण्य अवशेष थे जिनके सुफल से ही मुनिराजों का उधर आगमन होना, उनके चरणों में आना और प्रचंड व मुनिराज धर्मप्रियजी का परिचित होना और हमारा मौत के मुंह से बच पाना संभव हुआ।

तात! क्या बतावें – हम एक सिद्ध योगी के जाल में फंस गये, तांबे को सोना बनाने की कला के लोभ में। वे हमें प्रचंड के पास में ले गये और तीन दिन तक उसकी पूर्वभूमिका का झांसा दिखाते हुए तंत्र–मंत्र पढ़ते रहे और हमारी

शुद्धि करते रहे। उसके आदेश का हम पालन करते रहे। हमारे होश तो तब ठिकाने आये जब हमको हमारे बलि चढ़ाने का आभास हुआ। बस, तभी हम मौका देखकर भाग निकले और हमको पकड़ने हेतु अन्य सहयोगियों के साथ यह प्रचंड भी हमारे पीछे पड़ गया।

हालांकि हम रास्ते से पूर्ण अनभिज्ञ थे, जिसका कारण था वहां हमारी आंखों पर पट्टी बांधकर रखा जाना। फिर भी पुण्योदय से भटकते–भटकते सही मार्ग पर आ गये और फिर गुरुदेव की साधना का जैसा चमत्कार हुआ, वह सब आपके सामने हैं, जो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी इच्छा है कि यह सारा आंखों देखा दृश्य हम स्थानक में ही गुरु–चरणों में रखें।

यह सुनकर सब को हर्षानुभूति हुई और सब लोग स्थानक में एकत्रित हो गये। मुनिश्री धर्मप्रियजी ने अपने शिष्यों के साथ स्थानक में प्रवेश किया। सारा मार्ग व स्थानक जय–ध्वनि से गूंज रहा था। आचार्यश्री विचार करने लगे कि क्या कोई संत–महात्मा विहार करके पधारे हैं? क्या बात है? आश्चर्य तो तब हुआ जब मुनि धर्मप्रियजी ने वंदना की। साथ ही विशाल जनसमूह सभा–भवन पहुंचकर आचार्यदेव को सभास्थल में पधारने का आग्रह करने लगा। आखिर आचार्यप्रवर भी सभास्थल में पधारकर पाट पर विराज गये। इतने में वे दोनों युवक– नरादित्य और गुरुदत्त– भी पहुंच गये। गुरु चरणों में वंदन करके बोले– परम आराध्य गुरुदेव! परिजनो, नगरवासियो! आज जो हम जीवित आपके बीच खड़े हैं वह सब मुनिराज श्री धर्मप्रियजी म.सा. की दिव्य साधना का चमत्कार ही समझें। हम दोनों एक सिद्ध योगी के चक्कर में फंसकर प्रचंड कापालिक के हाथों में पहुंच गये। वहां स्वर्ण–सिद्धि का लोभ देकर हमारी शुद्धि मंत्रों आदि के साथ तीन दिन की जाती रही। अचानक हमको ऐसा आभास हुआ कि यहां तो स्वर्ण–सिद्धि की नहीं, हमारी बलि की तैयारी हो रही है। हमारे होश उड़ गये। एक–दूसरे को संकेत देकर ज्योंही हमको मौका मिला, हम वहां से भाग निकले। समस्या जटिल थी, रास्ते की। क्योंकि हमको वहां आंखों पर पट्टी बांधकर ही ले जाया गया था। रास्ते से हम पूर्ण अनभिज्ञ थे इसलिए अपने प्राणों को हथेली पर रखकर जो दिशा मिली, उधर ही भाग निकले।

लेकिन हमारे पुण्य अवशेष थे इसलिए हम जिस दिशा में भागे जा रहे थे उसी मार्ग में हमको हमारे परमाराध्य धर्मप्रियजी महाराज दृष्टि में आ गये। बस, फिर तो क्या था! हम दौड़कर उनके चरण–शरण में पहुंच गये। हम इतने भयभीत थे कि एक शब्द भी मुंह से नहीं निकल रहा था। मुनिश्री हमको सांत्वना दे ही रहे थे कि प्रचंड कापालिक भी हमारा पीछा करते हुए वहां पहुंच गया और चिल्लाने लगा – यह हमारी पूजा–सामग्री है। हम इनको ले जायेंगे। पर मुनिश्री

ने बड़ी धैर्यता से उसको धर्मबोध दिया। पर वह तो और बिफर गया और कहने लगा – रहने दो आपका धर्म आपके पास। बस, सीधी तरह से इन्हें मुझे सौंप दो नहीं तो तुमको भी देवी का भोग बना दूंगा। ऐसा कहकर उसने अपने चमत्कारी शस्त्र का प्रयोग किया। हम तो पूर्ण बेसुध हो गये थे। भयभीत निगाहों से देख रहे थे कि अब क्या होगा! यही हाल छोटे मुनिजी का भी हो रहा था, पर गुरुदेव धर्मप्रियजी म. ने तो उसी समय अपने ऊपर आये उपसर्ग को जानकर कायोत्सर्ग कर लिया और उस पर अपनी दिव्य दृष्टि टिका दी और उवसग्गहर मंत्र का उच्चारण करने लगे – जिसके प्रभाव से ऐसा चमत्कार हुआ कि शस्त्र तो लुप्त हो गया जो हो गया, उस प्रचंड का प्रचंडपना भी ठंडा पड़ गया। वह आश्चर्यभरी दृष्टि से मुनिराज को निहारने लगा। जब उपसर्ग टल गया तो मुनिराज ने कायोत्सर्ग पाला और प्रचंड की ओर गहराई से देखने लगे। अचानक गुरुदेव ने उसको पहचान लिया और बोले – प्रचंड! यह तू किस भ्रम–जाल में फंस गया? इतने में तो उसने भी मुनिश्री को पहचान लिया और बोल पड़ा – अरे धर्मा! तू है, मेरे प्यारे धर्मा! कहता हुआ अश्रुपात करने लगा और कहने लगा – अरे धर्मा! तू कहां से कहां पहुंच गया। जिसे मैंने गोदी में खिलाया, बोलना–चलना सिखाया। तू मेरा प्यारा धर्मा और मैं नारी के वश हो, सुख की लालसा में कितनी नीच प्रवृत्तियों को धारण करके क्रूर व हिंसक बन गया मंत्र–तंत्र की सिद्धि के भ्रम में। और वह मुनिराज के चरणों में सिर रगड़–रगड़ कर रोने लगा और पश्चात्ताप करते हुए बोलने लगा – बस धर्मा, अब मैं तेरी शरण में हूं, तू ही मेरा गुरु है। अब मुझे शिष्य बनाकर मेरा उद्धार कर दे। यह कहकर जाता हुआ वह कहने लगा – मैं अभी मेरी पत्नी को सारी बात बताकर जल्दी ही तुम्हारे पास आता हूं और हम इधर आ गये। इस घटना को सुनते–सुनते लोगों के नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। सब मुनि धर्मप्रियजी की उच्च साधना की महिमा का गान करते हुए धन्य–धन्य बोल रहे थे। आचार्यदेव भी इस घटना से प्रमुदित हुए बिना नहीं रहे। सभा विसर्जित हुई।



(१६)

धीरे–धीरे यह चर्चा सारे नगर में फैल गई। अब तो जो नास्तिक से नास्तिक था, वह भी संत–समागम का लाभ लेने लगा। विशेषकर युवक लोग, जो धर्म से मुंह मोड़ते थे, वे भी अब धर्मस्थान में दिखने लगे और उनका मुनि धर्मप्रियजी से विशेष लगाव जुड़ने लगा। नरादित्य, गुरुदत्त व उनके साथ अनेक युवक भी नित्यक्रम से संत–समागम का लाभ उठाने लगे। इस घटना के दूसरे

दिन ही सब युवक तो धर्मचर्चा करके चले गये थे, केवल अरुण आचार्यदेव की सन्निधि में तत्त्वचर्चा का लाभ ले रहा था। इतने में वह प्रचंड स्थानक में आ पहुंचा और आचार्यदेव के दर्शन कर प्रसन्न हो उठा। मुनि धर्मप्रियजी ने उनका परिचय कराया। गुरुदेव ने उसको धर्म के मर्म का बोध कराया, जिसको पाकर प्रचंड की तो दिशा ही नहीं, दशा भी बदल गई। उसके मन में अपने किये पापों का गहरा पश्चात्ताप होने लगा। वह गुरुदेव से बोला – भगवन्! अब मैं इन पापों से कैसे मुक्ति पा सकता हूं? गुरुदेव बोले – भैया! इनसे मुक्ति पाने के लिए तप–संयम की आराधना ही एकमात्र सहायक है। बड़ा से बड़ा, अर्जुन जैसा हत्यारा, जिसने छः माह तक प्रतिदिन 6 पुरुष और एक स्त्री की हत्या की, उसने भी तप–संयम की आराधना कर छः माह में ही मुक्ति प्राप्त कर ली।

प्रचंड बोला – भगवन्! मैं भी तप–संयम का मार्ग अपना सकता हूं? आचार्यदेव ने फरमाया – क्यों नहीं! इस मार्ग में किसी को चलने की रुकावट नहीं। जो भी इस मार्ग पर चलना चाहे, उसे सत्ता, संपत्ति, परिवार का ममत्व त्यागकर गुरु–चरणों में जीवन समर्पित करना पड़ता है। क्योंकि इसके बिना वह राह भटक सकता है। गुरुदेव की बात सुनकर प्रचण्ड बोला – भगवन्! तो मैं भी अब इस तप–संयम के मार्ग पर चलने के लिए दृढ संकल्प करते हुए मेरे परमोपकारी व प्यारे गुरु धर्मा का शिष्य बनना चाहता हूं। क्या आप मुझे उनका शिष्य बनने की आज्ञा प्रदान करेंगे? आचार्यदेव बोले – पुण्यात्मा! क्यों नहीं। वे ही तो तुम्हारे सच्चे गुरु हैं। उन्होंने ही तुम्हारी दिशा और दशा बदली है। यह सुनते ही प्रचंड हर्षावेग से उछालें मारता हुआ मुनिश्री धर्मप्रियजी के चरणों में आकर बोलने लगा – और मेरे प्रभु धर्मा, क्या तुम मेरे जैसे पापी को अपना शिष्य बना लोगे? तब मुनि धर्मप्रियजी बोले – भैया! पहले आप इस मार्ग को समझ लो और अपनी शक्ति को तोलो। फिर आगे की बात करना। वह आश्वस्त हुआ। पास ही अरुण भी बैठा था! उसको देखकर वह विचार करने लगा – वाह रे सद्‌गुरु की महिमा! हमने इतने दिन आगम पृष्ठों पर ही पढ़ी थी, गुरुदेवों के मुख से सुनी ही थी, पर आज प्रत्यक्ष दिख रही है। बोला – प्रचण्ड! आप धन्य हो गये। इतने दिन आपके नाम से भय लगता था, आज आपको पाकर स्नेह उमड़ रहा है। यह सब सतगुरु की कृपा का प्रसाद है। आपके भवों–भवों के पुण्योदय से आपको आचार्यदेव व मुनि धर्मप्रियजी महाराज जैसे गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। अब आप के ये गुरु हैं इसलिए तू शब्द के प्रयोग की जगह 'आप' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

अरुण की इस बात को सुनकर प्रचंड हंस पड़ा और बोला – भैया! यह तू शब्द मैं नहीं बोल रहा हूं, मेरा वात्सल्य बोल रहा है। मैंने इनके यहां नौकर रहकर इनको गोदी में खिलाया, चलना, बोलना सिखाया, उसी स्नेह से यह तू

शब्द निकल जाता है, पर आपका कथन यथार्थ है। अब से इस बात का पूर्ण ध्यान रखूंगा। यह कहते हुए प्रचंड पुनः जोर से बोला – मेरे प्रभो! आप मुझे शिष्य रूप से स्वीकार कर लेना। अब मेरा उद्धार आपके ही हाथ है। आपकी शरण में अंतिम सांसें लेकर मरूंगा तो मेरा बेड़ा पार हो जायेगा। प्रभो! अब इसकी तैयारी के लिए मुझे क्या करना होगा, इसकी शिक्षा दीजिए।

प्रचंड की तीव्र भावना देखकर मुनिश्री बोले – भैया! इसके लिए धन–संपत्ति की तो कोई आवश्यकता नहीं है। उसको तो पूर्ण रूप से त्यागना होगा। ब्रह्मचर्य की साधना हेतु स्त्री का भी त्याग करना होगा। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत की साधना करनी होगी। रात्रि–भोजन का व जूते, चप्पल सवारी का भी त्याग करना होगा। प्रतिक्रमण कंठाग्र करके उभयकाल प्रतिक्रमण करना होगा। शक्तिशः तत्त्वज्ञान व तपश्चरण भी करना होगा। इन सब में सबसे पहले प्रतिक्रमण याद करना अनिवार्य है। साथ ही परिजनों की अनुमति लेना भी आवश्यक है क्योंकि इसके बिना किसी को दीक्षा नहीं दी जा सकती।

गुरुदेव धर्मप्रिय मुनिराज की बात सुनकर प्रचंड कहने लगा – आप प्रतिक्रमण का पाठ दे दीजिए, जिसको याद करते अन्य बातों के अभ्यास के साथ आगे की तैयारी करके शीघ्र आपके चरणों में उपस्थित होना चाहता हूं। मुनि धर्मप्रियजी ने प्रचंड को प्रतिक्रमण सूत्र का उच्चारण कराकर पुस्तक दे दी। प्रचंड पुस्तक लेकर वंदन करके घर चला गया और अरुण भी अपने घर की ओर चल पड़ा।



(१७)

वर्षावास का प्रारम्भ हुआ। कापालिक प्रचंड अब कापालिक नहीं रहा, वह राग से विराग पथ का उपासक बन गया था। अपने आश्रम में जाकर उसने हिंसक प्रवृत्तियों को तिलांजली दे दी थी। वहां पूर्ण अहिंसात्मक वातावरण निर्मित हो गया। अब तो वहां अध्यात्म–शक्ति का साम्राज्य छा गया था। काली–भैरव के आसुरी गान की जगह अहिंसा भगवती की आराधना एवं महामंत्र की ध्वनियां गूंजने लगी। उसने उन सब लोगों को विदाई दे दी, जो आसुरी प्रवृत्ति वाले थे। साथ ही एक दिन उसके मन में पाप के प्रति इतनी घृणा हो गई कि वह उस आश्रम को ही यह कहकर समाप्त करने को उद्यत होने लगा कि इन पाप के चिह्नों के रहने से भविष्य में कोई सिद्धियों के लोभ में पुनः इसमें पांव न रखे। साथ ही अपनी पत्नी को कहने लगा – प्रियतमा! अब मैं तो संयम पथ पर अग्रसर होने का निश्चय कर चुका हूं इसलिए अब इस विशाल संपत्ति

के भंडार को लेकर तेरी इच्छा हो वहां जाकर निवास कर। मैं तुझे अपने बंधन से मुक्त करता हूं।

प्रचंड की यह बात सुनकर उसकी पत्नी कहने लगी – नाथ! मैं आपके मंगलकार्य में बाधक नहीं बनूंगी। मुझे तो आज हार्दिक खुशी है कि आप का मन इस पाप प्रवृत्ति से निवृत्त हो गया है। मैं तो स्वयं आपकी इस हिंसक वृत्ति से घबरा जाती थी। कभी–कभी तो मुझे इतनी घृणा हो जाती कि यहां से भाग जाने की भी योजना बना लेती थी। जब–जब भी बलि के नाम पर गिरे नरमुंडों को देखती, मेरी आत्मा रो पड़ती, पर आपकी कोप दृष्टि से मैं भयभीत होकर चुपचाप सहन करती। जब से आपने इसका त्याग किया, तब से मैं बड़ी शान्ति का अनुभव कर रही हूं। वस मेरी सिर्फ यही अर्ज है कि इस आश्रम को उजाड़ने का चिंतन छोड़ दीजिए। क्योंकि मेरा जीवन यहीं के वातावरण में ही अभ्यस्त हो गया है। यहां के कण–कण से मेरा ममत्व जुड़ गया है। मुझे यहां रहकर जितनी शांति का अनुभव होगा, उतना किसी राजभवन में भी नहीं।

अपनी पत्नी की बात सुनकर प्रचंड बोला – तो क्या इस वन में तू अकेली रह जायगी – डरेगी नहीं, जरा सोच ले अपने हृदय में। तब वह बोली – नाथ! मैं भी आप जैसे सिद्धयोगी की पत्नी हूं। मुझे भी आप के साथ रहते–रहते कुछ सिद्धियां प्राप्त हो गई हैं। अब मेरे मन में भय का कोई स्थान नहीं है। मुझमें बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करने की ताकत है। मेरी आप कोई चिंता न करें और यह भी मन से विचार निकाल दें कि आप तो आदर्श त्याग का मार्ग अपना रहे हैं और मैं कहीं कोई गलत मार्ग न अपनालूं। मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाती हूं कि यह आश्रम आपके पाप की नहीं, त्याग की प्रेरणा देने वाला बनेगा। बस, आज से ही यह प्रचंड त्यागी जैनाश्रम होगा। यहां के हर चप्पे–चप्पे में परोपकारी प्रवृत्तियों को ही बढ़ावा होगा। मुझे इस धन से अब और क्या करना है? इसको परोपकार के कार्यों में ही तो लगाना है। फिलहाल मेरे अन्तर्मन में आपका अनुसरण करने की ताकत नहीं है। यदि ताकत आ जायेगी तो आप का अनुसरण करके अपने–आप को धन्य मानूंगी। तब तक मैं गुरुमहाराज से धर्म–श्रवण कर गृहस्थ धर्म का पालन करूंगी। यही मेरी हार्दिक इच्छा है।

प्रचंड अपनी प्रितयमा के इन निर्मल–स्वच्छ भावों को सुनकर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव करने लगा और उसको साथ लेकर गुरु–चरणों में आया। सारी बात बताकर अर्ज की– भगवन्! इसको गृहस्थ धर्म का व्रत–नियम करा दीजिए। मुनिश्री ने गृहस्थ धर्म के नियम समझाये। 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत के साथ–साथ सामायिक आदि की विधि समझाई। साथ ही प्रचंड को दीक्षा देने की लिखित रूप से आज्ञा भी प्राप्त कर ली।

अब प्रचंड मुनिराज के चरणों में रहने लगा। कभी–कभी वह आश्रम को भी संभाल कर आ जाता। धीरे–धीरे प्रतिक्रमणसूत्र व संयमी जीवन की आवश्यक चर्या का ज्ञानाभ्यास भी कर लिया और आग्रह करने लगा शीघ्र दीक्षा प्रदान करने की। आचार्यदेव ने उसकी अन्तर्भावना एवं योग्यता को देखकर दीक्षा तिथि आसोज सुदी द्वितीया की घोषित कर दी।

आचार्यदेव की घोषणा से सारे नगर में चहल–पहल मच गई। प्रचंड की धर्मपत्नी का आग्रह था कि यह दीक्षा उन्हीं की कर्मस्थली में हो और सारी व्यवस्था भी उसी की तरफ से हो, सिर्फ कार्य में सहयोग की अपेक्षा है। आखिर सबको इस बात पर सहमत होना पड़ा। दीक्षा समारोह का कार्य प्रारम्भ हुआ। अब तो जिस स्थान पर हिंसा का क्रूर तांडव नृत्य होता था वहां दीक्षा समारोह के गीत गूंजने लगे। प्रचंड की धर्मपत्नी की भावना बनी कि इस प्रसंग पर जिस रूप से जो–जो घटना घटी उसके ऊपर एक भव्य नाटक रचा जाय और इसका उत्तरदायित्व इस घटना से जुड़े नरादित्य और गुरुदत्त पर डाला जाय।

गुरुदत्त और नरादित्य ने ज्योंही इस बात को सुना, तो वे अपने मन में गौरवानुभूति करते हुए इस उत्तरदायित्व को वहन करने की स्वीकृति प्रदान करके जुट गये इस कार्यक्रम को मूर्त रूप देने हेतु। वे स्वयं कवि और कलाकार थे – उन्होंने नाटक की सारी भूमिका गद्य–पद्य दोनों विधाओं में तैयार की एवं उनके पार्ट हेतु एक मंडली की नियुक्ति हुई। दीक्षा की पूर्वरात्रि को ही अभिनन्दन समारोह के साथ ही यह कार्यक्रम रखा गया। विशाल दीक्षा मंडप, जिसमें कुशस्थलपुर व आस–पास की विशाल जनमेदिनी उपस्थित हो गई थी। नगर व संघप्रमुख अपने योग्य स्थान पर आसीन थे। संघ के कार्यकर्ता, मंत्री आदि कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे। मध्य में मंच बना हुआ था। पास में ही प्रचंड व उनकी प्रियादेवी का भी आसन लगा हुआ था।

समय पर नाटक मंडली मंच पर आई और सबका अभिवादन करके सबसे पहले प्रचंडजी व प्रियादेवी से अर्ज की– यदि इस भावाभिव्यक्ति में कहीं आपका दिल दुःख जाय तो क्षमा चाहते हैं। फिर यथाक्रम से मंगलाचरण के साथ कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। जिसका एक–एक दृश्य इतनी सजीवता से प्रस्तुत किया जा रहा था कि दर्शक भावविभोर हुए बिना नहीं रहे। जिस समय बलि हेतु नरसंहार का दृश्य प्रस्तुत किया गया, लोगों का हृदय कंपित हो उठा। लोग घृणा से मुंह बिचकाने लगे और बोलने लगे – धिक्कार है ऐसे अधर्म एवं उसके प्रवर्तक को। जब वह दृश्य प्रस्तुत हुआ तो नरादित्य व गुरुदत्त की बलि का और उससे मुक्ति पाकर मुनि धर्मप्रियजी की चरण–शरण पाने का और प्रचंड की दैत्याकृति का और फिर मुनिवर पर शक्ति प्रहार का, साथ ही मुनि

धर्मप्रियजी के कायोत्सर्ग के साथ उस शक्ति के संहार का, तो साक्षात् अधर्म पर धर्म की विजय का सजीव दृश्य प्रस्तुत हो गया और बाद में प्रचंड की वृत्ति का परिवर्तन, आश्रम की दशा का परिवर्तन, प्रचंड का धर्म में अनुरंजित होकर दीक्षित होने तक के सजीव दृश्य एवं गीतिकाओं के पद्यों से हर व्यक्ति भावविभोर होकर धन्य–धन्य की आवाज से मंडप को गुंजायमान किये बिना नहीं रहा। जिसने भी देखा, सबके मन में अपनी–अपनी स्थिति से प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रही। गंगेश, अरुण, शिवसुंदर भी उसी दीक्षा मंडप में थे। अंतर्मन में विभिन्न प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रही। शिवसुंदर विचारने लगा – यह नर–नारी का परस्पर आकर्षण बड़ा विचित्र है। उसके लिए क्या–क्या कर्म करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। गंगेश सोचने लगा कि नारी के बिना नर अधूरा है। इसके बिना सृष्टि चल नहीं सकती। अरुण को लगने लगा कि मुझे कुछ अज्ञात ज्ञात हो रहा है। मेरे जीवन में कुछ शून्यता की अनुभूति हो रही है। उसको कैसे भरा जाय, इसकी छटपटाहट मच रही है। पर वह है क्या, यह मैं नहीं जान पा रहा हूं। इस प्रकार चिंतन करते हुए सभी अपने–अपने घर पहुंच गये।

दूसरे दिन प्रातः ही दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रचंड मुनिवेश से सुसज्जित होकर गुरु–चरणों में पहुंच गये। प्रियादेवी की आज्ञा प्राप्त कर आचार्यदेव ने विधि सहित दीक्षा प्रदान की और प्रचंड मुनि के नामकरण के साथ ही मुनिश्री धर्मप्रियजी के शिष्य रूप में घोषणा फरमा दी।

उसी क्षण प्रियादेवी ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके श्राविका के व्रत–पालन का नियम लिया। अपनी सारी पूंजी को परमार्थ में लगाकर इस आश्रम को त्यागी प्रचंड आश्रम के नाम से घोषित करके उसमें छात्रावास, औषद्यालय एवं अनाथाश्रम, पौषधशाला के साथ ही प्रचंड त्यागी नगर स्थापित करने की योजना जनसमूह के सामने रखी। क्योंकि उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी, साथ ही अनेक सिद्धियों के साथ ही स्वर्णसिद्धि भी उसे प्राप्त थी। लेकिन उसी समय उसने उन सिद्धियों का परमार्थ कार्य के अलावा अन्य प्रयोग त्याग दिया। अब प्रचंड मुनि प्रचंड बनकर गुरुदेव के साथ उपाश्रय में पहुंच गये और तन्मय हो गये तप–संयम के आराधन में।



(१८)

अरुण का अध्ययन समाप्त हो चुका और गंगेश और शिवसुंदर के परीक्षण काल में उसकी सहज योग्यता भी उभर कर सामने आ गई। सेठ सागरचंद्र स्वयं आकर्षित हो गये, साथ ही, अपने लघुपुत्र की योग्यता से

गौरवानुभूति होने लगी। लेकिन अरुण के सीधे–सादे वस्त्र देखकर उनको अपनी पद–प्रतिष्ठा पर चोट महसूस होने लगी। साथ ही उसकी बढ़ती हुई भावना से भी मन शंकित–सा रहने लगा। विचार करने लगे कि अब इस पर नियंत्रण करना आवश्यक हो गया है। नहीं तो यह सुयोग्य पुत्र रूपी रत्न मेरे हाथ से छूट सकता है। पर समस्या थी, नियंत्रण कैसे लगावें। क्योंकि एक तरफ तो संघपति के पद पर प्रतिष्ठित थे, दूसरा धार्मिक क्षेत्र में इनका परिवार अग्रणीय गिना जाता था, साथ ही बहुत आग्रह से आगे होकर आचार्यदेव के स्थिरवास की विनती की और सार्थवाह गुणचंद्रजी ने उसी दिन चुटकी ले ली थी कि सन्तों के विराजने से कोई भव्यात्मा जाग्रत भी हो सकती है। उस समय हमारे मनोभाव कितने शुद्ध रह पावेंगे? इन सब बातों का चिंतन करते हुए मन ही मन सोच रहे थे कि ऐसा उपाय मिल जाय कि सर्प भी न मरे और लाठी भी नहीं टूटे। क्योंकि अब यह बच्चा नहीं है, स्वयं इतना सयाना और चतुर है जिसकी प्रतिभा के कलाचार्य एवं दर्शक, सब, उस दिन कायल थे।

इसलिए यथेष्ट यही है कि सारी बात ऐसे ही ढंग से करनी होगी कि अपने–आप इसमें परिवर्तन आ जाय। सेठ सागरचंद्र ऐसे ही अवसर की ताक में थे। संयोग से अरुण प्रतिक्रमण आदि से निवृत्त होकर जब पुनः घर आया, श्रेष्ठी सागरचंद्र और सेठानी सिद्धिदेवी परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। बहिन कल्याणी का भी विवाह हो चुका था। घर में उसकी जगह दो बहुएं आ गई थीं। उनमें छोटी भाभी तो बराबरी का देवर समझकर कुछ लज्जा का अनुभव करती थी लेकिन बड़ी भाभी प्रभावती थी, जो बचपन से ही अरुण को पूर्ण स्नेह देती थी और उसकी हर बात की चिंता रखती थी। अरुण भी भाभी को मातृवत् श्रद्धा से ही देखता और इज्जत करता था।

उसने माता–पिता का चरण स्पर्श किया। उसी समय बड़ा स्नेह दिखाते हुए सागर सेठ बोले – अरुण! तुम आजकल ऐसे कैसे रह रहे हो। इस बात को सुनकर अरुण मधुर मुस्कान बिखेरते हुए बोले – पिताश्री! मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हूं। क्या आपको कुछ लग रहा है? यह सुनकर सागर श्रेष्ठी बोले – बेटा! स्वास्थ्य तो तुम्हारा ठीक लग रहा है। पर मैं तुम्हारे रहन–सहन के बारे में पूछ रहा हूं। उस दिन परीक्षण मंडप में तुम्हारे वस्त्रों को देखकर मुझे बड़ी लज्जा की अनुभूति हुई। तेरे तन पर जो वस्त्र हैं वैसे तो बेचारे सेवक लोग भी नहीं पहनते। अरुण बोला – पिताश्री। मैं तो हमेशा से ऐसे ही वस्त्र पहनता आया हूं। मुझे अन्य वस्त्र सुहाते भी नहीं हैं। सेवक हो चाहे अन्य कोई, यह तो अपनी–अपनी रुचि है जिसमें सब स्वतंत्र हैं।

अरुण की बात सुनकर श्रेष्ठी सागर को थोड़ा अटपटा लगा, पर मन की तरंग को दबाते हुए बोले – बेटा, पहले तो तुम्हारी ऐसी रुचि नहीं थी, अब

यह कैसे हो गई? इस पर अरुण कहने लगा – पिताश्री, रुचियां तो परिवर्तनशील हैं, व्यक्ति की समझ के अनुसार बदलती रहती हैं। वस्त्र पहनने का यथार्थ लक्ष्य तन ढकने का और लज्जा एवं सर्दी–गरमी से उसकी रक्षा करने का है, जिसकी पूर्ति के लिए इन कपड़ों में कोई कमी महसूस नहीं होती। इसके विपरीत सामान्यजन का लक्ष्य सुन्दरता, बड़प्पन दिखाने की भावना का जो जुड़ गया है उसे मैं अच्छा नहीं समझता हूं। यह मेरा चिंतन है। आप पूज्य हैं, इससे आगे ज्यादा बोलना छोटे मुंह बड़ी बात हो जायेगी, धृष्टता के लिए क्षमा करें। इतना कहकर अरुण वहां से ऊपर की मंजिल पर अपने कक्ष में चला गया।

उसके बाद श्रेष्ठी सिद्धिदेवी से कहने लगे – देखा, तुम्हारे अरुण को! इस पर कैसा रंग चढ़ रहा है। अभी सावधान होना उचित है। साथ ही ऐसा प्रयत्न करो कि रुचि में परिवर्तन आवे। बड़ी बहू प्रभावती इन सभी बातों को सुन रही थी। वह बड़ी विनम्रता से बोली – पूज्यजन! वास्तव में देवरजी की बदलती हुई रुचि चिंताजनक है, पर ये बड़े चतुर एवं विचक्षण हैं। सीधे ढंग से इनमें मोड़ नहीं आ सकता। इनकी रुचि को तो स्नेह से ही मोड़ा जा सकता है। श्रेष्ठी बोले – बहू! जैसे भी हो, इसकी रुचि को मोड़ना आवश्यक है। तुम स्वयं चतुर हो और वह भी तुम्हारे प्रति सहज स्नेह भाव भी रखता है। इसलिए अब तुम्हीं इसका प्रयत्न करो।

बहू प्रभावती ने श्वसुर की आज्ञा को शिरोधार्य किया और दूसरे ही दिन जब अरुण नहाने लगा तो प्रभावती ने उसके सादे वस्त्रों को छिपा दिया और बहुमूल्य वस्त्र, मणिमाला, कुंडल आदि वहां रख दिये। इधर अरुण नहाकर बाहर आया तो उसे अपने वस्त्र नहीं मिले। खूब ढूंढे लेकिन जब मिले ही नहीं तो वह समझ गया कि यह कल की बात का रहस्य है। आखिर नहीं चाहते हुए सोचा कि पिताजी का मन रह जाय, इसलिए उसने वे वस्त्राभूषण पहन लिये और ज्योंही वह बाहर आया और भाभी की नजर पड़ी, वह बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बोल उठी – वाह, वाह, आज मेरे प्यारे देवरजी को देखते ही मेरा मन झूम उठा। इन वस्त्रों में वास्तव में देवरजी एक राजकुमार से कम नहीं लगते हैं। भाभी के इस कहने के लहजे से अरुण के चेहरे पर मुस्कान आ गई तो भाभी और मनमोहक लहजे में बोल उठी – वाह, वाह, कैसी भव्य मुस्कान! जिस पर तो कोई अप्सरा भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकती। भाभी की इस बात से तो अरुण का चेहरा भी लज्जा से गुलाबी हो गया और यह कहते हुए भाग गया कि भाभी, तुमको तो बस....। उस दिन अरुण को देखकर श्रेष्ठी सागरचंद्र ही क्या, सब आश्चर्य के साथ खुशी का अनुभव करने लगे पर दूसरे ही दिन उसने वे वस्त्र उतारकर किसी नौकर को दे दिये और खुद ने पुनः वही सादे वस्त्र धारण कर लिये। ऐसे दो–तीन बार हो गया तब देखा कि यह युक्ति भी कामयाब नहीं हुई।

आखिर एक दिन जब अरुण आचार्यश्री की सेवा में जाने को उद्यत हुआ तो सागर श्रेष्ठी ने उसे अपने पास बुलाया और कहने लगे– अरुण! अब तुम्हारा अध्ययन समाप्त हो चुका है इसलिए अब तुम दुकान पर बैठा करो। अब इधर–उधर जाने–आने से काम नहीं चलेगा। अब तुम युवा हो। भाई भी तुम्हारे सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। अरुण ने पिताश्री की बात एवं उनके चेहरे पर आये भाव को समझकर एक ही उत्तर दिया– जैसी आज्ञा। वह दुकान पर बैठ गया और एक औपचारिकता के रूप में बेमन से ग्राहकों को संभालने लगा और मन नहीं लगने पर धार्मिक पुस्तक पढ़ने लग जाता। पर मन में कोई उमंग–उत्साह नहीं था। हर समय उदास मन में बैठा रहता क्योंकि बहुत दिन हो गये आचार्यदेव के दर्शन भी नहीं कर पाया था।

एक दिन ऐसे ही दुकान पर उदासचित्त बैठा था तो श्रेष्ठी सागर उसे ऐसे देखकर उसके पास आये और पूर्ण स्नेह से बोले – बेटा! तुम इतने उदास क्यों रहते हो? क्या तुम्हारा इस व्यापार में मन नहीं लगता? यदि ऐसी बात है तो तुम्हारी रुचि के अनुसार दूसरी दुकान लगवा दूं। तब अरुण उसी उदास मुंह से नीचे मुंह करते हुए बोला – पिताश्री! सच बात तो यह है कि मेरा मन किसी व्यापार में नहीं लगता है। सिर्फ आपकी आज्ञा का पालन करने हेतु बैठ जाता हूं। ऐसा कहते–कहते उसका गला भर आया। सागर श्रेष्ठी ने अपने हाथ से उसके मुंह को ऊपर उठाकर झांका और बोले – बेटा! अभी तुम युवक हो, लेकिन युवकोचित खान–पान, रहन–सहन में जो तुम्हारी सहज रुचि होनी चाहिए, उसकी जगह तुम तो एक वैरागी जैसा जीवन जी रहे हो। क्या बात है?

पिताजी के मुंह से यह वैरागी शब्द सुनते ही तो उसका रोम–रोम पुलकित हो उठा और बोला – तात! आपका आशीर्वाद सफल हो। वास्तव में वैराग्य ही सच्चा जीवन–धन है, उसी से सच्चा सुख, सच्ची शांति मिल सकती है। इस बात को सुनते ही तो श्रेष्ठी सागर हतप्रभ हो गये। फिर भी मन की बात को मन में दबाते हुए बोले – बेटा! तुमको किस बात का दुःख है? पूर्वपुण्योदय से सब साधन तुम्हें उपलब्ध हैं, फिर इस प्रकार उदासीन क्यों रहते हो? पिताश्री की सभी बातों को सुनकर अरुण कहने लगा – तात! आपकी कृपा से मुझे अभावजन्य कोई दुःख नहीं हैं। सिर्फ दुःख है तो मेरे कर्मों के विकार का, जिसके कारण इस आत्मा को जन्म–जरा–मरण रूप महादुःखों से व्यथित होना पड़ रहा है और छूटने का एकमात्र साधन मानव जीवन में सत्गुरु–सन्निधि, वीतराग–वाणी की प्राप्ति आदि है, पर आज सब–कुछ उपलब्ध होकर भी मैं कुछ कर नहीं पा रहा हूं। बस एकमात्र इसी बात से मेरा मन उदास रहता है। रही बात साधन के अभाव, सद्भाव की, तो इससे विरक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। तीर्थंकर

महावीर, जंबूकुमार आदि को क्या साधनों का अभाव था, जिससे वे वैरागी बने और आज हम उनके ऐश्वर्य के गुण गाते हैं? इसलिए साधनों के अभाव से ही वैराग आता है – यह एक बहुत बड़ी भ्रांति है। यह कहकर चुप हो गया अरुण। सागर श्रेष्ठी ने भी कुछ उत्तर नहीं देकर मौन धारण कर ली। मन ही मन में चिंतन करने लगे – मेरा अनुमान सत्य निकल रहा है। अरुण आचार्यदेव की उपासना से वैराग्य रंग से पूर्ण अनुरंजित होता जा रहा है। यदि अब ढीला छोड़ दिया तो फिर कोई उपाय नहीं चलेगा और मेरा सब पुत्रों में श्रेष्ठ प्रतिभावान, प्राणों से प्यारा बेटा यदि हाथ से चला गया तो मेरा जीवन हराम हो जायेगा। इसलिए अब इसे पूर्ण नियंत्रण में रखना होगा। श्रेष्ठी धर्मनिष्ठ अग्रणीय श्रावकों की गिनती में आते थे। दीक्षा जैसे पुनीत कार्य में खूब उदारता से सहयोग व दलाली करने वाले थे, पर पुत्र–ममत्व के कारण उनकी मनोभावना में आवेग आ रहा था। इसी कारण वे कई दिनों से आचार्यश्री के दर्शन हेतु जाने में भी हिचकिचाते थे। और इधर अरुण पर भी पूरा नियंत्रण लगा रखा था।



(१९)

अरुण इस कारण दिन में तो कहीं जा–आ नहीं सकता था, पर सायंकाल भोजन से निवृत्त होकर देवसिय प्रतिक्रमण में तो वह किसी तरह चला ही जाता और कुछ समय आचार्यदेव की उपासना में बिता देता और अर्ज करता प्रभो! मुझ पर अनुग्रह करके शीघ्र श्रीचरणों में लेने की कृपा कीजिए, पिताश्री अब मेरे ऊपर पूर्ण नियंत्रण लगा रहे हैं। कुछ मार्ग बताने की कृपा करें। इस प्रकार अरुण के अत्याग्रह करने पर आचार्यदेव बोले – अरुण! मैं क्या कहूं? तू स्वयं सुज्ञ है, तू खुद अपने भीतर झांक कि यह अंतराय क्यों बढ़ रही है? अरुण आचार्यदेव के इंगित पर चिंतन करता हुआ घर आ गया। पूरी रात्रि व दिन–भर इसी उलझन में उलझता रहा। पुनः संध्या के भोजन से निवृत्त होकर स्थानक जाने की तैयारी में ही था कि श्रेष्ठी सागरचंद्र ने कड़कते स्वर में कहा – अरुण! कहां जा रहे हो? पहले इस काम को निपटालो। ऐसे दुकान छोड़कर इधर–उधर जाने से काम नहीं चलेगा। अरुण ने समझ लिया कि अब प्रतिक्रमण में भी बाधा पैदा हो जायेगी। पहले तो सोचा – उपेक्षा करके चला जाऊं पर ऐसा उचित नहीं होगा – कहीं कलह का वातावरण बन जायेगा। इसलिए वह दुकान में बैठ गया। अब तो प्रतिदिन यही क्रम चलता रहा। श्रेष्ठी सागरचंद्र मन में चिंतन करने लगे – अब इसे यहां रखने के बजाय बाहर भेजना ही उचित है। क्योंकि यहां रहने पर यदि स्थानक नहीं जाने दूंगा तो लोगों में मेरी निंदा भी होगी और

कहेंगे कि ये देखो धर्म के धोरी! दूसरों को तो प्रेरणा देते थे और खुद के बच्चे पर कैसा नियंत्रण कर रखा है। इससे भी बच जाऊंगा और बाहरी रंगत से अरुण के भावों में भी परिवर्तन आ जायेगा। ऐसा सोचकर उन्होंने योजना बनाई और उधारी पटाने और नये व्यापार के आर्डर बुक करने हेतु उसे बाहर भेज दिया। अरुण बेमन से, लाचार हो पिताश्री की आज्ञा का पालन करने हेतु घर से चला गया, पर वहां पर भी जो कार्य बताये, वह करता जरूर था, पर मन में शांति का अनुभव नहीं हो रहा था। बड़ा बेचैन रहता, कार्य से निवृत्त होकर जब भी कुछ विश्राम हेतु तत्पर होता तो उसको या तो गुरुदेव की याद आती या कभी गंगेश और शिवसुंदर की वह मनमोहक मुद्रा स्मृति पटल पर उभर आती। इसी उलझन में वह निद्राधीन हो जाता। फिर प्रातः होते ही कार्य में व्यस्त हो जाता। समय पर धर्मक्रिया तो दूर, भोजन भी समय पर नहीं खा सकता था। रात्रि–भोजन का त्याग होने से कई बार तो भूखा ही सो जाना पड़ता। फिर भी, जो कार्य सौंपा, उसे पूर्ण कर ही दिया और पुनः घर लौट आया।

माता सिद्धिदेवी, भाभी प्रभावती अरुण के उतरे चेहरे और शरीर पर छाई कमजोरी को देखकर घबराई और बोली – बेटा! यह क्या हो गया? क्या बीमार हो गया क्या? बराबर खाने–पीने की व्यवस्था नहीं बैठी? लेकिन श्रेष्ठी सागरचंद्र ने बीच में ही बात बदलते हुए कहा – यह तो स्वाभाविक है, बाहर की यात्रा और व्यापार के कारण से थोड़ी थकान आना। विश्रांति से सब ठीक हो जायेगा। आज मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न है कि अरुण को जो कार्य सौंपा, वह बड़ी खूबी से निवृत्त करके आया है। अपने सौम्य–मधुर व्यवहार से व्यापार के क्षेत्र में अच्छी पैठ जमाकर आया है। इस प्रकार पिताश्री के मुंह से प्रशंसा सुनकर भी अरुण के चेहरे पर कोई खुशी का संचार नहीं हुआ। वह तो उसी उदास चेहरे से घर के भीतर गया और कपड़े बदलकर भोजन हेतु बैठा। लेकिन चेहरे पर कुछ भी प्रसन्नता परिलक्षित नहीं हुई। माता सिद्धिदेवी से इसका कारण छिप नहीं सका। वह समझ गई कि इस उदासी का मूल कारण पतिदेव का अरुण की धार्मिक चर्या में अवरोध पैदा करना था।

इसका चिंतन करते हुए बोली – बेटा! क्या गुरुदेव के दर्शन करके आ गया? अरुण बोला – मातुश्री! कहां मेरा इतना सौभाग्य। माता सिद्धिदेवी अरुण के इन शब्दों को सुनकर आश्चर्यपूर्वक बोली – अरुण । ऐसी बात कैसे बोल रहा है? तेरे से बढ़कर और कौन सौभाग्यशाली है – जिसको आचार्यदेव की इतनी कृपा प्राप्त है। मां के इन वचनों ने उसको और व्यथित कर दिया और उसकी दृष्टि नीचे झुक गई। मां ने देखा – अरुण की आंखों से आंसू गिर रहे हैं। उसने उसके मुंह को सहलाते हुए पूछा – क्या बात है? तू इतना क्यों

व्यथित हो रहा है? साफ–साफ बता मुझे। तब अरुण बोला – मां! आज कितने ही दिन हो गये दर्शन को तो। सिद्धिदेवी समझ गई कि पतिदेव ने मोहराग में फंसकर प्रतिबंध लगा दिया है, जो उचित नहीं है। पर समस्या थी, उन्हें कहे कौन?



(२०)

इधर अरुण भोजन से निवृत्त होकर विश्राम करने हेतु अपने कक्ष में गया। विश्राम करते हुए भी उसके मन में उथल–पुथल मच रही थी। वह सोच रहा था इस अंतराय में दोषी कौन? गुरुदेव ने तो फरमाया था – अरुण! तू अपने भीतर झांक, तो अपने–आप समाधान हो जायेगा। अरुण गुरुदेव के इन्हीं वचनों पर चिंतन की गहराई में उतर गया तो सहज उसमें एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। वह सोचने लगा – वास्तव में मेरी ही कमजोरी हैं। पिताश्री का इसमें कोई दोष नहीं है। वे संसारी हैं और पुत्र–मोह से ग्रसित होकर सब–कुछ कर सकते हैं। पर मुझे यदि अपना मार्ग प्रशस्त करना है तो स्वयं के संबल को जाग्रत करना होगा। दबने वाले को सब दबाते ही रहेंगे इसलिए अब मुझे ही दृढ़ होना होगा।

ऐसा सोचकर वह उठा, नीचे आया और घर की सीढ़ियां उतरने लगा। अचानक सागर श्रेष्ठी की दृष्टि अरुण पर पड़ी और आवाज लगाई – अरुण! कहां जा रहे हो? अरुण बोला – गुरुदेव के चरणों में सामायिक करने। अरुण का यह आज पहली बार स्पष्ट उत्तर सुनकर श्रेष्ठी सागरचंद्र तिलमिला गये। सोचा, आज तो सारे किये–कराये पर पानी फिर जायेगा यदि थोड़ी–सी भी ढील रखी तो। वे थोड़े आवेश में बोले – अरुण! क्या यह धर्म करने की उम्र है या धनोपार्जन की? अब तुम युवक हो, घर में काम पड़ा रहे और तुम धर्म करने चले! जरा सोचो। अब कोई बच्चे नहीं हो, अपने कर्तव्य का विचार करो। इस उम्र वाले से माता–पिता और परिवार के सदस्य किस प्रकार के सहयोग की आशा रखते हैं?

पिताश्री की इन बातों को सुनकर अरुण पहले तो कुछ सहमा फिर अपने मनोबल को संजोकर सोचा कि अब उचित समय आ गया है। यदि आज दब गया तो फिर आगे कभी साहस नहीं कर सकूंगा। यह चिंतन कर कहने लगा – पिताश्री! आप मेरे पर इतने अप्रसन्न क्यों हैं? क्या मैं कोई ऐसा बुरा कार्य करने जा रहा हूं या कुछ कर दिया है – जिससे आप मेरे पर इतना कड़ा प्रतिबंध लगाने को उद्यत हैं? अरुण की इस स्पष्ट अभिव्यक्ति से श्रेष्ठी

सागरचंद्र मन ही मन विचार करने लगे कि अब यह सयाना हो गया है इसलिए अपना पैंतरा बदलते हुए बड़ी मधुरता धारण करके अरुण के कंधों पर हाथ रखकर बोले – अरुण! मैं कब कह रहा हूं कि तुम बुरा कार्य कर रहे हो। पर हर कार्य का समय होता है। अब तुम युवा हो गये हो गये हो। सोचो, एक पिता के प्रति क्या उत्तरदायित्व होता है? जरा सोचो। क्या पिता यह नहीं चाहता है कि अपने पुत्रों को पढ़ा–लिखाकर तैयार होने के साथ ही कुशल व्यापारी बना दे और उनका विवाह करके उनको अपना उत्तरदायित्व सौंपकर निवृत्त हो जाये? बस, इसी कर्तव्यपालन हेतु मेरा दिल बेचैन हो जाता है। मैं चाहता हूं कि तीनों का तो कर्तव्य पूरा हो गया, अब तू ही तो शेष बचा है। मेरा प्राणों का प्यारा, नयनदुलारा, साथ ही तेरी प्रतिभा से भी मैं कितना प्रभावित हूं, इसलिए चाहता हूं कि तेरा भी यथाशीघ्र विवाह संपन्न कर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊं। बस, यही मेरी अन्तर–तमन्ना है।

अचानक पिताश्री के इस बदले हुए रुख और अपने प्रति स्नेह की धारा प्रवाहित करते देखकर अरुण भी सोचने लगा, इस समय कठोरता की जगह मिठास से उत्तर देना ठीक है क्योंकि अभी मेरी मानसिक स्थिति भी स्थिर नहीं है। इसलिए उचित यही है कि किसी तरह से मेरे धर्मकार्य में आई हुई बाधा टल जाय। यह सोचकर अरुण भी बड़े विनीत भाव से कहने लगा – पिताश्री! आपकी मुझ पर इतनी कृपादृष्टि है फिर मुझे किस बात की चिन्ता। रही विवाह आदि की बात, इसकी अभी कोई आवश्यकता नहीं है। समय पर जो योग होगा, वह काम आयेगा। अभी तो मेरी अन्तर–तमन्ना यही है कि महापुण्योदय से आचार्यदेव की पावन सन्निधि का योग बना है, उसका जितना लाभ उठा सकूं उतना उठा लूं। कलायतन की लौकिक विद्या के साथ ही अध्यात्म विद्या का भी बोध प्राप्त कर लूं, जो गृहत्यागी और भोगी, दोनों के लिए हितावह है। इतना कहकर बोला – पिताश्री! बस, अब बहुत हो गया। मैं आज से जाने की आज्ञा चाहता हूं। यह कहते हुए सीधा बिना उत्तर की परीक्षा के ही चल पड़ा स्थानक की ओर। सागरचंद्र देखते ही रह गये। इधर सिद्धिदेवी ने भी पिता–पुत्र दोनों की पूरी बात सुनी और बाद में बोली – पतिदेव! मुझे आश्चर्य होता है आप जैसे धर्मसंघ प्रमुख और इस प्रकार अरुण की धर्मक्रिया में अवरोध! जरा विचार करें, क्या यह आपकी गरिमा के अनुरूप है?

पत्नी सिद्धिदेवी की बात सुनकर श्रेष्ठी सागर बोले – आखिर क्या तुम चाहती हो कि ऐसा प्रतिभावान पुत्र साधु बन जाये? सिद्धिदेवी बाली – पतिदेव! आप आज कैसी बातें कर रहे हैं? क्या यह भी कोई चाह–अनचाह का विषय है? यह आप भी जानते हैं कि जिस कुल का महान पुण्योदय होता है उसके यहां

से त्यागी–वैरागी चारित्र आत्मा निकलती है। इसीलिए तो हम त्यागी महापुरुषों के साथ उनके कुल व माता–पिता की महिमा गाते हैं। मेरे मन में तो ये भाव सदा जाग्रत होते रहते हैं कि काश! हमारे कुल से भी कोई पुण्यात्मा निकले, लेकिन अपनी भावना ही क्या काम आती है। दूसरी बात – मैंने आप दोनों की पूरी बात सुनी तो मालूम पड़ा कि अरुण ने अपनी तरफ से साधु बनने का विषय ही व्यक्त नहीं किया। वह तो सिर्फ आचार्यदेव के सान्निध्य का लाभ उठाने का ही तो आग्रह कर रहा है तो फिर उस पर इतना कड़ा प्रतिबंध लगाने की क्या आवश्यकता? शायद इस प्रतिबंध से हम आगे होकर के साधु बनने की परोक्ष प्रेरणा तो नहीं दे रहे हैं? ज्यादा तानने से बात सुधरने की जगह बिगड़ती ही हैं। रही दुकान–धंधे की बात, तो अभी उस पर भार ही क्या है? इतने मुनीम, गुमाश्ते और तीनों भाई और आप संभाल ही रहे हैं। इसलिए मुझे तो यही उचित लग रहा है कि आचार्यदेव की उपासना में किसी प्रकार का विघ्न पैदा नहीं किया जाय। न मालूम हमारे ऊपर कब कैसी कृपा बरस जाय! पत्नी की बात सुनकर श्रेष्ठी सागरचंद्र भी चुप हो गये और आगे से कभी उन्होंने अरुण की धर्म–आराधना में बाधा पैदा नहीं की।



(२१)

इधर अरुण घर से चलकर सीधा स्थानक पहुंचा। आचार्यदेव के चरणों में वंदन करके सुख–साता की पृच्छा की। आचार्यदेव ने कहा – अरुण आज कितने दिन से दिखे? क्या कोई विशेष कार्य में उलझ गये थे? अरुण – हां, गुरुदेव! कर्मोदय के जंजाल में फंस गया। क्योंकि अब मैं युवा जो हो गया हूं। इसलिए मेरे पर पिताश्री ने कार्यभार डालकर बाहर भेज दिया। साथ ही मैं कार्य में उलझा रहूं इसलिए प्रतिबंध भी लगा दिया था। बस गुरुदेव! आज भी मैं दृढ़ निश्चय के साथ उस अवरोध को हटाकर ही आया हूं। बस, अब आप की कृपादृष्टि चाहिये जिससे मेरा मार्ग प्रशस्त हो सके। आचार्यदेव तब भी मौन ही रहे और अरुण सामायिक लेकर प्रतिक्रमण करने लग गया। आज उसका चित्त प्रसन्न था। वह घर गया तो मां को भी प्रसन्नता हुई। बोली – बेटा! धर्म का कार्य भी करते रहो और थोड़ा दुकान के कार्य में भी भाग लेते रहो। जिससे आचार्यदेव की पावन सन्निधि में कुछ विघ्न पैदा न हो। अरुण मां के भावों को समझ गया और कुछ समय दुकान पर बैठकर जब भी मन होता, आचार्यदेव के चरणों में पहुंच जाता।

इधर शिवसुंदर कलायतन से आने के बाद अपने कर्तव्य का निर्धारण करके पिताश्री के गृह एवं व्यापार कार्य में सहयोगी बनने लगा क्योंकि वह सब

भ्राताओं में बड़ा था, साथ ही सर्वकलाओं मे निपुण भी। धीरे–धीरे उसके व्यवहार से व्यापारिक क्षेत्र में भी अच्छी उन्नति होने लगी। मुनीम, गुमाश्ते व व्यापारियों के साथ पिताश्री भी बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। लेकिन गंगेश अभी गृहकार्य में नहीं उलझा था, फिर भी वह उससे भी ज्यादा व्यवहारकुशल था। शिवसुंदर को उसकी याद आती रहती थी।

एक दिन शिवसुंदर दुकान से घर गया और भोजन से निवृत्त होकर अपने कक्ष में आराम करने लगा। लेकिन निद्रा नहीं आ रही थी। उसके शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग से यौवन अठखेलियां कर रहा था। साथ ही अपने बीते बचपन की स्मृतियां भी एक–एक करके उभरने लगी। कलायतन का चिंतामुक्त जीवन, प्रधानाचार्य एवं अन्य प्राचार्यों के वात्सल्य के साथ ही गंगेश की वह चुलबुली वृत्ति और वहां का स्वच्छ–निर्मल वातावरण, एक–एक कर दृश्य उभर–उभर कर सामने आने लगे। उसी दृश्य की रील में वे परीक्षण के क्षण और स्वागत करता हुआ, मुक्तामाला अर्पित करते हुए नगरश्रेष्ठी के पुत्र अरुण का भव्य चेहरा ज्योंही सामने उभरा, उस शारीरिक सौन्दर्य, वचन–सौष्ठव, व्यावहारिक विवेक, विनम्रता आदि एक–एक गुण की झलक के साथ ही उसकी सादगीप्रियता पर शिवसुंदर का विचार टिक गया। इतना संपन्न नगरश्रेष्ठी का सुपुत्र, फिर भी इतनी सादगीप्रियता का क्या कारण है? क्या वह उस परीक्षण सभा में अपने वैभव का पिता की तरह प्रदर्शन नहीं कर सकता था? पर उसने कितनी सादी पोशाक पहन रखी थी। कोई अलंकार उसके तन पर नहीं था, फिर भी उसके चेहरे पर कितना तेज, कितना आकर्षण, दीर्घलोचनों से झलकती दिव्य दृष्टि, घुंघराले केश, दिव्य भाल। बोला, उस समय तो मानों उसके मुंह से मोती ही बरस रहे थे। उसके गोरे–गोरे हाथों में वह मुक्तामाला कितनी चमक रही थी! जिस समय वह समीप आया उस समय मेरा ह्रदय तो उसकी ओर इतना आकृष्ट हो गया कि मैं उसे अंतस प्रेम से उठा कर अपने वक्ष से चिपका लूं। इसी चिंतन की धारा में वह इतना बह गया कि मानो अतीत की वह घटना वर्तमान बन गई हो।

इसी बीच गंगेश भी आज मानों शिवसुंदर की याद में बेतार के तार से जुड़कर उसके कक्ष में पहुंच गया, बहुत दिनों की उत्सुकतावश और खड़ा हो गया उसके पीछे जाकर और सुनने लगा कान लगाकर शिवसुंदर के बुदबुदाते शब्दों और चेहरे के बदलते भावों को। शिवसुंदर अरुण को मानों अपने वक्ष से लगाने हेतु उद्यत हुआ और उसी भावावेश में पास खड़े गंगेश को अपने वाहुपाश में जोर से जकड़कर और प्रेमभरा ले लिया चुंबन। उसकी विचार तंद्रा तो तव टूटी, जब गंगेश ने खिलखिलाते हुए कहा – शिवसुंदर यार, यह कोई तेरी

प्रेयसी नहीं, जिसको बाहुपाश में जकड़कर प्रेमभरा चुंबन ले रहा है। यह तो मैं गंगेश हूं। यह सुनते ही क्षणभर तो वह बेसुध हो गया, फिर बोला – दोस्त, यह भी खूब रही, तू कब आ गया? तब गंगेश बोला – मित्र, कितने जोर से जकड़ लिया मेरे तन को तूने! यह तो मैं था। यदि इसकी जगह जिस प्रेयसी की यादों में इतने बेसुध हो रहे हो, यदि साक्षात् वही होती तो उस पर क्या बीतती? दुकान की पेढ़ी पर इन्हीं अरमानों को संजोये बैठते लगते हो महाशयजी।

शिवसुंदर ने हंसते हुए कहा – यार गंगेश! क्यों मेरे पर इतने ढेर–सारे आरोप लगाते हो। तुम तो प्रेयसी की बात करते हो, लेकिन अभी तक मैंने किसी लड़की को भी स्थिर दृष्टि से देखने का प्रयत्न नहीं किया, तो प्रिया के ध्यान में एकाग्र कैसे बना? तब गंगेश बोला – रहने दे दोस्त, अब मेरे से तू क्या छिपाता है। मैंने तेरे सारे हावों–भावों को सूक्ष्मता से देख लिया है। उससे यह स्पष्ट है कि तू किसी प्रेयसी के ध्यान में इतना एकाग्र हो गया कि जैसे सचमुच उसके निकट पहुंच गया और उसको अपने बाहुपाश में जकड़कर उसका चुम्बन भी ले लिया। और अब मेरे सामने बिल्कुल निर्लेप साधक बनना चाहता है? क्या मित्र से मित्र की बात छिपी रह सकती है?

शिवसुंदर मुस्कराते हुए बोला – गंगेश! इसमें तेरे से छिपाने जैसी क्या बात है? तेरा कहना किसी अपेक्षा से सत्य भी है लेकिन उसमें कुछ भ्रांति बनी हुई है। वह यह कि मैं किसी प्रिया के नहीं, मैं उसी प्रिय के ध्यान में तन्मय हो गया जो तेरा और मेरा कुछ ही क्षणों का परिचित है – वह नगरश्रेष्ठि–पुत्र अरुण। अरुण का नाम आते ही गंगेश भी उसकी यादों में खोता हुआ कहने लगा – है तो वास्तव में उसका ऐसा ही आकर्षक व्यक्तित्व। पर होता है – इतने सम्पन्न परिवार का युवक ऐसे सादे वस्त्रों में और वह भी इतने बड़े फंक्शन में बिना लज्जा की अनुभूति के कैसे पहुंच गया? हम तो घर में भी ऐसे वस्त्रों में रहना अपना अपमान समझते हैं।

शिवसुंदर बोला – भैयाजी! यही तो दृष्टिभेद है। बाह्य दृष्टि वाला हर वस्तु का निरीक्षण, परीक्षण, मूल्यांकन बाह्य साधनों से ही करता है, जबकि आभ्यन्तर दृष्टि वाला उसके यथार्थ गुण व स्वरूप से। यार गंगेश! यह तो तू भी जानता है कि सादगी तो जीवन की सफलता की वास्तविक कुंजी है। मुझे लगता है – वह कोई उच्च आदर्शवादी युवक है। तब ही तो इतने सादे वस्त्रों में रहता हुआ भी कितना प्रसन्न दिख रहा था। तूने देखा नहीं, उसका सौंदर्य और अंगड़ाई लेता यौवन कैसा निखर रहा था। मानों नरदेह में कोई देव सभा में आया हो। मैं तो उसके सौंदर्य पर इतना मुग्ध हो गया कि अभी तक मन से भुलाया नहीं जाता।

शिवसुंदर की इस बात पर गंगेश को हँसी आ गई और उसकी चुटकी लेते हुए बोला – यार, आश्चर्य है कि पुरुष पुरुष के सौंदर्य पर न्योछावर हो रहा है। क्या तुझे कुछ लज्जा नहीं आती। कहूं क्या तेरे पिताजी को? गंगेश की बात को मोड़ देते हुए शिवसुंदर बोला – भैया! अपन तो कवि हैं और कवि तो होता ही है सौंदर्य का उपासक। फिर वह सौंदर्य नर, नारी या प्रकृति के किसी अंश में हो। तब गंगेश बोला – मित्र! अब तो एक शिवसुंदर के पहले 'सत्यम्' का जुड़ना शेष रह गया है। इस प्रकार चर्चा करते–करते दोनों बाल की खाल उतारने में तत्पर हो गये। पर गंगेश ने तुरंत बात को दूसरा मोड़ दे दिया और बोला – शिवसुंदर! मेरा मन भी उसी दिन से बार–बार यह बोलता है – काश! वह भी हमारी मित्रता से जुड़ जाय।

शिवसुंदर बोला–बस यार, तूने मेरे मुंह की बात छीन ली। गंगेश बोला – पर भैया। विचार यही आता है कि वह सम्पन्न पिता का पुत्र कहां से होगा हमारा मित्र! गंगेश की बात सुनकर शिवसुंदर बोला – गंगेश! ऐसी बात नहीं है। यदि तुमको याद हो तो सुनो उसकी वह अंतिम बात। उसने कहा था – धर्मकला सब कलाओं को जीत लेती है। उसी बात का चिंतन करते हुए मुझे पता लगा कि भले उसने स्थानीय कलायतन में ही अध्ययन किया, पर वह हम से कम विज्ञ नहीं है। वह तत्काल गीत बना लेता है। कंठ में भी माधुर्य है। साथ ही उसकी कैसी जादूभरी मुस्कान है जो बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। तब गंगेश बोला – अच्छा, अच्छा। अब मालूम पड़ा, आप उसकी इसी मुस्कान पर न्योछावर हैं, जैसे कोई अपनी प्रिया की मुस्कान पर। फिर हमारी याद तो आये ही कैसे?

शिवसुंदर तत्क्षण बोला – मित्र? यह तू कैसी बात करता है। तू और तेरे साथ बीते दिनों की याद मुझे कितनी सताती है उसका मैं किस मुंह से जिक्र करूं? जब–जब भी तेरी याद आती है, मेरा तन–मन रोमांचित हुए बिना नहीं रहता। हां, तुझे तो अपनी चुलबुली आदत और गटरमस्ती में मेरी शायद ही याद आती होगी, नहीं तो इतने दिन बाद क्यों आता?

गंगेश कहने लगा – दोस्त! अब रहने दो इन बातों को। यह सव दोस्ती की बातें तब तक ही लुभावनी लगती हैं जब तक किसी मृगलोचनी के बंधन में नहीं पड़े हो। शिवसुंदर, उसके बाद उत्तरदायित्व और अपने परिवार में ही व्यक्ति इतना सिमट जाता है कि दोस्त तो दूर, भाई भाई को, यहां तक कि माता–पिता को भी भूल जाता है।

शिवसुंदर कहने लगा – यार गंगेश! तू तो कहां से कहां बातों में बह गया। बात तो अरुण के साथ मित्रता की चल रही थी और बीच में संसार के

चक्र में उसको उलझा दिया। दोस्त, अरुण वास्तव में हमारी मित्रता से मेल खाता युवक है। इसलिए हमें उसकी मित्रता बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। रही बात उसकी सम्पन्नता की, तो शायद उसके व्यवहार से स्पष्ट झलक रहा था कि उसको जरा भी अपनी सम्पन्नता का अहं नहीं है। वह सरलहृदय है। तब गंगेश बोला – मन तो मेरा भी यही कहता है, पर वह मिलेगा कहां? शिवसुंदर बोला – मित्र! मेरा अन्दाज है कि वह स्थानक में मिल जायेगा क्योंकि हमारे आदर्श विद्याश्रम में भर्ती होने के बाद हमारे जैनाचार्य श्री मुनिचंद्रजी महाराज का यहां पधारना हुआ और तब से वृद्धावस्था के कारण वे यहीं स्थिरवास विराजे हुए हैं। उनके विराजने से क्या तुमने सुना नहीं वह प्रचंड कापालिक का नाम। अरे उसका नाम क्या सुनना शिवसुंदर, उसके नाम से तो हमारी बचपन में घिग्घी बंध जाती थी। परिवार वाले डराते रहते थे कि यदि बदमाशी की तो प्रचंड को पकड़ा दूंगा। इतना भंयकर है वह। भैया! वह अब भयंकर नहीं रहा। हमारे छोटे गुरु महाराज धर्मप्रियजी के संसर्ग को पाकर उसने सारी क्रूर प्रवृत्तियां त्याग दी! इतना ही नहीं, वे तो मुनि बन गये हैं और अब कठोर साधना कर रहे हैं।

गंगेश – अरे, क्या ऐसे तेजस्वी शक्तिसंपन्न हैं तुम्हारे गुरु महाराज! तो फिर तू क्यों नहीं जाता उनकी सेवा में? न कभी मुझे भी बताया।

शिवसुंदर – भैया! क्या बताऊं – आने के बाद एक–दो बार तो जरूर गया था। पर मुझे धर्म का कुछ बोध न होने से संकोचवश नहीं जाता, पर अरुण बड़ा तत्त्वरुचि वाला है। वह ज्यादा से ज्यादा उनकी सेवा में तत्त्वज्ञान सीखता है। यहां तक कि लोग उसे ज्ञानीजी के नाम से ही संबोधित करते हैं। उन्हीं की सत्संग से उसके जीवन में ये सादगी आदि सद्गुण गहरे संस्कारित हो रहे हैं।

गंगेश – तो फिर ऐसी महान आत्मा के दर्शन करके आशीर्वाद तो हमें भी जरूर लेना चाहिए। मेरा मन तो अभी चलने को उद्यत हो रहा है।

शिवसुंदर – गंगेश! तू और तेरा परिवार शैव धर्म का अनुयायी है। तुझे वहां चलने में संकोच और एतराज तो नहीं है?

गंगेश – यार शिवसुंदर, इतने समय से साथ रहते हुए भी तू मुझे अभी तक समझ नहीं पाया। अपन शिक्षित हैं फिर भी क्या इतनी संकुचित भावना रखेंगे कि गुण में संप्रदाय–पंथ की घेराबंदी में फंसकर उसी में लड़ते रहें, झगड़ते रहें! मैं ऐसी संकुचित विचारधारा को मानवता के लिए अभिशाप समझता हूं। इसलिए अब देर मतकर, जल्दी से चल। बस, इतना जरूर ध्यान रखना कि मैं वहां के नियमों से अनभिज्ञ हूं। यदि वहां जाते हुए कुछ भेंट वगैरह ले जानी हो तो जो तेरी इच्छा हो, अपन बाजार से लेते चलेंगे।

शिवसुंदर– मित्र! आज मुझे तेरे जीवन की स्वच्छता का भान हुआ है। तेरे ऐसे उदार विचारों से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। रही बात भेंट–पूजा की, तो हमारे जैन मुनि न कोई रुपये–पैसे आदि की भेंट लेते हैं और न ऐसे प्रपंच में ही वे पड़ते हैं। यहाँ तक कि वे तो उनके लिए बनाया हुआ, सामने लाया हुआ, खरीदा हुआ भोजन, वस्त्र, पात्र भी ग्रहण नहीं करते हैं। सिर्फ जीवनयापन के लिए शुद्ध शाकाहारी परिवारों से निर्दोष भिक्षा लाकर जीवनयापन करते हैं और लोगों को सच्चे धर्म का मर्म समझाकर उनकी खोट, बुरी आदतें छुड़वाने का प्रयत्न करते हैं। वे जिंदगी–भर नंगे पैर गांव, नगर, पुर, पाटन में विचरण करते हैं। उनके एक–एक भक्त उनके नाम से लाखों रुपये खर्च करने को तत्पर रहते हैं। पर वे इन सब बातों से दूर ही रहते हैं। सिर्फ तुम तो मैं जैसे वंदन करूं, वैसे वंदन कर लेना और यह रूमाल अपने पास रख। जब बातचीत का काम पड़े तो इसको मुंह के आगे रखकर बात करना ताकि अपने मुंह का थूक उन पर न उछल जाय। बस, अब जल्दी से चलो, देर करने में सार नहीं है।



(२२)

शिवसुंदर और गंगेश, दोनों, बड़ी उत्सुकता से साथ–साथ घर से निकलकर बाजार में आये और राजमार्ग पर चलते–चलते शिवसुंदर बोला – यही नगरश्रेष्ठी सागरचंद्रजी की हवेली है। गंगेश के पैर वहीं ठिठक गये। पर शिवसुंदर बोला– मुझे विश्वास है, वह यहाँ नहीं होगा, होता तो दुकान पर दिख जाता। मन कहता है, वह हमको धर्म–स्थानक में ही मिलेगा। ऐसा चिंतन करके आगे बढ़ गये और स्थानक में प्रवेश करते ही अरुण पर उनकी दृष्टि पड़ गई।

वास्तव में आज अरुण भी पिताश्री की इच्छा के विरुद्ध स्थानक में कुछ समय पहले ही पहुंचा था। अरुण का मन पिताश्री के इस नियंत्रण से बेचैन था, पर ज्योंही आचार्यदेव को वंदन किया, आचार्यदेव ने प्रसन्न मुद्रा में फरमाया– अरुण! दया पालो। इतने दिन दिखाई नहीं दिये, क्या कहीं बाहर गये थे?

अरुण– हाँ, गुरुदेव! बाहर भी गया था और बंधन में भी बंधा था।

गुरुदेव– किसके प्रतिबंध में?

अरुण– पिताश्री के।

गुरुदेव– अच्छा यह बात है। शायद श्रेष्ठी सागर को भय लग गया होगा कि कहीं मेरा प्यारा राजा बेटा साधु न बन जाय या तुमने कुछ बात छेड़ी?

अरुण– नहीं गुरुदेव! मैंने तो अभी स्पष्ट रूप में कुछ नहीं कहा। पर उनका मन तो शंकित जरूर हो गया। इसलिए उन्होंने बहाना बनाकर प्रतिबंध

भी लगा दिया और बाहर भी भेज दिया। आज भी मैं बड़ी मुश्किल से उनके प्रतिबंध के घेरे को तोड़कर ही आया हूँ। अब आप ही कुछ मार्ग बतावें। आचार्यदेव बोले– भैया! इसमें मैं क्या बताऊँ। तुमको अपने–आप में ही झांकना होगा। इसके बाद अरुण अन्य संतों के दर्शन करने लगा। इतने में उसकी दृष्टि गंगेश और शिवसुंदर पर पड़ी। उनको देखते अरुण की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह जल्दी से उनके सामने गया और स्वागत के लहजे में बोला– आइये, आपका स्वागत है– मानों कोई ट्यून ही निकली हो। गंगेश और शिवसुंदर ने ज्योंही अरुण को देखा, वे परस्पर गले मिले। आज तीनों को इतनी प्रसन्नता हो रही थी कि मानो कोई अमूल्य निधान प्राप्त हो गया हो।

अरुण जल्दी से उनको आचार्यदेव की सेवा में लाया और बोला– भगवन्! ये हमारे नगर के गौरवशाली युवारत्न हैं। इनमें यह शिवसुंदरजी तो सार्थवाह गुणसुंदरजी के सुपुत्र हैं और आप गंगेशजी– महेश्वरदत्तजी शैव के सुपुत्र हैं। ये दोनों आपके पदार्पण से पूर्व ही आदर्श विद्याश्रम में अध्ययन हेतु चले गये थे। अभी कुछ दिन पहले ही ये अध्ययन से निवृत्त होकर आये हैं और कुछ दिन पहले ही मध्येश्वर शिव मंदिर में इनकी कलाओं के परीक्षण का कार्यक्रम रखा था। वहाँ इन्होंने अपनी अच्छी योग्यता का परिचय दिया, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और आदर्श विद्याश्रम व वहाँ के कलाचार्यों का भी गौरव बढ़ा।

इतने में गंगेश बोला– गुरुदेव! हमारे परीक्षण के साथ अरुण का परीक्षण भी हो गया। हमारे कलाचार्यजी ने तो इनकी कलाओं का हमारे से भी ज्यादा मूल्यांकन किया।

आचार्यश्री– अच्छा अरुण! जब तो ये तुम्हारे मित्र हैं?

अरुण– गुरुदेव! आपकी कृपा और इनकी इच्छा होगी और इनको मैं पसंद आया हूं तो ये मुझे अपना मित्र बनायेंगे।

इस प्रकार अरुण की सहज वार्ता से दोनों का मन बड़ा आह्लादित हुआ। साथ ही यह भी समझ गये कि अरुण आचार्यश्री का अतिकृपापात्र है। वे दोनों हर्ष–भाव से बोले– आप जैसे सुमित्र की मित्रता कौन नहीं चाहेगा? शिवसुंदर तो बोल उठा– आपने जिस दिन परीक्षण सभा में हमें मुक्ताहार पहनाया, उसी दिन से मैंने तो आपको अपना मित्र मान लिया था, लेकिन संकोच बस इतनी–सी बात का था कि कहाँ आप और कहाँ हम?

उसी समय अरुण बोला– मित्रो! मित्रता में यह कैसी सत्ता–संपत्ति–पद–प्रतिष्ठा की दीवाल! मित्रता तो दूध–मिश्री की तरह एक–दूसरे की मूल्यवत्ता को बढ़ाने वाली ही होती है। मैं तो अपने–आप को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मेरे बालमित्र तो मेरे से दूर हट गये पर आप जैसे नगर के

गौरवशाली प्रतिभा–संपन्न सखा मिले हैं। हमारी यह मित्रता आदर्श बनेगी। अब आप गुरुदेव से धर्मचर्चा कीजिए, मैं इतने में सामायिक की साधना कर लूं जो बहुत दिनों से छूट गई है। इतना कहकर अरुण सामायिक साधना में लग गया।

गंगेश और शिवसुंदर आचार्यदेव की उपासना में बैठे। आचार्यदेव ने फरमाया– शिवसुंदरजी! आप तो एक बार आकर गये थे, फिर इतनी ढील कैसे रह गई?

शिवसुंदर– गुरुदेव! मैं आया तो था, पर संकोचवश केवल मंगलपाठ श्रवण करके ही चला गया था क्योंकि मुझे धर्मतत्त्व का कुछ बोध नहीं होने से मैं संकुचित हो गया।

आचार्यश्री– वत्स! इसमें संकोच की क्या बात है? कोई जन्म से ही ज्ञानी थोड़े बनता है। ज्यों–ज्यों सत्संगत बढ़ती है, त्यों–त्यों ज्ञान व अनुभव भी बढ़ता है, साथ में रुचि भी।

शिवसुंदर– कृपानाथ! बस, आपकी कृपादृष्टि से मेरा संकोच दूर हो गया है। अब मैं नित्य समय निकालकर आपकी परम पावन सन्निधि का लाभ लेने का मन में दृढ़ संकल्प करता हूँ।

आचार्यदेव– जैसी तुम्हारी भावना। इन भावों को आगे बढ़ाना और संकल्प को मजबूत रखना। फिर गंगेश की ओर मुंह करके फरमाने लगे– आयुष्मान्! आप महेश्वरदत्तजी के पुत्र हैं। वे तो कई बार पहुंच जाते हैं, पर आपको तो पहली बार ही देखा।

गंगेश– गुरुदेव! आपका फरमाना यथार्थ है। पिताश्री से भी मैंने कई बार आप की महिमा सुनी। भावना भी उमड़ी पर संयोग आज शिवसुंदरजी के निमित्त से मिल गया। फिर तो दोनों आचार्यदेव के चरणों में खुलकर अपनी शंकाओं का समाधान करने में इतने भावविभोर हो गये कि समय का ध्यान ही नहीं रहा। मालूम तो तब पड़ा कि अरुण अपनी सामायिक से निवृत्त होकर पास में आकर खड़ा हो गया। तब वे भी उठ गये और आचार्यदेव से मंगलपाठ श्रवण करके अन्य पुरुषों के साथ ही स्थानक से बाहर निकल गये।



(२३)

धीरे–धीरे तीनों में मित्रता प्रगाढ़ होती जा रही थी। परंतु उसमें कुछ व्यवधान भी उत्पन्न हो रहा था। गंगेश तो शैव होने के साथ ही युवा होने के कारण पिताश्री के पैतृक कार्यों में सहयोग देने लग गया। उसके वचन–माधुर्य, कंठ के सुरीलापन एवं अध्ययन की प्रौढ़ता से सहज जनाकर्षण बढ़ता गया। लोगों में विशेषकर अपने मंगल कार्यों को सम्पन्न कराने में गंगेश की ही अधिक

मांग बढ़ गई इसलिए वह उनमें इतना व्यस्त हो गया कि बड़ी मुश्किल से ही कभी साथियों से मिल पाता।

इधर अरुण के ऊपर पिताश्री का इतना नियंत्रण बढ़ गया कि वह बड़ी मुश्किल से सामायिक प्रतिक्रमण की दैनिक क्रिया निवृत्त करने स्थानक में आ पाता। बस, उसी समय थोड़ी देर आचार्यदेव की उपासना करके निकल जाता था। जाते–जाते शिवसुंदर को भी प्रेरणा देता जाता। भैया, तुम्हारे पुण्योदय से ऐसा दुर्लभ सहयोग प्राप्त हुआ है। उसका पूरा लाभ उठाओ। मेरे अभी कुछ अन्तराय कर्म का उदय है, फिर भी मेरा पुरुषार्थ जारी है।

शिवसुंदर को तो अब अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। आचार्यदेव की अधिक से अधिक उपासना द्वारा वह अपनी अंतर् जिज्ञासाओं का समाधान पाकर अंदर ही अंदर विरक्त भावना की सुवास से सुवासित होता जा रहा था। पर उसने इसकी भनक बाहर में किसी को अभिव्यक्त नहीं होने दी। भीतर ही भीतर परिपक्वता को पुष्ट कर रहा था।

आचार्यदेव के शरीर पर अब पूरी वृद्धावस्था झलकने लग गई थी, पर आत्मतेज अपूर्व था। एक रात्रि को सब सन्त स्वाध्याय–ध्यान आदि से निवृत्त हो निद्राधीन हो गये थे। आचार्यदेव अपनी शय्या पर बैठे थे ध्यान मुद्रा में। अकस्मात् उनको एक दिव्याकृति परिलक्षित हुई– वह कह रही थी – अब प्रमाद छोड़कर जाग्रत हो जाओ। भार उतारकर निर्लेप बन जाओ। आलोचना, प्रायश्चित्त, संलेखना से निर्मल–पवित्र बन जाओ। ऐसा कहती हुई वह दिव्याकृति विलुप्त हो गई। आचार्यदेव की तंद्रा टूटी। वे सजग होकर महामंत्र का स्मरण करते हुए चिंतन करने लगे उस दिव्याकृति का। उनको विश्वास हो गया कि यह अन्य किसी की नहीं, गुरुदेव की ही दिव्याकृति है। उन्होंने मुझे सावधान किया है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि मेरा आयुष्य समाप्त होने का समय नजदीक है। इसलिए उचित यही है कि मुझे सजग हो जाना है। बस, निश्चय कर लिया अपने मन में और संतों को चातुर्मास का निर्देश देते हुए यह भी फरमा दिया कि सब चातुर्मास उठते ही विहार का लक्ष्य मेरे पास शीघ्र पहुंचने का रक्खें। क्या मालूम, किस समय क्या हो जाय! साथ ही इस दृश्य का अवलोकन करने के बाद तो आचार्यदेव एकदम सजग बन गये और एक दिन, जब संघदासजी और सार्थवाह गुणसुंदरजी आचार्यदेव की चरणोपासना में पहुंचे तो बोले– आप संघप्रमुख हैं। मेरी ऐसी इच्छा है कि चातुर्मास उठते ही सभी संत–सती सुखे–समाधे जल्दी से जल्दी यहाँ पहुंचने का लक्ष्य रखें। दोनों ही संघ के वरिष्ठ श्रावक थे। संत–मर्यादा व रीति–नीति के जानकार, इंगियागार संपन्न थे। बोले– तहत्ति। आपका जैसा निर्देश–तुरत फुरत समाचार पहुँच गये।

चातुर्मास समाप्ति के साथ ही साधु–साध्वी आचार्यदेव की सेवा में पहुंचने लग गये। धीरे–धीरे संघ के करीब–करीब संत–सतीगण पहुँच गये। सब के मन में एक ही ऊहापोह मची हुई थी कि सबको सेवा में बुलाने का क्या प्रयोजन है? आचार्यदेव के दर्शन करके प्रसन्नता के साथ ही मन में प्रश्न उठ रहा था कि अभी शारीरिक स्थिति भी ऐसी प्रतिकूल नहीं लग रही है। सिर्फ वृद्धावस्था के अलावा आचार्यदेव सब क्रियाकलापों में पूर्ण सचेष्ट हैं। आचार्यदेव से भी चतुर्विध संघ के मनोभाव छिपे नहीं रहे। उन्होंने इसके समाधानार्थ एक अन्तरंग मीटिंग बुलाई।

आचार्यदेव के आदेशानुसार संघस्थ सभी साधु–साध्वी आचार्यदेव के पाट के सम्मुख यथाक्रम आसीन हो गये। पास ही प्रमुख श्रावक–श्राविकाएँ भी यथास्थान बैठ गईं। आचार्यदेव ने महामंत्र का मधुर स्वर से उच्चारण किया, फिर अपनी भावभरी भव्य मुखमुद्रा से फरमाने लगे– आप जैसे आज्ञापालक समर्पित चतुर्दिक संघ को पाकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता के साथ ही गौरवानुभूति होती है। यह मैं अपना महान् सौभाग्य मानता हूँ कि आज मुझे मेरे संघ के दर्शन हुए। साथ ही मैं अपने–आप में एवं कुछ विशेष गुरुकृपा एवं निर्देशानुसार आवश्यक समझता हूँ कि अब मुझे अपना भार हल्का करके संलेखना के साथ आगे की तैयारी कर लेनी चाहिए क्योंकि यह सबको विदित है कि जीवन के एक क्षण का भी विश्वास नहीं है। साथ ही शारीरिक स्थिति भी आपके सामने है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि यदि आप सब एकमत होकर अपने भावी शास्ता की नियुक्ति कर लें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता की अनुभूति होगी।

आचार्यदेव के इस स्पष्ट संकेत को श्रवण करते ही सब हतप्रभ हो गये और परस्पर चर्चा करने लगे। इतने में स्थविर मुनियों ने परस्पर चिंतन करके महास्थविरजी को अपनी भावना का प्रगटीकरण करते हुए प्रतिनिधि के रूप में आचार्यदेव को निवेदन करने हेतु आग्रह किया। तब सब के आग्रह से संत वर्ग के प्रतिनिधि रूप में महास्थविरजी ने बड़ी विनम्रता से निवेदन किया– भगवन्! यह आपकी महानता है कि इस गुरुतर उत्तरदायित्व के आप पूर्ण सक्षम अधिकारी हैं फिर भी चतुर्विध संघ पर इसके निर्णय का भार डाला है। पर यह आपका चतुर्विध संघ परस्पर चिंतन–मनन करके एक निर्णय पर पहुंचा है कि यह परंपरा आगे जाकर विकृत बन सकती है एवं अनेक अपवादों में उलझ सकती है। इसलिए श्रेष्ठ यही है कि आप स्वयं सक्षम हैं इसलिए आप ही अपने गहन चिंतन के साथ योग्य उत्तराधिकारी का निर्णय करके चतुर्विध संघ के समक्ष उस दिव्य पुरुष के नाम की घोषणा फरमा दें। यह हम आपको पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि आप अपनी प्रज्ञा से जिस भी दिव्य पुरुष का नाम–निर्देश

करेंगे, हम उन पर वैसी ही श्रद्धा एवं समर्पणा का भाव रखेंगे जैसा कि हमारा आप पर है। ऐसा कहकर महास्थविरजी ने सबकी ओर दृष्टि दौड़ाई और बोले– क्या आप सब मेरी इस बात से पूर्ण सहमत हैं? चारों तरफ से एक ही आवाज गूंजी– हम सब पूर्ण सहमत हैं और रहेंगे। ऐसा सकल चतुर्विध संघ दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ बोल रहा है। साथ ही साधु, साध्वी तथा श्रावक, श्राविका वर्ग के मय हस्ताक्षर के स्वीकृति भी प्राप्त करके आचार्यदेव के चरणों में प्रस्तुत कर दी। साथ ही अर्ज करने लगे – बस, इस शुभ घड़ी में ही भावी शासनेश का निर्वाचन करके हमें कृतार्थ करें।

तब आचार्यदेव उचित अवसर जानकर फरमाने लगे– मुझे आपके विचारों को जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई और ऐसे समर्पित, श्रद्धानिष्ठ, अनुशासित चतुर्विध संघ को पाकर मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूँ। साथ ही अपने दीर्घकालीन चिंतन, मनन, परीक्षा के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मुनिश्री धर्मप्रियजी मेरे उत्तराधिकार को वहन करने में सब तरह से योग्य हैं। इसलिए मैं आज चतुर्विध संघ की सहमति एवं साक्षीपूर्वक मेरे उत्तराधिकारी के रूप में घोषणा करता हूं कि मेरे बाद मुनिश्री धर्मप्रियजी इस संघ के आचार्य होंगे। आचार्यदेव के इस निर्णय की घोषणा होते ही सबने हर्ष–हर्ष की ध्वनि से इसका अनुमोदन किया और तहत्ति करके आचार्यदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए बोले– नाथ! घोषणा के साथ ही अपने हाथों से मय आशीर्वाद के आचार्य पदाभिषेक की रस्म भी कब अदा हो, इसकी भी घोषणा हो जाय और हमारे भावी शासनेश मुनिश्री धर्मप्रियजी से निवेदन करते हैं कि आचार्यदेव के चरणों में उपस्थित होकर हमें कृतार्थ करें।

लेकिन मुनि धर्मप्रियजी संकोचवश अपनी दृष्टि जमीन पर गाड़े बैठे थे और बैठे ही रहे। जब आग्रह करने पर भी नहीं उठे और देखा कि उनकी आंखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। यह देखकर मय आश्चर्य के सभी पर्याय ज्येष्ठ सन्तों ने उन्हें अपने हाथों में उठा लिया और आचार्यदेव के चरणों में खड़ा कर दिया। आचार्यदेव भी उनको अपनी बांहों में भरकर उनके सिर पर स्नेहपूरित हाथ फिराने लगे तो मुनि धर्मप्रियजी कहने लगे– नाथ! आपने यह क्या कर दिया? मेरे जैसे साधारण साधक पर इतने बड़े संघ के उत्तरदायित्व का भार डालकर, मेरे मन को भारी बोझिल बना दिया। जबकि संघ में मेरे से बढ़कर ज्ञानी–ध्यानी मेरे कितने गुरुभ्राता हैं। आचार्यदेव बोले– भैया! यह तो सब मुझे मालूम है, पर इस पद के जो योग्य है उसी को तो दिया गया है। इसलिए आप अपने ऊपर नियंत्रण रखते हुए प्रसन्नता से मेरा उत्तरदायित्व वहन कर मुझे भारमुक्त करो ताकि मैं अपनी अंतिम साधना हेतु सजग बनूं। मुनि धर्मप्रियजी इतना ही बोल

पाये– गुरुदेव! आपका शासन यशस्वी बने और खूब विस्तार पावे, यही मेरी अन्तर्हृदय की शुभ भावना है।

इसी के साथ ही सबके विचार–विमर्श के निर्णयानुसार चैत्र सुदी तेरस, महावीर जयंती को विधिवत् चादर प्रदान करने की घोषणा फरमा दी। उस समय चतुर्विध संघ ने हर्ष–हर्ष की ध्वनि सुनाते हुए आचार्य मुनिचंद्रजी महाराज की जय, युवाचार्यश्री धर्मप्रियजी महाराज की जय बोलते हुए आकाश को गुंजा दिया। उसके बाद आचार्यदेव ने सबको शांतिपूर्वक बैठने का संकेत करते हुए फरमाया कि आज मैं आपके उदार सहयोग से एक महान गुरु–प्रदत्त उत्तरदायित्व से मुक्त हुआ हूँ। अब मेरा एक मनोरथ शेष रहा है जो हर साधक का रहता है। वह है संलेखना संथारा सहित पंडित–मरण। जिसमें संलेखना तो मेरी प्रारंभ है और संथारा हेतु मैंने निश्चय कर लिया है कि आचार्य पद की विधिवत् रस्म अदा करने के दूसरे दिन संथारा ग्रहण कर लूंगा। चतुर्विध संघ को मैं पुनः यही संकेत करता हूँ कि जैसा मुझे आपने हर कार्य में पूर्ण समर्पण भाव से सहयोग दिया है, वैसे ही जीवन के इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग देवें।

आचार्यदेव की इस बात को सुनते ही जो सारा सभाभवन हर्षध्वनि से गुंजायमान हो रहा था, उसी सभाभवन में सन्नाटा छा गया। कोई किसी से कुछ बोलने की हिम्मत भी नहीं कर पाया। क्योंकि उत्तराधिकार के चिंतन–मनन हेतु पहली बार की विचार–चर्चा में ही गुरुदेव ने कुछ विशिष्ट दिव्य प्रेरणा का संकेत कर दिया था। अब तो सबके सामने एक ही प्रमुख कार्य निर्धारित था, उस दिन की तैयारी का, जिसके समाचार अविलंब सब संघों में पहुंचा दिये गये और जुट गये अगली तैयारी में।



(२४)

शिवसुंदर दुकान से घर आया, क्योंकि वहाँ विशेष काम नहीं होने से उसका मन नहीं लग रहा था। साथ ही, उसके दोनों लघु भ्राता उससे भी व्यापार कला में ज्यादा चुस्त थे। जब से आचार्यदेव के संसर्ग में आया, तव से शिवसुंदर उनके साथ होने वाली तत्त्वचर्चा की गहरी अनुप्रेक्षा में ही विशेष रूप से तन्मय बना रहता था। जिससे वस्तु क्रय–विक्रय में उससे कुछ–कुछ भूल हो जाती जिससे दोनों भाई कभी–कभी ताना भी मार देते, जिससे उसका मन व्यापार से उचटा–उचटा ही रहता था।

लेकिन देखा, घर में तो पूरा सन्नाटा छाया हुआ है। सिर्फ रसोईघर में उसकी बहिन, जो कुशस्थलपुर में ही ब्याही हुई थी, वह रसोई बना रही थी। उनसे मम्मी–पापा के बारे में पूछा तो बोली– वे स्थानक में गये हुए हैं। आज

वहाँ विशिष्ट कार्यक्रम है। शायद अभी आने वाले ही होंगे। यह सुनते ही शिवसुंदर की विचारधारा ने करवट ली। ओहो, मुझे तो कुछ ध्यान ही नहीं रहा। कुछ दिन से मैं कैसे कार्यों में उलझ गया कि स्थानक जा ही नहीं सका। हां, एक दिन स्थानक में चर्चा के दौरान कुछ सुनने में तो आया था कि आचार्यदेव अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करेंगे। उसके बाद मैंने उस बात पर ध्यान ही नहीं दिया क्योंकि मैं उन बातों से अनभिज्ञ था।

गुरुदेव का स्मरण होते ही शिवसुंदर के सामने आचार्यदेव की वह वात्सल्यभरी मुद्रा तैरने लग गई जिसमें वह तो इतना भावविभोर हो गया मानो गुरुदेव की चरणों में ही उपासना कर रहा हो। साथ ही उनसे होने वाली चर्चाएँ एक–एक करके मस्तिष्क में उभरने लग गई। मेरा कलायतन में ही उलझा हुआ प्रश्न अब्रह्म पाप है या प्रेम? आचार्य उसको प्रेम का प्रतिफल बता रहे थे लेकिन आचार्यदेव ने उसे पाप बताकर उसके स्पष्टीकरण में अठारह पाप का विस्तृत रूप समझाया था। साथ ही यह भी विभिन्न हेतु – दृष्टांतों से बताया था कि मदिरापान करने के बाद व्यक्ति बेसुध होकर बुरे कार्यों को अच्छा मानकर प्रवृत्त हो जाता है वैसे ही यह आत्मा मिथ्यात्व मोहकर्म के उदय भाव में उन्मत्त बनकर इन पापकार्यों को भी प्रेम आदि का चोगा पहनाकर इनमें प्रवृत्त होता हुआ जिस आत्मा में परमात्मा की सत्ता रही हुई है, जिसको भगवान महावीर, राम आदि महापुरुषों ने मनुष्य जीवन में इन पापों का त्याग करके प्राप्त किया, उसी मनुष्य जीवन को प्राप्त करके भी उस दिव्य शक्ति को कर्मों के आवरण से और ज्यादा आवृत कर लेता है और भवों–भवों तक जन्म–जरा–मरण के दुःखों से व्यथित होता रहता है और नरक, तिर्यंच के दुःखों को भोगता रहता है। लेकिन जब आत्मा में सम्यक् ज्ञान की ज्योति जाग्रत होती है और सुदेव सुगुरु, सुधर्म की सन्निधि प्राप्त करता है तब वह इनको त्याज्य समझकर उन्हीं महावीर, राम जैसी दिव्य आत्माओं की तरह इन सब पापों का परित्याग कर तप–संयम के आराधन में प्रवृत्त होता है जिससे वह उस मनुष्य भव में ऐसी महान् शक्ति अर्जित कर लेता है कि नर–नरेंद्रों, देव–देवेंद्रों का भी वंदनीय–पूजनीय बन जाता है। आचार्यदेव से चर्चा करते–करते तो मेरा मन भी कई बार उत्सुक बन जाता है कि मैं अभी ही सब पापों का त्याग करके इनका शिष्य बन जाऊं। इन्हीं भावों में एकात्म होते हुए शिवसुंदर को ऐसा महसूस होने लगता कि मैं वास्तव में गुरुदेव का शिष्य बन गया हूँ और गुरुदेव मेरे मस्तक को सहला रहे हैं जिससे मुझे परमानंद की अनुभूति हो रही है। शिवसुंदर इन्हीं भावों में सोफे के सहारे बैठा–बैठा हर्षविभोर हो रहा था। उसने मन ही मन संयम लेने का दृढ़ संकल्प भी कर लिया।

उसकी विचार–तंद्रा तो तब टूटी जब पिता गुणसुंदरजी और माता मेरुसुंदरी ने आंगन में प्रवेश किया। उनके भीतर आगमन के साथ ही वह सोफे से उठा और देखने लगा दोनों के चेहरे को, तो वह विचार में पड़ गया कि हमेशा तो स्थानक से आने पर दोनों के चेहरे पर अजीब ही प्रसन्नता छलकती है, पर आज चेहरे पर उदासी परिलक्षित हो रही है, क्या बात है? वह उत्सुकता के साथ माता मेरुसुंदरी के पास गया और पूछने लगा – मातेश्वरी! क्या बात है? आज आप दोनों का चेहरा उदास कैसे लग रहा है? कौन–सी व्यथा से आप व्यथित हैं? मेरे सामने कहने योग्य बात हो तो मुझे कहें ताकि मेरी चिंता का शमन हो।

शिवसुंदर की इस बात को सुनकर मेरुसुंदरी कहने लगी – पुत्र! क्या बताऊं, यह तो तुझे मालूम हो ही गया होगा कि हमारे आचार्यदेव ने कुछ दिन पहले अपने समस्त शिष्य–शिष्याओं को यहां बुलाया। उनके आदेश से सब शिष्य–शिष्याएँ यहाँ पहुंच गये। उसके बाद उनसे विचार–विमर्श करते हुए फरमाया कि अब मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं है, ऐसा गुरुदेव ने मुझे स्वप्नदर्शन में बताया है और यह भी फरमाया कि अपने भार से मुक्त होकर पंडित–मरण की साधना आरम्भ कर दो। इसलिए अब मैं अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करना चाहता हूँ अतः इसमें आप सब एकमत होकर बतावें कि किसको नियुक्त करूं? लेकिन आचार्यदेव के सभी शिष्य–शिष्याओं ने पूर्ण निर्लेप भाव से एक ही आग्रह किया कि इसके निर्णय के एकमात्र आप ही अधिकारी हैं। आपका निर्णय ही सर्वमान्य होगा। हमारा उसमें पूर्ण समर्पण है और रहेगा। तब आचार्यदेव ने मुनिश्री धर्मप्रियजी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और उसकी रस्म का महोत्सव चैत्र सुदी तेरस का मनाना निश्चित करके सब जगह शुभ समाचार भी प्रेषित कर दिये।

शिवसुंदर – यह तो बड़ी खुशी की बात है कि हमारे नगर में सुदूर प्रांतों से साधर्मी बंधु पधारेंगे और एक भव्य महोत्सव का आयोजन सम्पन्न होगा। इसमें आपके चेहरे पर उदासी का क्या कारण? क्या आप पर व्यय व व्यवस्था का भार आ पड़ा? शिवसुंदर की इस बात पर ठहाका मारकर हंसते हुए मेरुसुंदरी बोली– वत्स! ऐसा हमारा कहाँ सौभाग्य कि ऐसे पुनीत कार्य में हमारे धन का सदुपयोग हो। तू जानता ही है कि हमारे नगर में एक से एक सम्पन्न श्रावक हैं। सबकी यही इच्छा रहती है कि इसका सारा व्यय हम ही उठावें। कौन वंचित रहना चाहता है ऐसे पुनीत कार्य से। इसलिए हमारे ऊपर तो इसका भार कुछ नहीं है और यदि भार आ जाय तो चिंता की क्या बात है, हमारे यहाँ कमी किस बात की है? मेरे तो बार–बार मन में आती रहती है कि कभी हमको भी ऐसा मौका मिले कि हम और कुछ नहीं तो किसी पुण्यात्मा की दीक्षा का व्यय उठाकर भी अपने–आप को धन्य बनावें क्योंकि यह धन–उपार्जन करने में

अठारह पापों का सेवन करना पड़ता है और यदि विवाह आदि सांसारिक कार्यों में ही इसका व्यय होता है तो केवल पाप का ही पोषण होता है।

शिवसुंदर माता मेरुसुंदरी की बात सुनकर हर्षित होता हुआ बोलने लगा – मातेश्वरी! आपके इतने उज्ज्वल विचार हैं फिर आज उदासी का क्या कारण? तब मेरुसुंदरी बोली – बेटा! उदासी का खास कारण यह कि आचार्यदेव ने उसी चैत्र सुदी तेरस के महोत्सव के पश्चात् दूसरे दिन ही आहार का त्याग कर संथारा ग्रहण करने की घोषणा कर दी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि एक तो वृद्धावस्था, फिर अन्न का त्याग। उसके बाद इस जीवन की आशा ही कितने दिन की रह गई? बस, इसी बात पर मन उदास बन गया कि गुरुदेव ने कृपा करके यहाँ स्थिरवास विराजने की स्वीकृति प्रदान की। मन में अनेक उमंग जागी – गुरुदेव का सान्निध्य मिला है – खूब आत्म–साधना करेंगे। गुरुदेव के चरणों में खूब त्याग–तप की भेंट चढ़ायेंगे। लेकिन इस संसार के मायाजाल में ऐसे फंसे हैं कि कुछ कर ही नहीं पाये और इतना लम्बा समय भी कैसे निकल गया, कुछ पता ही नहीं पड़ा और कोरे के कोरे ही रह गये। अरे शिवसुंदर, क्या बताऊँ – हमारे से श्रेष्ठ वे कापालिक हत्यारे प्रचण्ड ही रहे जो कि थोड़ी–सी गुरु–सन्निधि पाकर आज हमारे वंदनीय, पूजनीय बन गये। वत्स! बस इन्हीं विचारों की उथल–पुथल मेरे अन्तर्मन में विवाद पैदा कर रही है कि अब गुरुदेव का साया कब हमारे ऊपर से उठ जाय और हमारे नगर में लगा धर्म का मेला बिखर जाय। ऐसा कहते–कहते उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े जिनको देखकर गुणसुंदरजी भी उदास हुए बिना नहीं रहे।

शिवसुंदर ने तो ज्योंही यह बात सुनी, वह तो अवाक् रह गया। चिंतन करने लगा, यह क्या हुआ? अभी–अभी तो मैं गुरुदेव का स्मरण करके उनसे होने वाली ज्ञानचर्चा की अनुप्रेक्षा करते हुए इस निर्णय पर पहुँचा कि वास्तव में जीवन का सार ही संयम है। सच्चा सुख, सच्चा आनंददाता संयम ही है। उसके अलावा सत्ता, संपत्ति, परिजन का सम्बन्ध रूप यह सारा संसार असार है। बस, मुझे अपने जीवन को सार्थक करने हेतु इस असार संसार को त्यागकर संयमपथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए। साथ ही ऐसा भी अनुभव होने लगा कि मैं संयमी बन गया हूँ। गुरुदेव का वात्सल्यभरा हाथ मेरे सिर पर है। मैं उससे परमानंद की अनुभूति कर रहा हूँ। फिर अभी यह दुःखद समाचार! क्या, मेरा स्वप्न स्वप्न ही रह जायेगा? मैं अभागा ही रह जाऊंगा? अभी कुछ ही दिनों से तो मैं आचार्यश्री का पावन सान्निध्य प्राप्त कर सका। जिसमें भी कितना आनंद, कितनी शांति का अनुभव मुझे हो रहा है। क्या यह आनंद अब सदा के लिए छूट जाएगा? धन्य हैं अरुण भैया। जिन्होंने तो गुरुदेव का सानिध्य पाने हेतु आदर्श

विद्या मंदिर में प्रवेश का भी पिताश्री से निषेध कर दिया और अधिक से अधिक गुरुदेव के सान्निध्य का लाभ उठाया और अपने जीवन को ही मोड़ कर रख दिया। लेकिन अभी वह कुछ दिन से नजर ही नहीं आ रहा है। मैं मेरे मन की व्यथा किसे सुनाऊँ और किससे समाधान लूँ?

यह तो स्पष्ट है कि अब गुरुदेव पंद्रह दिन बाद अनशन कर लेंगे। फिर क्या वे दीक्षादि संघीय कार्यों में भाग लेंगे यदि नहीं लेंगे तो मेरी कल्पनाएँ कल्पनाएँ ही रह जाएंगी। इतने में अन्तर्मन से आवाज उठी – अरे, क्यों चिंतित हो रहा है? दृढ़ संकल्प में महान् शक्ति होती है। बिना दृढ़ संकल्प के जो कार्य वर्षों में सफल नहीं होता वह दृढ़ संकल्प से अल्प समय में ही सफल हो सकता है। दृढ़ संकल्प से जम्बूकुमारजी ने तो आज शादी की और दूसरे दिन उन आठों पत्नियों को ही नहीं, उनके व अपने माता–पिताओं के साथ ही उस क्रूर डाकू प्रभव व उनके साथियों को भी साथ लेकर दीक्षा ग्रहण कर ली तो तेरे पीछे बंधन ही क्या है? बस, धारण कर दृढ़ संकल्प और बढ़ा ले अपने चरण। मार्ग अपने–आप प्रशस्त हो जायेगा। बस, इस आवाज ने तो शिवसुंदर में एक अपूर्व उत्साह की लहर पैदा कर दी। उसने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि बस, जो–कुछ करना है वह इन पंद्रह दिनों में कर लेना है। इस निश्चय के साथ ही अवसर ढूंढने लगा अपने भावों की माता–पिता के सामने अभिव्यक्ति का।



(२५)

संयोगतः एक दिन बात में गुरुदेव की वियोग–व्यथा से माताजी व पिताजी को व्यथित देखकर शिवसुंदर बोला – पूज्यवर! आपके दिल में गुरुदेव के प्रति कितनी गहरी आस्था है कि आप उनके अनशन की बात का स्मरण करके व्यथित हो उठते है। शिवसुंदर की बात को सुनकर गुणसुंदरजी सर्थवाह बोले – बेटा! मन व्यथित कैसे नहीं होगा? आज हमारे परिवार पर उनकी कितनी कृपा है। उन्हीं के पुण्य प्रताप से हम सब तरह से सुखी हैं और संघ व समाज में भी हमारी कितनी प्रतिष्ठा जमी है। इस उपकार से हम कैसे उऋण हो सकते हैं?

शिवसुंदर ने यह सुंदर अवसर देखकर कहा – पिताश्री! आपका चिंतन यथार्थ है पर केवल उऋण होने की अभिव्यक्ति मात्र से तो उऋण नहीं हो सकते हैं। उनके उपकार से यदि वास्तव में उऋण होना चाहते हैं तो हम उनके उपकार के बदले कोई बहुमूल्य भेंट चढ़ाकर ही उऋण हो सकते हैं।

शिवसुंदर ने यह बात ऐसे ढंग से कही कि वे इसका अन्तर् रहस्य समझ नहीं सके और बोले – बेटा। तुम्हारी बात सत्य है, पर समस्या यही है

कि वे अपरिग्रही हैं इसलिए वे भेंट आदि से दूर ही रहते हैं। यदि वे लेते तो मैं उनके चरणों में बहुमूल्य मणिमुक्ता की भेंट नहीं चढ़ा देता? क्या कमी है हमारे घर में? शिवसुंदर बोला – पिताजी! मानाकि वे मणिमुक्ता आदि की भेंट नहीं लेते तो क्या हमारे घर में उनके लेने योग्य वस्तुओं की कमी है? यदि हमारी सच्ची भक्ति है और वास्तव में उनके उपकार से उऋण होने की तमन्ना है तो हमारे घर में अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो भेंट चढ़ाकर उऋण हो सकते हैं।

शिवसुंदर की बात सुनकर सार्थवाह गुणसुंदर बोले – वत्स! मुझे तो ऐसी बहुमूल्य कोई वस्तु अपने घर में मणिमुक्ता के अलावा नहीं दिखती जो गुरुदेव के चरणों में चढ़ाकर उनके उपकार से उऋण हो सकें। यदि तेरे ध्यान में हो तो तू ही बता दे। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि वह वस्तु चाहे मेरी कितनी ही प्रिय हो, उसको गुरुचरणों में भेंट चढ़ाने में संकोच नहीं करूंगा। बता तू ही, ऐसी वस्तु कौनसी है?

शिवसुंदर ने उचित अवसर देखकर कहा – यह मैं खड़ा हूं आपके सामने। क्या मैं गुरुचरणों में भेंट करने लायक वस्तु नहीं हूँ? शिवसुंदर की यह बात सुनते ही तो गुणसुंदरजी अवाक् रह गये। मानों पावों तले की धरती खिसक रही हो। आंखों में अंधियारा छाने लगा। वे मस्तक पकड़कर धड़ाम से सोफे पर बैठ गये और बोले – शिवसुंदर! यह तूने कैसे वाक्जाल में मुझे फंसा दिया? क्या मैं तेरी भेंट चढ़ा दूं और फिर मैं अपने जीवन की आशा रखूं? मेरुसुंदरी ने ज्योंही यह बात सुनी, वह भी चीख पड़ी–हाय! यह क्या तुमने हमारे ऊपर वज्रपात कर दिया। इतने में बहन भी पास आ गई और कहने लगी – क्या बोल रहा है शिवसुंदर? क्या जानता भी है वैराग्य किस चिड़िया का नाम है? अभी दो–चार बार भी गया नहीं और बन गया वैरागी!

गुणसुंदरजी कहने लगे – बेटा! आश्चर्य होता है मुझे तेरी बात पर कि तेरे जैसा काव्यरसिक ऐसी बातें कर सकता है। मेरुसुंदरी बोली – शिव! तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो, घर का भार भी तेरे ऊपर ही है। मैं स्वप्न देख रही हूं कि शिवसुंदर बड़ा हो गया है। अब इसकी शादी रचाकर घर में बहू लाऊँ। जिसकी पांवों की पायलों से मेरा आंगण छम–छम की आवाज से गूंजे और तू यह क्या बोल रहा है? जरा सोच, तेरे इन शब्दों की हमारे हृदय पर कैसी चोट पड़ रही है। इतने में दोनों भाई भी आ पहुंचे और सारी बातों को सुनकर सोचने लगे – यह सब हमारी मजाक उड़ाने का ही नतीजा है। यह सोचकर दोनों शिवसुंदर के पैरों में पड़कर क्षमायाचना करते हुए जोर–जोर से रोने लगे।

शिवसुंदर सबकी बातों को गंभीर बनकर सुन रहा था। कैसी यह मोह की विडम्बना है। अभी–अभी तो कैसी बातें कर रहे थे और अभी क्या करने लग

गये? वास्तव में गुरुदेव का फरनामा कितना यथार्थ है। इनके बहाव में नहीं बहते हुए दृढ़ संकल्पपूर्वक आगे बढ़ना है। यह चिंतन करके अतिमधुर शब्दों में विनयपूर्वक निवेदन करने लगा – मात! आज आश्चर्य होता है आपकी बातों को सुनकर। अभी कुछ देर पहले तो प्रचंड मुनिजी को धन्यवाद दे रही थी और अपने को कोस रही थी और तात! आप भी अभी तो बोल रहे थे कि यदि गुरुदेव को भेंट चढ़ाने योग्य वस्तु तू बता दे तो मैं उसको सहर्ष चढ़ाने में कोई संकोच नहीं करूंगा। चाहे फिर वह वस्तु कितनी ही मेरी प्रिय और बहुमूल्य हो। और अब आप ऐसे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित हो रहे हैं। क्या यही आपकी गुरुदेव व धर्म के प्रति दृढ़ आस्था है? जरा चिंतन कीजिए। रही बात घर के उत्तरदायित्व की। उसमें भी कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि वैसे ही ये दोनों ही सारा कारोबार संभालते हैं। मेरी तो शुरू से इसमें रुचि नहीं जगी है। फिर आप किन विचारों में उलझ गये? साथ ही, जरा मन में तो सोचिये कि आप संतों की सेवा करके अपने–आप को धन्य मानते हैं तो वे भी तो किसी परिवार के ही सदस्य होंगे। उनके भी तो माता–पिता होंगे, उन्होंने भी तो अपनी ममता मारकर अपनी संतानों को गुरुचरणों में सौंपा होगा फिर आपको ही इतना विचार क्यों आता है? आप स्वयं फरमाते हैं कि सब–कुछ देव–गुरु–धर्म की कृपा का ही सुफल है। फिर अब आप क्यों हिचकिचा रहे हैं? पूज्य मात, तात! यह सब मोह की विडम्बना है। आप थोड़े–से इस मोह के पर्दे को दूर हटाकर चिंतन कीजिए। आपको सब–कुछ समझ में आ जायेगा। पूज्यवर! मैंने तो दृढ़ संकल्प कर लिया है कि गुरुदेव के हाथों से ही मुझे दीक्षा ग्रहण करनी है। इस संकल्प से कोई मुझे हिला नहीं सकता। चाहे यह सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय हो जाय, पर मैं अपने संकल्प से विचलित नहीं होऊंगा। यह आप स्पष्ट रूप से सुन लें।

जब शिवसुंदर के ये दृढ़विचार गुणसुंदरजी एवं मेरुसुंदरीजी सुने तो एक बार तो पुत्रमोह ने उनको विह्वल कर दिया पर आखिर थे सम्यग्दृष्टि तत्त्वज्ञ श्रावकरत्न – उन्होंने अपने ज्ञान से ही अपने मन पर छाये मोह–ममत्व के पर्दे को हटाया और सोचने लगे कि आखिर मनुष्य जीवन का सार तो संयम ही है और हमारा भी यही मनोरथ है कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन हम पंच–महाव्रतधारी अणगार बनेंगे। लेकिन हमारे अभी चारित्र मोहनीय का उदय है इसीलिए हमारा मनोरथ सफल नहीं हो पा रहा है। यह हमारा सौभाग्य है कि शिवसुंदर के चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम होने से इसमें चारित्र ग्रहण करने का भाव जाग्रत हुआ है तो हम अपने थोड़े–से ममत्व हेतु बाधक क्यों बनें? इससे इसका तो कल्याण होगा ही, साथ ही हमारा और हमारे कुल का भी सौभाग्य अभिवर्धित होगा और हमारे चारित्रमोह का क्षय होगा। ऐसा चिंतनकर सार्थवाह गुणसुंदरजी बोले :

बेटा! इतनी देर तक तो हम मोहावेश में बोल रहे थे और तेरे मनोबल को भी तोल रहे थे। अब हमने अपने तत्त्वज्ञान से इस मोह के वेग को नियंत्रित कर लिया। इसलिए अब हम तुम्हारे निर्णय का भार तुम्हीं पर डालते हैं कि क्या तुमने दृढ़ निश्चय कर लिया है? साथ ही संयम के उपसर्ग–परीषहों को सहन करने की अपनी सामर्थ्य को तोल लिया है? हम तुम से पुनः पूछ रहे हैं कि यह घड़ी–दो घड़ी का कार्य नहीं है, जीवनभर का है। यदि तुम्हारी पूर्ण तैयारी है तो चलो गुरुदेव के पास और उनकी आज्ञा प्राप्त करो। यदि वे स्वीकृति फरमा देंगे तो हम बड़े उत्साह–उमंग के साथ गुरुदेव के चरणों में तुम्हारी ही शिष्य रूपी भेंट चढ़ाकर उनके उपकार से कुछ उऋण होने का प्रयास करेंगे।

शिवसुंदर अपने माता–पिता की इस विचारधारा को श्रवण करके हर्ष–विभोर हो उठा। वह उनके चरणों में नतमस्तक होकर कहने लगा – धन्य हैं आप, जिन्होंने मेरे ऊपर महान उपकार करके अनुज्ञा प्रदान करने का निश्चय किया है। आज मैं धन्य हो गया हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं संयम लेकर आपके नाम को उज्ज्वल करूंगा। चाहे प्राण जाय, पर प्रण पर आंच नहीं आने दूंगा। आप चलिये गुरुदेव के चरणों में, उनका निर्देश ही हमारे लिए सर्वोपरि होगा। इतने में दोनों पुत्र और पुत्रियां माता–पिता के निर्णय को सुनकर बीच में खड़े हो गये और कहने लगे– आप भावावेश में क्या करने को तत्पर हो गये? विवाह के मुख पर आये युवा पुत्र को संयमी मार्ग पर विदाई देने हेतु तत्पर बन गये? हम तो कितने स्वप्न संजोये बैठे हैं कि अब भैया की शादी होने वाली है। हमारे घर में भाभी आने के बाद हम निश्चिंत हो जायेंगे। दोनों लघुभ्राता शिवसुंदर के चरण पकड़कर रोते हुए कहने लगे – भैया! हमारी मजाक की बात को बुरा मानकर आपने यह कदम उठाया है तो हम दोनों आपके अपराधी हैं। हम आप से क्षमा मांगते हैं, आप क्षमा करें। लेकिन इस प्रकार हमको छोड़कर जाने का निर्णय मत लें।

शिवसुंदर ने दोनों भाइयों को गले लगाया और कहा – बंधु! तुम दोनों बिना मतलब की बातों को मस्तिष्क में रखकर क्यों दुःखित हो रहे हो? पहली बात तो तुमने मेरा कभी तिरस्कार किया ही नहीं। सदा से पिताश्री की तरह ही मेरी इज्जत करते आ रहे थे। फिर ये विचार तुम्हारे मन में आये ही कैसे कि मैं तुमसे नाराज होकर संयम लेने का विचार कर रहा हूँ। यह तो संसार है। पांच सदस्य होते हैं वहाँ कुछ–न–कुछ अनुकूल–प्रतिकूल बातें हो ही जाती हैं। कभी–कभी तो भाई को भाई मारने हेतु भी तत्पर हो जाते हैं तो भी क्या संयम भाव जाग्रत होता है? इसलिए तुम अपने मन में विश्वास रखो कि मेरे मन में किंचित् मात्र भी रोष नहीं है। रही बात माता–पिता की सेवा के कर्तव्य की, तो

मैं कहाँ उससे दूर हट रहा हूँ। मैं जिस पथ पर जा रहा हूँ उसमें तो इन्हीं माता–पिता की नहीं, भवों–भवों के माता–पिता की सेवा का संकल्प जुड़ा हुआ है। इसलिए थोड़ा मात–तात के समान तुम भी अपने मोह के पर्दे को हटाकर देखो, तुमको सब–कुछ सत्य का बोध हो जायेगा। इसलिए अब तुम भी मेरे इस पवित्र कार्य में सहयोगी बनो।

शिवसुंदर के इन विचारों से चारों भाई–बहन अवाक् रह गये। बोले – भैया! आप तो ज्ञानी बन गये हैं। जब आपने माता–पिता को भी सहमत कर लिया तो अब हमारा जोर ही क्या चल सकता है? हमको भी विवश होकर आपके स्वार्थ में सहमत होना ही होगा। भाई–बहन के इन भावों को सुनकर उनकी पीठ थपथपाते हुए बोला – भगिनी, भ्राताओं! तुमसे ऐसी ही आशा थी। अब चलो तुम भी माता–पिता के साथ गुरुदेव की सेवा में।

इस प्रकार सारे परिवार के एकमत होते ही तैयार होकर चल पड़े गुरु–चरणों में। यह शुभ संदेश नगर में पहुंचने में देरी नहीं लगी। जिसने भी सुना, सब आश्चर्यान्वित होकर स्थानक में पहुँच गये। विशाल सभास्थल खचाखच भर गया। इधर गुणसुन्दरजी व मेरुसुंदरी, शिवसुंदर और उनके भाई–बहन आचार्यदेव के कक्ष में उपस्थित हुए और वंदन करके बोले – श्रीचरणों में कुछ समाधान हेतु उपस्थित हुए हैं। कृपा करके हमारी समस्या का समाधान करावें।

आचार्यदेव के इंगित से अन्य संत कक्ष से बाहर चले गये। उनके परिवार के अलावा अन्य कोई वहाँ नहीं था। तब आचार्यप्रवर बोले – कहो देवानुप्रिय! क्या कहना चाहते हो? तब गुणसुंदरजी बोले – प्रभो! आप इस शिवसुंदर को तो जानते ही होंगे। यह आपके दास का ज्येष्ठ पुत्र है। आचार्यश्री बोले – अरे जानता ही क्या हूँ इसको तो मैंने खूब नजदीक से देखा है, परखा है। यह बड़ा पुण्यवान और होनहार है। इससे तुम्हारे कुल की खूब गरिमा बढ़ेगी। आचार्यदेव के मुखारविंद से अपने कुलदीपक की प्रशंसा सुनकर गद्गद भावों से बोले – गुरुदेव! सब आपकी ही कृपा का प्रसाद है। जब से यह आपके सान्निध्य में आया है, इसकी दिशा और दशा ही बदल गई है। आपके सद्ज्ञान से इसमें विरक्ति के भाव अंकुरित होने लगे। लेकिन आपके कल संथारे के संवाद को सुनने के बाद तो वे इतने पुष्ट हो गये कि कल ही यह अपने वाक्चातुर्य से हमको वचनबद्ध करके कहने लगा कि – यदि आपमें सच्ची गुरुभक्ति है और आप उनके उपकार का ऋण चुकाना चाहते हैं तो कोई अमूल्य भेंट चढ़ाकर उनके उपकार से आपको उऋण हो जाना चाहिए। अब अवसर आ गया है। नहीं तो यह खेद प्रगट करना, आंसू बहाना केवल औपचारिकता ही रह जायेगा। नाथ! हम इसके अन्तर्रहस्य को तो समझे नहीं और बोल गये, वत्स!

तू ही बोल ऐसी कौनसी अमूल्य वस्तु है, जिसको भेंट चढ़ाकर हम गुरुदेव के उपकार से उऋण हो सकें। तब यह बोला – वस्तु तो मैं बता दूंगा पर आप अपनी ममता उतार सकोगे क्या? तब हमने कहा – गुरुदेव को भेंट चढ़ाने हेतु हम अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु, चाहे हमारी उस पर कितनी ही ममता हो, हम उसको भेंट चढ़ाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं, तू बता तो सही।

तब इसने बोला कि मैं आपकी प्रिय वस्तु हूँ या नहीं? बस, मेरी ही भेंट चढ़ा दीजिए। पहले तो इसकी बात को सुनकर विश्वास ही नहीं हुआ। हम तो यही सोच रहे थे कि ऐयाशी, कवित्वहृदयी कभी इस मार्ग पर जा सकता है? उसका कौतुकस्वभाव है। शायद इस समय भी अपना कौतुक ही दिखा रहा है। पर अवाक् तो हम तब हुए कि हमारे हजार अनुनय, प्रलोभन, स्नेह, ममत्व की बातें सुन करके भी इसने अपने दृढ़ विचार प्रगट किये। आखिर हमने अपने मोह–ममत्व का निवारण करके यही निर्णय लिया कि यदि आप इसको संयम योग्य पात्र समझकर स्वीकृति प्रदान कर दोगे तो हम यह शिष्य रूपी भेंट गुरुचरणों में अवश्य चढ़ा देंगे। बस, इसी निर्णय हेतु श्रीचरणों में उपस्थित हैं। अब आप ही फरमाइये – हमारे योग्य आदेश–निर्देश। इसकी यही इच्छा है कि मेरी दीक्षा गुरुदेव के मुखारविंद से ही हो और जितनी ज्यादा से ज्यादा गुरुदेव की अंतिम सेवा का लाभ उठा सकूं, उतना अपने–आप को सौभाग्यशाली व धन्य समझूंगा।

आचार्यप्रवर सार्थवाह गुणसुंदरजी, मेरुसुंदरीजी व अन्य परिवार के सदस्यों पर कृपादृष्टि बरसाते हुए उनकी बातों को सुनकर फरमाने लगे – देवानुप्रियो! यह संकल्प तो आपके कुल एवं गौरव के अनुरूप उसमें और अत्यधिक अभिवृद्धि करने वाला है। लेकिन यह तो आपको विदित है कि मैं अपना सारा उत्तरदायित्व मुनिश्री धर्मप्रियजी को सौंपकर कार्यमुक्त हो गया हूँ और चैत्र सुदी तेरस, वीर जयंती पर विधिवत् रस्म अदा करके संथारा ग्रहण करने का निश्चय कर चुका हूँ। इसलिए अब मैं इसे अपने शिष्य के रूप में तो स्वीकार नहीं कर सकता फिर भी शिवसुंदर, जिसको मैंने नजदीक से देखा है, परखा है और इसमें छिपी प्रतिभा का मैंने 'अवलोकन किया है इससे मुझे प्रतीत हुआ है कि यह निकटभवी आत्मा है। इससे जिन–शासन की अभिवृद्धि होगी। इसलिए इतना जरूर हो सकता है कि यदि आपकी तैयारी हो और इसकी भी पूर्ण तैयारी हो तो आचार्य पद की रस्म के साथ ही इसको मैं दीक्षा का प्रत्याख्यान कराकर भावी आचार्यश्री धर्मप्रियजी के शिष्य की घोषणा कर दूंगा। इसके पहले जब तक संथारा ग्रहण नहीं करूं तब तक अनुकूलतानुसार एक घंटे का समय इसको देने की भावना रखता हूँ ताकि इसको मेरी सेवा का भी लाभ

मिल जायेगा और मैं भी इसको साधनापथ का पाथेय देकर इस पथ पर अग्रसर होते देख लूंगा। अब आप ही अपना निर्णय कर लें।

आचार्यदेव के अभिप्राय को सुनकर शिवसुंदर हर्षविभोर होता हुआ गुरुचरणों में मस्तक धर कर कहने लगा – भगवन्! आज मैं धन्य हो गया। बस, मेरी एक ही तमन्ना है कि मैं आपकी अधिक से अधिक चरणसेवा प्राप्त कर सकूं। यही मेरी हार्दिक तमन्ना है। साथ ही मैं अपने परिजनों से भी यह निवेदन करता हूँ कि मेरे इस पुनीत कार्य में गुरुदेव के निर्देशानुसार स्वीकृति देकर सहयोगी बनें। ऐसा कहकर वह माता–पिता के चरणों में झुक गया। तब दोनों ने उसको उठाकर गले लगाया और नयनों से नीर बहाते हुए बोले – वत्स! हम तो पहले से ही वचनबद्ध हैं और अब गुरुदेव के अभिप्रायानुसार ही तुमको दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान करते हैं।

ज्योंही यह शुभ संदेश सभा में पहुंचा, सब हर्षोल्लास से भर उठे और हर्ष–हर्ष जय–जय की आवाज से आकाश को गुंजा दिया। जिसने भी सुना, सब आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहे और जुट गये सब इस महोत्सव को धूमधाम से आयोजित करने की तैयारी में।



(२६)

इधर अरुण पिताश्री के कठोर निर्देशानुसार जिस दिन धर्मप्रिय मुनिराज का अन्यत्र विचरण कर पुनः आगमन हुआ था उसी दिन बाहर चला गया था व्यापारिक कार्य संभालने हेतु। इस कारण उसको कुशस्थलपुर में घटने वाली घटनाओं के बारे में कुछ भी मालूम नहीं पड़ रहा था। इधर दिन निकल रहे थे। अब तो दो–चार दिन ही शेषं रह गये थे शिवसुंदर की दीक्षा के, मुनिराज धर्मप्रियजी की आचार्य पद–प्रतिष्ठा के साथ ही आचार्य के संथारा ग्रहण करने के। सारे नगर में शोक–मिश्रित धर्म–महोत्सव की धूम मची हुई थी। नजदीक–दूर से जिसको भी समाचार मिले, वे नर–नारी कुशस्थलपुर पहुंच गये और कई पहुंचने के लिए तत्पर थे।

सिद्धिदेवी के मन में विचार आया कि ऐसे अलौकिक अवसर पर सब पहुँच रहे हैं लेकिन गुरुदेव का कृपापात्र अरुण न मालूम यहाँ से कितनी दूर बैठा है। जब भी दर्शन को जाती हूँ तब गुरुदेव व संत पूछते हैं, अरुण दिखाई नहीं दे रहा है, क्या बात है? मैं शर्म के मारे इतना ही उत्तर देती हूँ कि अरुण आवश्यक कार्य से बाहर गया हुआ है। यदि ऐसे मौके पर वह दूर रह गया तो उसके मन में कितना गहरा सदमा बैठेगा। यह सोचकर वह उठी और पति सागरचंद्र श्रेष्ठी के कक्ष में गई और पूछने लगी – क्या आपने अरुण को यहॉ

होने वाले प्रसंगों का समाचार दिला दिया। श्रेष्ठी सागरचंद्र ने तुनक कर जवाब दिया– नहीं दिया तो क्या हो गया? पतिदेव के ऐसे उपेक्षापूर्ण उत्तर को सुनकर सिद्धिदेवी की आंखें नम हो गई और बोली – पतिदेव! ऐसा क्या पाप का उदय आया है कि आपके दिल में गुरुदेव के प्रति उपेक्षा भाव बढ़ रहा है। साथ ही धर्मक्रियाओं से भी मुंह मोड़ रहे हैं?

यह सुनते ही श्रेष्ठी सागरचंद्र फिर तुनककर बोले– तुमने धर्मक्रिया और गुरुदेव के प्रति उपेक्षा क्या देखी मेरी? जो कार्य है सामने, उसमें मैं तन–मन–धन से जुटा हुआ हूँ। सिद्धिदेवी बोली– यह केवल आप अपनी पद–प्रतिष्ठा के लिए कर रहे हैं। श्रेष्ठी सागर बोले– चाहे किसी उद्देश्य से कर तो रहा हूँ। सिद्धिदेवी– पतिदेव करना अलग बात है, श्रद्धा और समर्पणा से करना अलग बात है। आज मुझे उस बात का स्मरण होता है जिस दिन आचार्यदेव की स्थिरवास की विनती पर विचार–विमर्श करते हुए गाथापतिजी ने कहा था कि आचार्यश्री के विराजने से कभी कोई पुण्यात्मा संयम के लिए उद्यत हो जाय तो उपेक्षा भाव के साथ वैमनस्य भी पैदा हो सकता है। अभी समर्पणा दिखाने वालों को उस समय धर्म और धर्मगुरु कटुक भी लग सकते हैं। वह बात आज आप पर पूर्ण घटित होते देख रही हूँ जबकि वे तो इस पर खरे उतर रहे हैं।

श्रेष्ठी सागरचंद्र सिद्धिदेवी की बात पर फिर तुनककर कहने लगे– आज तुझे क्या हो गया है, जो तुम मेरे पर तानों के तीर पर तीर बरसा रही हो। ऐसा उन्होंने क्या तीसमारखां जैसा कार्य कर दिया और मैं पीछे हट गया हूँ?

सिद्धिदेवी– आप किस दुनिया में रहते हैं, क्या आपको कुछ भी मालूम नहीं है। उन्होंने तो ऐसा कार्य कर दिखाया है जैसा आज तक किसी ने नहीं किया। स्वयं आचार्यदेव ने उनके कार्य की सराहना करते हुए अंतर्–आशीर्वाद प्रदान किया है इस अंतिम वेला में।

श्रेष्ठी सागर – तुम आज यह पहेलियां ही बुझाओगी या कुछ बताओगी कि ऐसा हमारे से बढ़कर उसने क्या कार्य कर दिया जिससे गुरुदेव ने उनको अन्तर्–आशीर्वाद प्रदान किया?

सिद्धिदेवी– बड़ा आश्चर्य है कि ऐसी महत्त्वपूर्ण बात, जिसको सुनकर सारे नगर में उनका यशोगान हो रहा है, सब धर्म–श्रद्धालुओं के मुंह से धन्य–धन्य निकल रहा है और आपको कुछ मालूम नहीं। तो अब सुनिये– उन्होंने अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्र शिवसुंदर को गुरुचरणों में भेंट चढ़ा दिया, जिसकी दीक्षा भी आचार्यदेव के हाथ से सम्पन्न होगी जिस दिन धर्मप्रिय मुनिराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जायेगा और आपने अपने छोटे पुत्र अरुण की धर्म–भावना को कमजोर करने हेतु यहाँ से बाहर भेज दिया?

श्रेष्ठी सागरचंद्र सकपकाते हुए बोले– क्या कह रही हो? कौन शिवसुंदर? जो अभी आदर्श विद्याश्रम से सर्वकलाओं में निपुण होकर आया था और सार्वजनिक परीक्षण का कार्यक्रम था? अरे, तब तो उन्होंने अच्छा नहीं किया। क्या ऐसा सुयोग्य पुत्र संयम की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए होता है? और शायद तुम भी इसीलिए मुझे ताना मार रही हो कि मैं भी उन्हीं की तरह अरुण की बलि चढ़ा दूं? वह मेरा प्यारा पुत्र है, मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता।

सिद्धिदेवी– आजकल आप (पतिदेव) हर बात को उल्टी ही लेते हैं। जरा चिंतन करें। दीक्षा दिलाना भी कोई बलि चढ़ाना है? यह तो महान पुण्योदय का सुफल है। जिसके मन में संयम भाव जाग्रत होते हैं और जिसके भाव बन गये हैं उसको कौन रोक सकते हैं? और वे भी पुण्यवान आत्माएं ही होती हैं जो ऐसी भावनाओं को पुष्ट बनाने में सहयोगी बनती हैं। मैं क्या अर्ज करूं पतिदेव! आप वैसे स्वयं ही तत्त्वज्ञ हैं। थोड़ा–सा मोह का पर्दा हटाकर देखें तो सारी बात सीधी व स्पष्ट मालूम हो जायेगी। पर मूल बात तो यह है जो मैं पहले भी कह चुकी हूँ कि अरुण ने आज तक यह कभी नहीं कहा खुद के मुंह से कि मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। फिर आप केवल शंका–शंका में ही उस पर प्रतिबंध लगाकर उसके मन में कुंठा पैदा कर रहे हैं और लोगों में भी चर्चा का कारण बन रहे हैं। इसलिए मेरी तो अर्ज यही है कि अरुण के भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा। सिर्फ ऐसे मौके पर उसको दूर रखना उचित नहीं है। इसलिए अब भी आप उसको जल्दी से बुला दें।

श्रेष्ठी सागर फिर तुनक कर बोले– जैसी तुम्हारी इच्छा। मैंने तो समाचार नहीं दिये। मुनीमजी जा रहे हैं, अब तुम ही उनके साथ समाचार भेज दो। इतनी–सी बात के लिए सवेरे से इतना माथा खा गई।

सिद्धिदेवी ने देखा, अब ज्यादा बात करना उचित नहीं है। उसने उसी समय एक पत्र सारे समाचार लिखकर मुनीमजी को दे दिया, जिसको लेकर मुनीमजी रवाना हो गये। इधर अरुण पिताश्री का आदेश पाकर चला तो गया था पर मन बड़ा ही बेचैन था। एक दिन तो उसकी बेचैनी इतनी बढ़ गई कि अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रख सका और मुनीमजी नहीं पहुंचे, उसके पहले ही वह वहाँ से रवाना हो गया। आगे चलते–चलते ज्यों–ज्यों कुशस्थलपुर के समाचार मिलते, उसको अधिक बेचैनी होने लगी। उसने अपने रथ की गति तीव्र कर दी और जैसे–तैसे चैत्र सुदी बारस की संध्या को कुशस्थलपुर पहुंच ही गया। सागर श्रेष्ठी को छोड़कर अरुण को देखते ही सबको प्रसन्नता हुई। जब सारी बात विस्तार से सुनी तो अरुण हतप्रभ हो उठा। वह वस्त्र बदलकर, कुछ भोजन–पान लेकर, थका हुआ था, सो गया।



(२७)

प्रातः होते ही अरुण उठा और कुछ धर्माराधना करके सीधा चल पड़ा शिवसुंदर के घर की ओर। आगे देखा– शिवसुंदर के अभिनिष्क्रमण की तैयारी हो रही है। सारे निकट परिजन अश्रुपात कर रहे हैं। माता–पिता, दोनों भाई और दोनों बहनों का तो कहना ही क्या? दोनों भाई चरणों में पड़कर फूट–फूटकर रो रहे हैं, बहनें विलापात कर रही हैं। पर शिवसुंदर तीव्र विरक्त भाव में उन सबको धैर्य बंधाते हुए सबसे क्षमायाचना करके घर से बाहर आ जाता है और अभिनिष्क्रमण के लिए तैयार शिविका में आरूढ़ हो ही रहा था कि उसकी दृष्टि में अरुण आ गया। तुरंत उसके पास आते ही दोनों गले मिले और अरुण शिवसुंदर के पांवों में गिरते हुए पश्चात्ताप के आंसू बहाता हुआ धन्यवाद देने लगा। शिवसुंदर उसको उठाता हुआ कहने लगा– यह सब आपका ही कृपा–प्रसाद है। मुक्तामाला पहनाते हुए आपने शिक्षा दी थी कि धर्मकला सब कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। आपने ही गुरुचरणों में पहुंचाया है।

अरुण बोला– मित्र! क्या बताऊं, आप महापुण्यशाली हैं। मैं तो अभागा का अभागा ही रह गया। खैर, मेरे मन में संतोष है कि आप तो परमपूज्य गुरुदेव के हाथ से दीक्षित हो रहे हो। मुझे भी जल्दी ही साथ लेना। शिवसुंदर बोला– मित्र! मैं भी आपको निमंत्रण देता हूँ कि आप अब भी शीघ्र इस मित्रता को निभाते हुए संयमी पथ पर आरूढ़ होवें। अरुण फीकी मुस्कानभरे चेहरे से बोला– आपका आमंत्रण सफल हो, पर अभी तो मुझे नजदीक में सफलता परिलक्षित नहीं हो रही है। उसके हृदय में बार–बार एक टीस भी पैदा हो रही थी। ओह! वाह रे कर्म! जिसकी कभी आशा नहीं थी उसका तो तूने पीछा छोड़ दिया और मैं जितना उद्यत होने को तत्पर हुआ उतना तूने मुझे अधिक जकड़ लिया। ऐसा चिंतन करते–करते उसकी आंखों से आंसू लुढ़कने लगे, जिनको पोंछता हुआ अरुण शिवसुंदर के पास से खिसक गया। शिवसुंदर से उसके आंसू छिपे नहीं रहे, पर करता क्या? उसको सांत्वना देना चाहता था पर वह तो उससे बहुत दूर निकल गया।

शिविकारूढ़ होता हुआ शिवसुंदर विशाल जुलूस के साथ मध्य बाजारों से होता हुआ प्रचंड त्यागी जैनाश्रम के भव्य पंडाल में पहुंच गया। शिवसुंदर शिविका से उतरा। अरुण को देखते ही शिवसुंदर ने अपने पास बुला लिया और संयम ग्रहण करते वक्त तक साथ ही रहने का आग्रह किया। अरुण का मन रो रहा था पर उसके मन को रखने हेतु शिवसुंदरजी के साथ रहा।

इधर आचार्यदेव साधु–साध्वीवृंद के साथ पहले से पधार चुके थे। एक उच्च पाट पर आचार्यदेव विराजमान हुए, जिनके आस–पास सन्त व साध्वी–वृंद

विराजित हुए। आचार्यदेव के पास ही एक छोटा पाट था, जिस पर केवल आसन बिछा हुआ था।

सामने ही भव्य मंडप, जो प्रियादेवी ने प्रचंड त्यागी जैनाश्रम के स्थायी फण्ड के व्यय से ही तैयार कराया था, वह इतना रम्य था कि देखने वाले साक्षात् स्वर्ग की अनुभूति करने लगे। वाद्यों के तुमुल घोष के साथ शिवसुंदर ने विनयपूर्वक पंडाल में प्रवेश किया। अरुण उसके साथ ही था। चलकर सीधा आचार्यदेव के पास पहुंच गया। सबको वंदन करके मांगलिक श्रवण की और पास के ईशानकोण में बने कक्ष में चला गया। वहाँ सिर मुंडित करके स्वलिंग सूचक साधुवेश, मुंह पर सदोरक मुंहपत्ति बांधी हुई थी, तन पर चोलपट्टक व चद्दर पहने हुए, हाथ में प्रमार्जनी, रजोहरण व काष्ठ के चार पात्र और बहत्तर हाथ वस्त्र स्थविर कल्प की मर्यादानुसार ग्रहण करके पुनः पण्डाल में पहुँच गया और आचार्यदेव के सामने खाली स्थान पर बैठ गया। उसके परिजन भी आगे बनी हुई स्थान–व्यवस्था में बैठ गये। शिवसुंदर साधुवेश में बड़ा भव्य, शांत, सौम्य लग रहा था। अरुण पास खड़ा अपने भाग्य को कोस रहा था।

अब पहले आचार्य पद–प्रतिष्ठा की विधि प्रारंभ हुई। सबसे पहले आचार्यदेव ने महामंत्र का उच्चारण किया, फिर सात बार समवेत स्वर में सभी सन्तों ने उच्चारण किया। बाद में नंदीसूत्र, स्थविरावली का उच्चारण हुआ। उसके बाद आचार्यदेव के संकेत से सब सन्तों ने मुनिश्री धर्मप्रियजी महाराज को आचार्यश्री के सामने सविनय उपस्थित किया। आचार्यदेव ने बड़े प्रमुदित भाव से पांच बार मंगलपाठ का उच्चारण करके केसर मंडित चद्दर अपने तन पर धारण करके सब मुनियों को दी। उन्होंने अपनी अनुमोदना सूचक हाथ का स्पर्श करके साध्वियों को दी, साध्वियों से भी स्पर्शित होकर वह चादर श्रावक–श्राविकाओं से स्पर्शित होकर श्रमणवेशधर भावी मुनि शिवसुंदरजी के पास आ गई। जिसको अरुण ने भी स्पर्श किया और पुनः वह आचार्यदेव के कर–कमलों में पहुँच गई। आचार्यदेव ने शुभ मुहूर्त में अपने कर–कमलों द्वारा सम्मुख खड़े मुनि धर्मप्रियजी महाराज को ओढ़ा दी और उनके कान में सूरी मंत्र बोलकर आशीर्वाद प्रदान करते हुए फरमाया कि आज से इस संघ का उत्तरदायित्व आपको सौंपता हूँ। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आपके नेतृत्व में शासन की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी। साथ ही, चतुर्विध संघ को संबोधित करते हुए फरमाया कि आज से इस संघ के आचार्य धर्मप्रिय मुनिराज हैं। जैसे आपने मेरी आज्ञा का पालन करते हुए मुझे सहयोग दिया और श्रद्धाभक्ति से उपासना–आराधना की, वैसे ही और उससे भी अधिक आपके इन आचार्य की करें। ये कैसे साधक हैं, इनमें कितनी शक्ति है, यह सब आप जान चुके हैं, सुन चुके और देख चुके हैं।

मेरा अन्तर्–आशीर्वाद है कि आपके नेतृत्व में जिन–शासन की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी। साथ ही, आज से मैं संघ–भार से मुक्त होता हुआ चतुर्विध संघ के साथ मेरा गुरु–शिष्य अथवा अनुशास्ता के रूप में गहरा दीर्घकालीन संबंध रहा, उस काल के अन्तर्गत किसी को मेरे मनसा–वाचा–कर्मणा से संक्लेश पहुंचा हो तो क्षमायाचना करता हूँ। यह कहकर आचार्यदेव ने "खामेमि सव्वे जीवा..." का उच्चारण किया।

पूरे पंडाल में जैन धर्म की जय, महावीर स्वामी की जय, आचार्य मुनिचंद्रजी महाराज की जय का घोष हुआ, नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री ने आचार्यदेव व अपने से पर्यायज्येष्ठों को वंदना की। साथ ही सारे चतुर्विध संघ ने नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री को वंदन करके आनन्द की अनुभूति की। इधर मुनिराज ने नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री को आचार्यदेव के पास बिछाये गये आसन पर विराजने का आग्रह किया। लेकिन जब वे नहीं बैठने लगे तो पर्यायज्येष्ठ मुनिराजों ने अपने हाथों से उठाकर यह कहते हुए पाट पर बिठा दिया कि यह सन्मान आपका नहीं, आचार्य पद का है, जो वर्तमान में सर्वोच्च पद है। नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री धर्मप्रियजी बड़े संकुचित भाव से पाट पर विराजे।

अब आचार्यदेव ने विरक्तमना शिवसुंदरजी, जो साधुवेश पहनकर सामने खड़े थे, उनको संबोधित करके पूछा– हे देवानुप्रिय! क्या आपकी पूर्ण तैयारी है? क्या आपने अपने मन को पूर्ण रूप से टटोल लिया है? पुनः एक बार और गहराई से सोच लो। जब उन्होंने अपनी पूर्ण तैयारी दिखाई तो फिर उनके माता–पिता, परिजन व उपस्थित समग्र जनसमूह से आज्ञा लेकर दीक्षा–विधि प्रारंभ की। सबसे पहले णमोक्कार मंत्र के उच्चारण के साथ ईर्यावही की पाटी के साथ तस्सउत्तरी की पाटी का उच्चारण करके दो लोगस्स का ध्यान करने का निर्देश दिया। ध्यान पूर्ण होने के बाद ध्यानशुद्धि के पाठ का उच्चारण करके पुनः लोगस्स के पाठ का मधुर लय में आचार्यदेव ने उच्चारण किया। फिर अपने मुखारविन्द से तीन बार करेमि भंते की पाटी का उच्चारण करके सर्वसावद्ययोगों का जीवनपर्यन्त के लिए त्याग कराया जिसको शिवसुन्दरजी ने अप्पाणं वोसिरामि के उच्चारण के साथ त्याग कर दिया। फिर दो बार शक्रस्तव के पाठ से सिद्ध व अरिहंत परमात्मा की स्तुति ज्योंही पूर्ण की, पुनः सारा पाण्डाल मुनिश्री शिवसुंदरजी महाराज की जय ध्वनि से गुंजायमान हो उठा। सब संतों ने नवदीक्षित मुनिश्रीजी को अपने हाथों से उठाकर आचार्यदेव की गोद में बिठाया। आचार्यदेव ने अपने कर–कमल शिवसुंदर मुनि के सिर पर फिराते हुए आशीर्वाद दिया और चतुर्विध संघ को संबोधित करते हुए फरमाया कि मैं इनको आपके नवप्रतिष्ठित आचार्य धर्मप्रियजी को शिष्य रूप में भेंट करता हूँ और निर्देश देता

हूँ कि वे इनका शिखालोच करके स्वीकार करें और इनकी सारणा, वारणा, धारणा करके इनका खूब विकास करें। ये प्रतिभासंपन्न हैं, इनसे जिन–शासन की खूब प्रभावना होगी। नवप्रतिष्ठित आचार्य धर्मप्रियजी ने गुर्वाज्ञा शिरोधार्य करके उनका शिखालोच किया। नवदीक्षित शिवसुंदर मुनिजी के आज हर्ष का कोई पारावार नहीं था। उनको दो–दो आचार्यों से दीक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने सबसे पहले अपने दादागुरु आचार्यश्री मुनिचंदजी म.सा. को वंदना की, फिर अपने गुरुदेव आचार्य धर्मप्रियजी म.सा. को वंदना की। इसके बाद क्रमशः सभी साधुवृंद को वंदन करके आशीर्वाद लिया। तब साध्वी वृंद व श्रावक–श्राविकाओं ने भी नवदीक्षित शिवसुंदर मुनिजी को वंदन किया और पुनः आचार्यदेवों एवं नवदीक्षित शिवसुंदर मुनिजी से मंगलपाठ श्रवण कर यथाशक्ति त्याग–प्रत्याख्यान ग्रहण करके, वहीं बनी भोजन–व्यवस्था के स्थान पर भोजन करके अपने–अपने क्षेत्र के लिए प्रस्थान करने लगे।



(२८)

अरुण भी शिवसुंदर मुनि को वंदन करके जब घर की ओर प्रस्थान करने लगा, उसकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। शिवसुंदर मुनिजी कहने लगे– आप तो ज्ञानी हैं और जानते ही हैं कि चारित्र मोह का जब तक क्षयोपशम नहीं होता तब तक चारित्र ग्रहण नहीं किया जा सकता। आपकी प्रेरणा से निमित्त मिला और मेरे चारित्रमोह के क्षयोपशम से मैं दीक्षित हो गया। मेरे मन में तो पूर्ण विश्वास है कि आपका भी किसी योग्य निमित्त से जरूर क्षयोपशम होगा। आप निराश न होइये और एक बात ध्यान से सुन लीजिए कि कल से आचार्यदेव संथारा ग्रहण करने वाले हैं। यह उनकी अंतिम सेवा का अवसर है, मैंने भी इसीलिए जल्दी की कि जितनी–कुछ हो सके आचार्यदेव की सेवा का लाभ प्राप्त हो। माता–पिता एवं गुरुदेव की कृपा से मेरी भावना सार्थक हुई। मैं आपको भी यही संकेत देता हूँ, आप इस अवसर का लाभ उठाना चूकें नहीं। चाहे हजार अड़चनें आ जायं। क्या मालूम इस संथारे में आचार्य द्वारा अपने ज्ञान से कुछ आपके भविष्य का निर्देश भी प्राप्त हो जाय।

अरुण शिवसुंदर मुनिजी के इस उद्बोधन से अपने मन में कुछ आश्वस्त बनकर अपने घर को चलने लगा। वह अकेला गुमसुम चलता जा रहा था। रास्ते में कई लोग शिवसुंदर के दृढ़ संकल्प की तो कई उनके माता–पिता सार्थवाह गुणसुंदरजी और मेरुसुंदरीजी की गुरु–आस्था की प्रशंसा करते जा रहे थे। कई नवप्रतिष्ठित आचार्य धर्मप्रियजी की महिमा का गान कर रहे थे। तो

कोई लोग आचार्यदेव के संथारे की बात से दुःखित बने आहें छोड़ रहे थे। अरुण सबकी बातों को सुनते–सुनते अपने घर पहुंच गया। आज उसे सारा वातावरण सुनसान लग रहा था। न किसी से बोलने की इच्छा हो रही थी, न कुछ खाने–पीने की। घरवाले भी उसकी मनोव्यथा को समझ रहे थे इसलिए उसे किसी प्रकार से छेड़ना उचित नहीं समझ रहे थे।

अरुण सीधा अपने कक्ष में चला गया। वस्त्र बदलकर निढाल बना हुआ अपनी शय्या पर लेट गया। रह–रहकर उसके सामने शिवसुंदर मुनि का चेहरा, तो कभी नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री का भव्य दीदार व उन कार्यक्रमों की झलकियां चलचित्र की तरह आ रही थीं। आचार्यदेव के कल संथारा ग्रहण करने की बात स्मृति पटल पर उभरते ही तो उसका मन रो उठता। किसी तरह करवटें बदलते–बदलते रात्रि व्यतीत हुई। प्रातः शारीरिक निवृत्ति के साथ ही तत्पर हो गया स्थानक जाने हेतु। मां ने कहा– अरुण! कल भी कुछ नहीं खाया, आज तो कुछ खा ले। मां की बात सुनकर अरुण बोला– मां! आज गुरुदेव संथारा करेंगे और तू मुझे खाने के लिए कह रही है? मातेश्वरी, अब मेरी इच्छा है किं जब तक शक्ति हो तब तक तपस्या करूं। साथ ही आप पिताजी को समझा देना कि अब मैं कहीं बाहर नहीं जाऊंगा। मेरा अधिक से अधिक समय आचार्यश्री की अंतिम सेवा में ही लगेगा। वहीं संवरवृत्ति धारण करके रहूंगा। अरुण यह कहता हुआ घर से निकल कर स्थानक पहुंच गया और वस्त्र बदलकर आचार्यश्री के चरणों में पहुंच गया और वंदन करने लगा।

आचार्यश्री ने फरमाया– अरुण! कहाँ गया था वत्स इतने दिन और कब आया? कल ही तुझे देखा था, पर उस भीड़ के माहौल में कुछ बात नहीं कर सका। आचार्यदेव के इन स्नेहिल वचनों से अरुण कुछ आश्वस्त हुआ और अपने भाग्य की सराहना करने लगा। आचार्यदेव की मेरे ऊपर पूर्ण कृपा है, यही मेरा मार्ग निश्चित प्रशस्त करेगी। देर हो सकती है, अंधेर नहीं। अंजलिबद्ध सिर झुकाकर बोला– भगवन्! आपकी मुझ अबोध पर बड़ी कृपा है। मैं पिताश्री के आदेश से बाहर गया हुआ था। परसों ही बड़ी मुश्किल से पहुँच पाया हूँ। प्रभो! मैंने सुना है आज आप संथारा ग्रहण करेंगे, क्या यह बात सत्य है?

गुरुदेव बोले– हां वत्स! तुमने सत्य ही सुना है।

अरुण बोला– भगवन्! अभी तो ऐसी स्थिति नहीं लग रही है।

गुरुदेव– वत्स अरुण! आत्मबल तो मेरा ठीक है, पर शारीरिक बल कृश हो गया है। कल के कार्यक्रम को भी बड़ी कठिनता से निवृत्त कर पाया हूँ। साथ ही कुछ गुरुदेव के दिव्य संकेत से महसूस हो रहा है कि अब आयुष्य बल ज्यादा दिन नहीं चल सकता है, इसलिए मैंने सावधानीपूर्वक सब कार्य निवृत्त

कर दिये। शिवसुंदर मुनि की भी इच्छा पूरी हो गई और तू भी आ गया। अब पंडित मरण की तैयारी करना ही श्रेयस्कर है।

अरुण बोला– भगवन्! शिवसुंदर मुनिजी का तो आपने उद्धार कर दिया, पर अब मेरा क्या होगा?

गुरुदेव फरमाने लगे– भैया! यह तो क्षयोपशम की बात है। तुम अपने पुरुषार्थ को जारी रखो। एक दिन अवश्य क्षयोपशम होगा तो तुझे भी सफलता मिलेगी।

इतना–सा उत्तर देने के साथ ही वे बोले– सब साधु–साध्वियों को यहाँ आने का संकेत कर दो।

अरुण ने आचार्यदेव के इंगितानुसार आचार्य धर्मप्रियजी महाराज को निवेदन किया। उन्होंने सबको संदेश भिजवा दिये। जिसको श्रवण करके सब साधु–साध्वी और प्रमुख श्रावक–श्राविकाएँ भी पहुँच गए आचार्यदेव की सेवा में।

आचार्य प्रवर ने समयोचित उद्‌बोधन देकर पुनः चतुर्विध संघ से क्षमायाचना की और नवप्रतिष्ठित आचार्य श्री धर्मप्रियजी म.सा. से बोले– अब आप मुझे सविधि संथारा का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करा दीजिए। आचार्य धर्मप्रियजी गुरुदेव की बात को सुनकर भावविह्वल हो गये। फिर अपने कर्तव्य के प्रति सजग होकर चतुर्विध संघ की साक्षी से विधियुक्त तिविहार संथारा का प्रत्याख्यान करा दिया और पूर्ण शान्त वातावरण में छः जीवनिकाय और समाधिमरण, बारह भावना का मधुर लय में उच्चारण करने लगे। आचार्यदेव भी सारी विधि को पूर्ण सजगता से श्रवण करते हुए 'मिच्छामि दुक्कड़ं' की जगह 'मिच्छामि दुक्कड़ं' और वोसिरामि की जग़ह 'अप्पाणं वोसिरामि' का उच्चारण करते हुए अंजलिबद्ध हो तृण शय्या पर विराजमान थे। उस समय उनके चेहरे पर अपार आनंद, अपूर्व तेज, अपार शांति का स्रोत प्रवाहित हो रहा था। लोग दूर से ही पूर्ण अनुशासनबद्ध दर्शन करके निकल रहे थे। जिनको समय था, वे सभा–स्थल में सामायिक आराधना करते थे। मधुर लय में महामंत्र का जाप कर रहे थे, कोई तपस्या करने लगा।

इधर आचार्यदेव के संथारे की बात सुनकर प्रचंड मुनि अड़ गये कि मैं भी गुरुदेव के साथ ही संथारा करूंगा। तब आचार्य धर्मप्रियजी ने समझाया– मुनिश्री! संथारा ऐसे नहीं होता है। वह तो शारीरिक क्षीणता के साथ ही आयुष्य नजदीक आने का अनुमान लगने पर अथवा उसकी शारीरिक लक्षणों से पहचान होने पर ही कराया जाता है। आपके संथारे का ऐसा कोई कारण नहीं दिखता इसलिए आपकी इच्छा हो तो तपस्या कर सकते हैं, जितनी आपकी आत्मा माने।

आखिर उन्होंने तपस्या धारण की। और भी साधु–साध्वियां, श्रावक–श्राविकाएं यथाशक्ति तप और जप करने लगे।

आचार्यदेव को अंतिम साज देने हेतु अन्य मुनिराज, साध्वी सब यथावसर स्वाध्याय आदि सुनाते रहे लेकिन विशेष रूप से आचार्यश्री की सेवा में शिवसुंदर मुनिजी डटे रहते तो दूसरी तरफ अरुण। दोनों अच्छे कवि और गायक थे। आचार्यदेव उनसे आत्म–जागरणा के भावों से ओतप्रोत गीत श्रवण करके गहरे समाधि भाव में तन्मय हो जाते। उन्हें परमानंद की अनुभूति होती और देहातीत भावना में रमण करने लग जाते। इसी क्रम में ज्यों–ज्यों दिन निकल रहे थे, त्यों–त्यों शरीर तो अतिकृश होता जा रहा था, पर आत्मतेज रोम–रोम में छलक रहा था। गुरुदत्त और नरादित्य भी अपने गायक मंडल के साथ गजसुकुमाल आदि परीषहजयी देहतितीक्षावंत आत्माओं का चारित्रगान बड़ी मधुरता से करते। आचार्यदेव उनको श्रवण करते–करते आत्मभाव में तन्मय हो जाते।

मुनि शिवसुंदरजी ने बड़ी मधुर लय में बारह भावनाओं का संगान करके गुरुदेव के चरणों में ज्योंही अपना शीश झुकाया, आचार्यदेव पूर्ण वात्सल्य से अपना हाथ शिवसुंदर मुनिजी के सिर पर फिराते हुए आशीर्वाद प्रदान करने लगे जिसे पाकर शिवसुंदर मुनि अपने–आप को धन्य मानते। वे सोचने लगे– मेरा पुरुषार्थ सफल हो गया। जो पाना चाहता था वह इस अल्पावधि में ही मुझे मिल गया।

इस दृश्य को देखकर अरुण गमगीन हो गया। सोचने लगा– काश! इस स्थान पर मेरा अधिकार होता तो मैं भी गुरुदेव की अंतिम सेवा साधकर आशीर्वाद लेता। ऐसा चिंतन करते–करते उसकी आंखों से अश्रु छलक गये। आचार्यदेव की दृष्टि अरुण पर पड़ी। उसको आर्त देखकर बोले– अरुण बोलो, तुम इतने खेदित क्यों हो? बोलो क्या इच्छा है तुम्हारी? तुम सुज्ञ हो, आर्तध्यान को तजकर दृढ़ पुरुषार्थ धारण करो। अरुण अपना पुरुषार्थ ही अपना मार्ग प्रशस्त करेगा।

आचार्यदेव की ऐसी क्षीण देहावस्था में अरुण पर ऐसी कृपा बरसती देखकर सब धन्य–धन्य बोल उठे। स्वयं श्रेष्ठी सागरचंद्र भी गुरुदेव की अरुण पे बरसती ऐसी कृपा से गद्‌गद हुए बिना नहीं रहे। सेठानी सिद्धिदेवी भी भाव–विभोर हो उठी। आचार्यदेव के अनशन का तीसवां दिवस चल रहा था। अरुण आचार्यदेव के स्नेहसिक्त वचनामृत का पानकर अपने–आप को धन्य तो मानने लगा पर उसका अन्तर्मन रो रहा था। गुरुदेव ने पुनः फरमाया– अरुण! ऐ अरुण!! अरुण ने अपना मुंह उठाया और आचार्यदेव की ओर निहारने लगा और बोलने लगा–

(तर्ज- घर आया मेरा परदेशी...)

गुरुवर मुझ पर महर करो, भवसागर से पार करो।।टेर।।

(1) लक्ष चौरासी में भटका, मोह बंधन में फंस लटका।
अब तो इससे मुक्त करो, भवसागर से पार करो।।

(2) सत्ता सम्पत्ति नहीं चाहूं, संयम धन को बस पाऊँ।
ऐसी मुझ पर कृपा करो, भवसागर से पार करो।।

(3) बन संयमी भू पर विचरूं, पंडित-मरण को वरण करूं।
ऐसी मुझ में शक्ति भरो, भवसागर से पार करो।।

(4) गुरुवर कुछ तो फरमाओ, कृपा अरुण पर बरसाओ।
"धर्मोद्योत" मुझ मन करो, भवसागर से पार करो।।

अरुण इस गीत के माध्यम से अपनी भावना को अभिव्यक्त करते-करते इतना गमगीन हो गया कि अपनी सुधबुध ही खो बैठा और धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। देखने वालों की आंखों से भी अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। फिर थोड़ी ही देर में स्वयं उठकर गुरुदेव के चरणों में मस्तक रखकर पुनः यही कड़ियां उच्चारण करने लगा जिससे पुनः सारा वातावरण भावविभोर हो उठा। स्वयं आचार्यदेव भी अरुण की दशा देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने तत्क्षण आचार्य धर्मप्रियजी को पास बुलाया और बोले- आज क्या तिथि है? आचार्य धर्मप्रियजी बोले- भंते! वैशाख शुक्ला एकम। आचार्यदेव ने आंखें बंदकर कुछ समय के लिए मौन धारण कर ली फिर आंखें खोलकर बोले- ध्यान से सुनो, अगले वर्ष इसी वैशाख सुदी एकम को चंद्रपुरी में पहुँचना है, भूलना मत। आचार्य धर्मप्रियजी ने गुरुवचनों को श्रवणकर 'तहत्ति' तो कर दी, पर समझ कुछ नहीं पाये। न आस-पास खड़े श्रेष्ठी सागरचन्द्र व सेठानी सिद्धिदेवी और अन्य लोग भी कुछ समझ पाये। इधर अरुण आंखें फाड़-फाड़ कर गुरुदेव के चेहरे पर दृष्टि गड़ाये निहारता हुआ मानो पूछ रहा था- गुरुदेव मेरे लिए....? गुरुदेव अत्यंत धीमे स्वर से बोले- मैंने तेरा प्रबन्ध कर दिया है, समय पर सब ठीक हो जायेगा। इतना कहकर आचार्यदेव कहने लगे-

तू सोच अरे नादान अठा सूं जाणो है, थने जाणो है।
तू भजले जिन-भगवान, अगर सुख पाणो है, जी पाणो है।।
ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म है दुःख निकंदन।
धरले आंरो ध्यान, अठा सूं जाणो है, थने जाणो है....

साथ में शिवसुंदर मुनिजी व अरुण भी मधुर स्वर में गाने लगे और देखते-देखते आचार्यदेव हाथ जोड़कर अपने मस्तक पर दोनों हाथ घुमाते हुए बोले-

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ।।

और अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि कहते–कहते वचन अवरुद्ध हो गये और आंखों से दिव्य ज्योति का स्रोत प्रवाहित हुआ और कुछ ही क्षण में विलुप्त हो गया। आचार्यदेव की देह निश्चेष्ट बन गई। आचार्य धर्मप्रियजी आदि सब देखते–देखते स्तब्ध हो गये। सारा वातावरण शांत–प्रशांत बन गया। पुनः आचार्य धर्मप्रियजी महाराज ने देखा तो सब–कुछ खतम। आचार्यदेव की आत्मा तो शरीर से कूच कर गई। उसी समय सबको बाहर करके आगम विधि की प्रक्रिया के साथ चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री धर्मप्रियजी म.सा. को पाट पर बिठाकर वंदना की और आचार्य गुणचंद्रजी की पार्थिव देह को श्रावकों को वोसिरा दिया। श्रावक–श्राविकाओं ने एक स्वर्ण–रजत मंडित विमान में सजाकर उसी प्रचण्ड त्यागी जैनाश्रम में ले जाकर अंतिम संस्कार कर दिया और पुनः स्थानक में आ कर शोकसभा में श्रद्धांजलि अर्पित करके आचार्यश्री धर्मप्रियजी का मंगलपाठ श्रवण करके सभा विसर्जित हो गई।

प्रातः होते ही आचार्यश्री धर्मप्रियजी म.सा. ने कल्पमर्यादा का विचार कर, पारणादि से निवृत्त हो वहाँ से विहार कर दिया। जिनके बड़ी तपस्या थी उन संतों ने कुछ दिनों बाद विहार कर दिया। अब तो कुशस्थलपुर का स्थानक व गलियां सब सूने–सूने हो गए।



(२९)

अरुण कुछ मंजिल आचार्यश्री धर्मप्रियजी म.सा. को पहुंचाने साथ गया। फिर पिताश्री के आग्रह से पुनः कुशस्थलपुर आ गया, लेकिन उसे सब सूना–सूना लग रहा था। पिताश्री के आदेश से दुकान पर भी बैठता, पर मन नहीं लगता था। स्थानक भी जाता तो एक सामायिक व प्रतिक्रमण करके वापस निकल जाता। एक समय ऐसा था जब वहाँ से वापस आने का मन ही नहीं होता था। अब वहाँ रुकने की इच्छा ही नहीं होती। उसका मन उचटा–उचटा–सा रहने लगा। अब उसकी आंखें निहारने लगी ऐसे किसी मित्र को, जिसको पाकर वह अपने इस विषाद को कम करे, पर सोचता – मेरे बचपन के मित्र तो पहले ही छूट गये। इन गंगेशजी और शिवसुंदरजी से थोड़ा स्नेह का तार जुड़ा तो शिवसुंदरजी तो मेरे से ही प्रेरित हुए संयम की दौड़ में और मुझे ही पीछे छोड़ कर अति दूर निकल गये। अब रहे गंगेशजी – जिनकी इतने दिनों में परछाई ही नहीं दिखी। न मालूम वे किस दुनिया में खो गये। दूसरा ऐसा कोई मित्र

दिखता नहीं जो मेरा सच्चा सहृदयी बन सके। इसी उधेड़वुन में अरुण जैसे–तैसे दिन निकाल रहा था।

इधर गंगेश अपने मामा के साथ यात्रा पर गया था, जो कई दिनों बाद आज ही घर आया था। जब उसे भी सूना–सूना प्रतीत होने लगा, वह बार–बार विचार करने लगा – यह कैसे–क्या घटित हो गया? शिवसुंदर, जो शृंगार रस का पिपासु, काव्य रसिक और अय्याशी था आज वह साधु बनकर साधना के पथ पर अग्रसर हो गया और वह भी असिधारा से भी कठोर जैन मुनि के साधना पथ पर। जिसकी कभी संभावना नहीं थी। और आश्चर्य तो इस बात का हो रहा है कि जिसकी संभावना थी, वह घर बैठा है। उससे एक बार मिलकर तो आऊं। इसी भावना को लेकर वह घर से निकला और नगरश्रेष्ठी की हवेली की ओर गया। जब दुकान पर दृष्टि डाली तो अरुण नहीं दिखा तब वह एक बार तो हताश हो गया। फिर दूसरी बार सोचा, भीतर जाकर पूछूं, पर उसकी हिम्मत नहीं हुई। वह किंकर्तव्यविमूढ़–सा विचारमग्न हो गया। इतने में अन्तः प्रेरणा जगी कि शायद स्थानक में मिल सकता है क्योंकि पहले भी संध्याकालीन पूजा–पाठ करके वहीं जाया करता था और वहीं मिला था।

गंगेश उत्साही मन से स्थानक ही तरफ बढ़ा। आज उसे भी पहले आया तब जो चहलपहल लगी, वह अब कुछ नहीं थी। सारा वातावरण सूना लगा। वह हिम्मत करके भीतर गया। अरुण उसी समय सामायिक पूर्ण कर वस्त्र बदल ही रहा था कि उसकी दृष्टि गंगेश पर पड़ गई। आज कई दिनों बाद अरुण के चेहरे की गायब हंसी और प्रसन्नता पुनः लौट आई। वह बोला – गंगेशजी! अरे आप आज यहाँ कैसे? किधर से आना हुआ? अरुण के इस मधुर सम्बोधन को सुनते ही गंगेश को भारी प्रसन्नता की अनुभूति हुई। बोला – आपसे मिलने के लिए ही तो घूम रहा हूँ, पर आपके तो दर्शन ही बड़े दुर्लभ हैं क्योंकि आप ठहरे धर्मात्मा जीव और हम ठहरे मनमौजी।

अरुण भी स्थानक से बाहर आ गया और दोनों एक–दूसरे से गले मिलकर प्रसन्नता से झूम उठे। अरुण बोला – अच्छा, आपको मेरे कारण कितना कष्ट उठाना पड़ा? खैर, मुझे क्षमा करें और बतायें आप इतने दिन कहाँ गये थे? गंगेश थोड़ा चिढ़ता हुआ बोला – यह क्या आप–आप लगा रखा है – दो मित्रों के बीच। अरुण बोला – यह परस्पर का शिष्टाचार है। जव मित्रता घनिष्ठ हो जायेगी तो अपने–आप यह तू और मैं हम में परिवर्तित हो जाएगी। अब बताओ, कहाँ–कहाँ घूमकर आये? तब गंगेश बोला – मैं मामाजी के साथ तीर्थयात्रा पर अवन्ति चला गया। वहाँ अनेक शिव धामों के दर्शन किये, पर यहाँ आकर मेरी आँख मेरे शिव को खोज रही है?

अरुण कुछ समझ नहीं पाया और बोला – कौनसा तुम्हारा शिव? तब गंगेश कहने लगा – दोस्त! क्या तुम नहीं समझे मेरा वह प्राणप्यारा बालमित्र शिवसुंदर। इतना सुनते ही अरुण बोला – अच्छा, वे शिवसुंदरजी बंधु! वास्तव में वे धन्य हो गये। आचार्यदेव के हाथों से प्रव्रजित हो गये। गंगेश बोला – पर अरुण, मुझे बार–बार यह विचार आता है कि वह ऐसा रंगीला, शृंगार रस से सराबोर, फैशन का परिंदा ऐसा नीरस साधु जीवन कैसे जी रहा होगा? अरुण बोला – मित्र! उनके जीवन के बारे में तो तुम ही ज्यादा जानते हो क्योंकि तुम बालसखा हो। पर सत्संग व ज्ञान की महिमा ही अपरंपार है। जो इसमें रमण कर लेता है उसके लिए कांटे भी फूल बन जाते हैं, संसार अपार लगता है। अरुण शिवसुंदर मुनिजी का गुणकीर्तन करते–करते भावविभोर हो गया। गंगेश बड़ा समयज्ञ व चतुर था। सोचने लगा – मैंने शिव की याद दिलाकर बहुत बड़ी गलती की। कहीं यह भी उसी रंग में न रंग जाय और मेरे हाथ से यह भी न छूट जाये। इसलिए बात को मोड़ देते हुए बोला – भैया, बस बन्द करो। अब तुम्हारी भाषण कला का परिचय मैं प्रथम बार ही पा चुका। इन्हीं बातों ही बातों में अरुण की हवेली आ गई और गंगेश बोला – दोस्त, अच्छा। तुमसे मिलकर बड़ा आनंद आया। नमस्कार, अब कहाँ मिलोगे?

अरुण ने कहा – क्यों इतनी क्या जल्दी है? चलो भीतर। गंगेश तो यह चाहता ही था। अरुण उसका हाथ पकड़कर घर में ले गया। आज घर में सबको आश्चर्य हो रहा था बहुत दिनों बाद अरुण को ऐसी प्रसन्नता से बातें करते देखकर। दोनों सामने के विशाल कक्ष में बिछे गद्दों पर बैठ गये। अरुण ने पूछा – आपकी यात्रा कैसी रही? यात्रा से तो अनुभव और आनंद दोनों में वृद्धि होती है, साथ ही विभिन्न देशों की संस्कृति का भी ज्ञान होता है। पर मित्र, मेरी तो हालत गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद बड़ी विचित्र हो रही है। कहीं मन ही नहीं लग रहा हैं। मेरे बचपन के साथी तो पहले ही मेरे से दूर हट गये। जब शिवसुंदरजी और आपको देखा तो कुछ मित्रता का भाव जगा। पर शिवसुंदरजी तो कल्याण मार्ग के पथिक बन गये और तुम बाहर चले गये। मेरा मन बड़ा व्यथित था, किससे मिलकर मन हल्का करूं? बस, इसी चिंता से चिंतित और बेसुध था। आज तुम्हारे मिलने से मुझे पुनः प्रसन्नता की अनुभूति हुई।

गंगेश – मित्र, हम दोनों ही तुम्हारी मित्रता हेतु प्रयत्नशील थे, पर मन में यह संकोच पैदा हो जाता था कि कहाँ वह सुकुमार, ऐश्वर्यसम्पन्न और कहाँ हम। यह बात गंगेश ने ऐसे ट्यूनभरे लहेजे में कही कि अरुण को बलात् हंसी आ गई और गंगेश का हाथ पकड़कर कहने लगा – भैया! मैत्री संबंध तो हृदय का होता है। इसमें ये बातें क्या बाधक बन सकती हैं? बस, इस संकोच को

निकाल दो और हृदय से मैत्री सम्बन्ध जोड़कर मुझे अपना लो। ऐसा कहकर अरुण ने अपने हाथ को गंगेश के हाथ में थमा दिया और गंगेश ने अरुण को गले से लगाकर दोनों मित्रता के गाढ़ बंधन में बंध गये। दोनों किसी–न–किसी बहाने दिन में एक बार मिलते रहने का वादा किया और गंगेश प्रस्थान करने लगा।

इतने में श्रेष्ठी सागरचंद्र ने कक्ष में प्रवेश किया। आज अरुण के चेहरे पर खुशी देखकर बड़े आनंद की अनुभूति हुई और बड़े स्नेह के साथ पूछ बैठे – अरुण! ये कौन मेहमान पधारे हैं? क्या परिचय है इनका? श्रेष्ठी सागरचंद्र की यह बात सुनते ही गंगेश शर्मिन्दा होता हुआ चरणों में झुककर प्रणाम करते हुए बोला – पूज्यवर। आपने मुझे पहचाना नहीं? यह मैं गंगेश हूँ, श्री महेश्वरदत्तजी का पुत्र। यह सुनते ही श्रेष्ठी सागरचंद्र बोले – अच्छा–अच्छा। मैं तो बिल्कुल भूल गया। अब याद आया। मुनि शिवसुंदरजी और आप दोनों सहपाठी थे? गंगेश – हां–हां। पूज्यवर, आपने अब पहचान लिया। पर शिवसुंदर तो शिव पथ के अनुगामी बन गये। उसके बाद मैं इतने दिन बाहर तीर्थयात्रा हेतु मामाजी के साथ गया हुआ था। मेरे मन में अरुण से बहुत दिनों से मिलने की छटपटाहट मची हुई थी। इसीलिए मैं आज मिलने के लिए आ गया।

सागर श्रेष्ठी – वत्स! वास्तव में सच्ची मित्रता ही मन में आह्लाद उत्पन्न करती है, वह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इतने दिन से उदास अरुण आज मुझे बहुत प्रसन्न दिख रहा है। बस, अब यह प्रसन्नता हमेशा दिखती रहे, यह तुम्हारे पर ही निर्भर है। वत्स, आज से तुम इस घर को अपना ही घर समझो और निःसंकोच आया–जाया करो?

गंगेश बोला – पूज्यवर। आपकी कृपा और अरुण का स्नेह मुझे अपने–आप खींच लायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। बस, अब आज्ञा चाहता हूँ प्रस्थान की। इतना कहकर गंगेश बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ अपने घर की ओर प्रस्थान कर गया।



(३०)

गंगेश की मित्रता और वार्ता से आज अरुण प्रसन्न था, जो उसके चेहरे से साफ झलक रहा था। भोजनादि से निवृत्ति के बाद वह अपने कक्ष में गया तो गंगेश की बातों का चिंतन करते–करते उसको कब निद्रा लग गई, कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। सारी रात्रि मानों गंगेश के साथ ही बिताई हो, ऐसा प्रतीत हो रहा था। आज वह अपनी दैनिकचर्यारूप सोने के पहले नियमित रूप से

महामंत्र का स्मरण, प्रार्थना, वंदन सब–कुछ भूल गया था। प्रातः उठा तो भी गंगेश की यादों में ही खोया हुआ उठा। उधर गंगेश का भी वही हाल था। वह भी उठा और अपने आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर घर से चलकर पहुंच गया अरुण के घर। अब वहां उसको आने में किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ। साथ ही परिवार वालों को भी प्रसन्नता ही हुई कि गंगेश से मिलने के बाद उसकी उदासी कम हो रही है। वह अब कुछ पुनः हंसने–मुस्कराने भी लगा है।

सबने गंगेश का बड़े प्रेम से स्वागत किया और सब से पहले भाभी प्रभावती बोली – भैया गंगेशजी, अरुणजी तो ऊपर अपने कक्ष में ही होंगे। शायद उठे या नहीं, आप ही ऊपर चले जाइये। अरुण की भाभी का बातचीत का ढंग भी गंगेश को बड़ा प्यारा लगा और बोला – अच्छा भाभीजी, मैं ही ऊपर चला जाता हूँ। गंगेश दुबके पांव से कक्ष में पहुंचा तो देखा – अरुण करवट बदल कर लेटे–लेटे कुछ चिंतन कर रहा था। वह चुपचाप पीछे से जाकर अरुण की आंखें अपने दोनों हाथों से बंद करके चुपचाप खड़ा हो गया। अरुण एकदम गड़बड़ाता हुआ बोला –कौन है? इस प्रकार कहते हुए अरुण उन हाथों को पूरा जोर लगाकर हटाने लगा तब ठहाका मारते हुए गंगेश ने अपने हाथ ढीले किये। तब कहीं! वह समझ पाया कि यह तो मित्र गंगेश है। क्या दोस्त, तुमने भी कमाल कर दिया मैं तो तुम्हें याद कर ही रहा था इतनी देर से और अच्छा हुआ कि तुम आ गये। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई तुम को पाकर।

तब गंगेश बोला – दोस्त, रहने दे इन सब बातों को। क्या मैं इतना ही नहीं समझता हूँ। क्या कभी कोई मित्र की याद में इतना भावशून्य हो जाता है कि कोई पास में आ जाये तो भी मालूँम नहीं पड़े। मैंने तेरे मन के चोर को पकड़ लिया है। वह चोर है तेरे भीतर समाई हुई भीतरी शून्यता, जिसे तू भी पकड़ नहीं पाया है लेकिन वह अंदर ही अंदर तेरे मन को बेचैन बना रही है।

अरुण बोला – गंगेश क्या बताऊं, मेरे अंतर में जब से बस, आनंद और ज्योति ने मेरे से मुंह मोड़ा तब से ही ऐसी शून्यता समा गई है जिसकी कुछ पूर्ति तुम्हारे प्रथम मिलन से पुनः झंकृत हो उठी। गंगेश बोला – दोस्त अरुण! बस, आनंद और ज्योति तुम्हारे क्या पहले हमारे भी मित्र थे, वे तो पूरे रसिक जीव थे। पर विचारक नहीं थे। तुम विचारक हो परन्तु तुममें रसिकता नहीं है। इससे तुम्हारे मन में शून्यता, अपूर्णता तुम्हारी हृदयतन्त्री को झंकृत करती रहती हैं। अरुण गंगेश की बात से एकदम चमक उठा। उसकी एक–एक बात मानों आकर्षण पैदा कर रही थी। वह बोल पड़ा – गंगेश, रसिकता क्या होती है, यह मैं नहीं जानता। नरादित्य और गुरुदत्त ने उन प्रचंडमुनिजी की दीक्षा के समय जो दृश्य प्रस्तुत किया था, प्रचंड एवं प्रियावती का, उससे मेरे शरीर में कुछ

रोमांच हुआ था, पर बाद में मुझे वह जीवन का एक विकार ही लगा। बस, इतना ही मुझे अनुभव है। पर मेरा मन अवश्य व्यथित रहता है। साथ ही मैं ऐसा भी अनुभव करता हूँ कि वह व्यथा ही मेरे मन में शून्यता उत्पन्न कर देती है और गुरुदेव के वियोग के बाद और अधिक बढ़ गई। प्रिय मित्र, मैं रात–दिन सोचता रहता हूँ कि वह शून्यता कैसे भरे? बहुत दिमाग दौड़ाता हूँ पर कोई उपाय ही समझ नहीं आता। मैं इसी के बारे में सोचते–सोचते और अधिक परेशान हो जाता हूँ। अब मैंने तेरे से मित्रता जोड़ी है। वह इसी आशा और विश्वास के साथ कि तुम सुज्ञ, चिंतनशील और हर कार्य में कुशल हो। अब तुम्हीं मेरी इस व्यथा से मुक्ति दिला सकते हो क्योंकि तुम्हारे सिवा मेरे मन में विश्वस्तता पैदा करने वाला और कौन है जिसके पास मैं अपने मन की व्यथा प्रगट कर सकूं। क्योंकि हरेक के पास मन की व्यथा रखने से वह बढ़ने वाली होती है, पर घट नहीं सकती। इतना कहते–कहते अरुण बहुत गमगीन–सा हो गया।

गंगेश ने अरुण का हाथ अपने हाथ में लिया और उसको सहलाते–सहलाते बोलने लगा – मित्र, मैं जानता हूँ इस पीड़ा का रहस्य और उपाय। इस व्यथा का मूल कारण शरीर का धर्म और वय का तकाजा है, जो अपना प्रभाव दिखाते हैं। साथ ही हम जिस वातावरण में जी रहे हैं, जहाँ चारों तरफ रसिकों की रसिकता की ही लहर चल रही है, जिसकी उपेक्षा करके हम उसी वातावरण में रहकर भी शांति से जीना चाहें, यह संभव नहीं। जैन दर्शन अतिनैतिक है। उस सिद्धांतमय जीने वाले के लिए तो शांतिदायक सुखदायक जीवन तभी जीया जा सकता है कि या तो संसार से पूर्ण विरक्त बनकर शिवसुंदर मुनिजी की तरह दृढ़ता से संयम–जीवन स्वीकार कर लें। बोल, क्या तेरा मनोबल इतना दृढ़ है? जरा अपने दिल से सोच कर स्पष्ट बता।

गंगेश के हाथ का स्पर्श अरुण को जितना आनंददायक लग रहा था, उससे भी अधिक उसका विचार, जिसको सुनकर एक बार तो सकपका गया और सोचने लगा – इसने तो मेरी दुःखती रग को पकड़कर दबाया है, पर व्यथा से मुक्त होना है तो कुछ बताना ही होगा। ऐसा सोचकर बोला – प्रिय मित्र गंगेश! क्या बताऊँ, मेरे मन की बात तो तू खुद ही जानता है कि यदि इतना मनोबल मजबूत हो जाता तो क्या मैं शिवसुंदरजी से पीछे रहता? जब भी मैं अर्ज करता तो गुरुदेव भी एक ही उत्तर फरमाते – अरुण! तुम अपने भीतर झांको। और आज तू भी यही बता रहा है और वास्तव में जब मैं अपने मन को टटोलता हूँ तो अभी तक मन इतना दृढ़ संकल्पित भी नहीं बन रहा है।

गंगेश उसके हाथ को जोर से दबाते हुए बोला – मित्र अरुण, पकड़ में आ गई तेरी मनोव्यथा की जड़। और यह तो गुरुदेव ने उस दिन भी चर्चा

में स्पष्ट बताया था कि उस स्टेज तक पहुंचने में दृढ़ संकल्प एवं पुरुषार्थ से भी बढ़कर है चारित्रमोह का क्षयोपशम। यह तुम्हारी जैन दर्शन की शास्त्रीय भाषा क्या है उसको पूर्ण रूप से तो मैं समझ नहीं पाया हूँ फिर भी इतना जरूर समझ पाया हूँ कि जब तक उस रूप में भाग्योदय नहीं होता, तब तक सफलता नहीं मिल सकती। क्या यही उसका गूढ़ार्थ है?

अरुण गंगेश की बात से सहमत होता हुआ बोला – मित्रवर! तुम्हारा चिंतन बिल्कुल यथार्थ है। तुमने उसका अनुकूल अर्थ ही लिया है। अब तू ही बता कि अब दूसरा उपाय क्या है जिससे मुझे इस व्यथा से मुक्ति मिले? गंगेश योग्य अवसर देखकर बोला – मित्र अरुण! उसका दूसरा उपाय तो यही है कि मन में यह सोचकर धैर्य धरो कि उस स्टेज तक तो जब पुण्योदय होगा तब पहुंचने से कोई शक्ति रोक न सकेगी पर जब तक उस स्टेज तक नहीं पहुंच सकें तब तक हम इस जीवन को प्रसन्नता के साथ में जीएं। इसका यह तात्पर्य मत समझना कि हम स्वच्छंदवृत्ति अपनालें। मेरा तो इतना ही आशय है कि अपनी अपनी गृह–परिस्थिति के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीयें जिससे हमको भी अपना जीवन जीने का आनन्द आवे और पारिवारिक सदस्यों को भी। इतनी बात करके गंगेश वहाँ से उठकर अपने घर की ओर प्रस्थान कर गया।



(३१)

अरुण को गंगेश के साथ मित्रता जोड़ने के बाद कुछ शांति का अनुभव हो रहा था और दिन भी हंसी–खुशी में निकलने लगे। अब उसका मन व्यथाओं से मुक्त बनकर श्रावकोचित आवश्यक प्रवृत्ति, रात्रि–भोजन त्याग, सामायिक प्रतिक्रमण के साथ चौदह नियम और पर्व–तिथियों में पोरसी आदि शक्त्यानुसार तप–आराधना करता रहता। अब पहले की तरह पिताश्री का भी जो कठोर नियंत्रण था, वह नहीं रहा। एक तरह से सब–कुछ सामान्य हो गया था।

अष्टमी का प्रसंग था इसलिए अरुण को पोरसी पच्चक्खनी थी। मां सिद्धिदेवी भी आज अष्टमी होने से सुबह से ही पांच सामायिक लेकर स्वाध्याय प्रार्थना आदि में तन्मय बनी हुई थी। अरुण सामायिक करके स्थानक से आया ही था कि सामने प्रभावती भाभी मिल गई। अरुण उसको नमस्कार करके ऊपर की ओर अपने कक्ष में जाने लगा तो बड़े मधुर शब्दों में बोली – लालजी! आप ऊपर कहाँ जा रहे हैं, क्या कुछ खाना–पीना नहीं है? मैं कितनी देर से आपकी ही इंतजार में खड़ी हूँ। अरुण भी यह जानता तो था कि घर में मां के अलावा यह प्रभावती भाभी ही हैं जो मेरी हर बात ही चिंता करती हैं और मेरे खान–पान

का पूरा ध्यान रखती हैं। जब तक मैं निवृत्त नहीं होऊँ तब तक उसे चैन नहीं पड़ती है। फिर भी अरुण बोल पड़ा – भाभी, आप मेरे लिए इतनी परेशान क्यों होती हैं? क्या अव भी मैं बच्चा हूँ? अरुण के इस उत्तर से तो वह और ज्यादा परेशान बनकर कहने लगी – वाह–वाह! यह भी कोई बात है। अब बड़े जरूर हो गये, लेकिन पराये तो नहीं बने हो। पराये तो तब समझूंगी जब किसी रूप सलोनी देवरानी के हाथों बंध जाओगे। फिर मैं सारी चिंताओं से मुक्त हो जाऊँगी।

इतना सुनते ही तो अरुण के चेहरे पर लज्जा की लालिमा छा गई और बोल पड़ा – भाभी, तुम तो....। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आज अष्टमी को मेरे पौरसी रहती है। यह कहता हुआ अरुण ऊपर चढ़ गया। भांभी कहने लगी – अच्छा, पौरसी आते ही जल्दी आना। तब तक मैं भी नाश्ता नहीं करूंगी। अरुण जो आज्ञा कहते हुए अपने कक्ष में पहुंच गया और शारीरिक निवृत्ति करके नीचे आया। इधर सिद्धिदेवी भी पहुँच गई थी। अरुण ने नमस्कार किया। मां आशीर्वाद के साथ बोली – बेटा! नाश्ता कर लिया या नहीं? अरुण बोला – मां! आज अष्टमी थी इसलिए पौरसी पचख ली थी, जो अब आई है और आप के भी सामायिक आ गई।

अच्छा वत्स, चलो अब अपने दोनों साथ ही नाश्ता कर लेते हैं।

अरुण बोला – भाभी ने भी तो नहीं किया हैं।

अच्छा? क्यों क्या बात है? क्या उसने भी शायद तेरे कारण पौरसी कर ली हो क्योंकि तू जानता ही है कि वह मेरे से भी तेरी चिंता ज्यादा रखती है।

हां, मां! यह बात तो ठीक है।

इतने में मां बोली – बेटा, ले आज जल्दी से नाश्ते से निवृत्त होकर तैयार हो जा। अभी गंगेश तुझे बुलाने आया था अपने घर ले जाने हेतु। लेकिन तू स्थानक में था इसलिए यह निमंत्रण दे के गया कि उसको जल्दी भेजना, आज का भोजन उसका मेरे वहीं होगा।

मां, आज क्या कोई विशेष बात बताई उसने जो मुझे भोजन का आग्रह करके गया।

तब माँ सिंद्धिदेवी बोली – हां बेटा! आज गंगेश की शादी का मुहूर्त है। इसलिए तुझे अभी ही जाना है।

अरुण बोला – अच्छा, अच्छा, मैं अभी पहुंचता हूँ। इतना कहकर वह जल्दी–जल्दी नाश्ता करने लगा। इसी बीच भाभी प्रभावती वोली – मां! इन छोटे लालजी की शादी कब कर रही हैं आप? इतना सुनते ही तो अरुण झेंप गया और बोला – मम्मी! जब देखो तब भाभी ऐसे–वैसे ताने मारती रहती हैं।

लगता है मेरी चिंता करते–करते यह परेशान हो गई हैं मानों मैं इन पर भार बन रहा हूँ। सिद्धिदेवी बोली – बहू! यह तो समय पर जो होना होगा, वह सब होगा। वैसे कई बड़े–बड़े घरानों के सम्बन्ध आ रहे हैं और मेरी भी यही तमन्ना है कि अब एक यह शेष कार्य पूरा हो जाय तब तक तो तुमको ही इसकी चिंता रखनी होगी, फिर भले मुक्त हो जाना। यह सुनते ही प्रभावती भाभी अपने हाथ में ग्रास लेकर अरुण के मुंह में ठूंसने लगी और बोली – मम्मी! आप कहती हो मुक्त हो जाना। पर तब तो मैं और ज्यादा परेशान हो जाऊंगी क्योंकि अभी तो एक मेरे लालजी को ही खुश रखना पड़ता है, फिर तो उसकी भी चिंता करनी पड़ेगी।

अरुण भाभी की इन बातों से ऊपरी खीझ बताता हुआ उठकर अपने कक्ष में चला गया और कपड़े बदलकर रवाना हो गया गंगेश के घर की ओर।



(३२)

अरुण रास्ते–भर मां और भाभी की बातों का चिंतन करते हुए रथ में जा रहा था और सोच रहा था कि आखिर माता और भाभी यही चाहती हैं कि मेरा विवाह हो जाय। मां कह रही थी कि बस यह एक उत्तरदायित्व पूरा हो जाये तो मैं पूर्ण रूप से अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाऊं। सब भाई अपने उत्तरदायित्व का वहन करते हुए अपने–अपने परिवार की व्यवस्था संभाल लें और अपना–अपना व्यापार और हिस्सा भी। क्या वास्तव में माता–पिता का यही बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है संतान के प्रति? अरुण अपने मन से ही प्रश्न उठाता हुआ मन से ही समाधान कर रहा था कि वास्तव में माता–पिता का यही सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है कि संतान को सुशिक्षित करके वयस्क होने के बाद योग्य कन्या से विवाह करके उसको अपने हिस्से के धन–वैभव को देकर अपने कर्तव्य को पूरा कर दें। इसके अलावा यदि संतान का अपना कोई अलग लक्ष्य हो तो वह अपने दृढ़ निश्चय को माता–पिता के सामने रखकर उनकी सहमति प्राप्त कर सकता है। चाहे फिर वह दीक्षा का या अन्य कोई भी लक्ष्य हो। मेरी यही मूल की भूल मुझे उलझन में डालने वाली अभी तक बनी हुई है कि मैंने गुरुदेव के चरणों में संयम की भावना कई बार व्यक्त की, पर माता–पिता के सामने अभी तक मैं व्यक्त करने का दृढ़ मनोबल नहीं जुटा पा रहा हूँ तो उनका दोष ही क्या है? उनको तो अपने कर्तव्यपालन की चिंता रहना स्वाभाविक है। खैर, अब ज्यादा उलझन में न पड़कर स्व–पर जीवन को व्यथित क्यों करूं? जो होगा, वह समय पर देखा जाएगा।

ऐसा चिंतन करता हुआ अरुण गंगेश के घर पहुँच गया। ज्योंही अरुण ने रथ से उतर कर घर में प्रवेश किया तो देखा – वहाँ महिलाएँ गीत गा रही थीं और गंगेश का उबटन चल रहा था। उस समय गंगेश का वह हृष्ट–पुष्ट शरीर स्वर्ण के समान देदीप्यमान हो रहा था। उसके अंग–अंग से यौवन टपक रहा था। उसके नयनकमल खिल रहे थे। उसके चेहरे पर अपूर्व उत्साह व हर्ष प्रगट हो रहा था मानों आज उसे कोई महान् उपलब्धि होने वाली हो, मानों कोई बहुत बड़ी विजय–पताका फहराने को उद्यत हो रहा हो। अरुण टकटकी से गंगेश को निहार रहा था। इतने में गंगेश की दृष्टि अरुण पर पड़ी, तो वह तत्क्षण उठ पड़ा और अरुण से हाथ मिलाने को तत्पर होने लगा त्योंही अरुण संभलता हुआ पीछे हटा और कहने लगा – यार! पहले नहा–धोकर तैयार हो जाओ। मैं यहीं खड़ा हूँ। कहीं तेरा यह हल्दी का रंग मेरे लग जायेगा। इतने में गंगेश पास ही आ गया और यह कहते हुए अपने हाथ अरुण के चेहरे पर फेर ही दिये मजाक–मजाक में – यदि मेरा रंग मेरे मित्र के नहीं लगेगा तो किसके लगेगा? उस समय अरुण को गंगेश का स्पर्श मनमोहक लगा। उसने अपने चेहरे को साफ करते हुए कहा – जल्दी से पहले स्नान कर ले। मैं आज यहीं हूँ।

गंगेश के कथनानुसार अरुण उसके कक्ष में जाकर बैठ गया और उसके कक्ष को निहारने लगा। वहाँ चारों ओर मादकता ही मादकता प्रस्फुटित हो रही थी। एक–एक वस्तु अन्तर्हृदय की सुषुप्त वासना को उद्दीप्त करने वाली थी। इतने में तो गंगेश नहा–धोकर कक्ष में आ गया और नये वस्त्राभूषणों से सज्जित होने लगा और कहने लगा – अरुण! आज तो मैं निहाल हो गया तुझे पाकर। मेरी निराशा को आशा में परिणत कर दिया तूने। मैं तो सोच रहा था कि वह शायद ही आये।

अरुण बोला – मित्र! यह तुमने क्यों सोच लिया कि वह नहीं आएगा? गंगेश बोला –भैया अरुण! क्या बताऊँ – तुम ठहरे उदासीन योगी। अरुण बोला – मित्र, भले मैं उदासीन हूँ, पर तुम्हारा मित्र तो हूँ। मित्र की मित्रता निभाना तो मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। फिर यह आशंका तुम्हारे मन में क्यों पैदा हुई? क्या अभी भी तुम्हारे मन में अपनी मित्रता के प्रति संशय है? गंगेश बोला – मित्र! संशय तो लेशमात्र भी नहीं, पर यह सोचकर कि तुम विवाह को पाप मानते हो।

अरुण बोला – गंगेश! यह मैंने कब कहा कि मैं विवाह को पाप मानता हूँ। गंगेश बोला – मुँह से नहीं तो आचरण से तो यह महसूस होता है। अरुण बोला – भैया! मैं अपेक्षा से विवाह को अनावश्यक जरूर मानता हूँ। क्योंकि

जिसने अब्रह्म पर नियंत्रण कर लिया है उसके लिए विवाह आवश्यक नहीं है, लेकिन जो अपने पर नियंत्रण नहीं कर सकता वह स्वच्छंद पशुवृत्ति–सा जीवन जीने के बजाय एकनिष्ठ पत्नीव्रत को समाज की साक्षीपूर्वक स्वीकार करके एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपने–आप को नियोजित करके सामाजिक व्यवस्था को पावन–पवित्र बनाये रखे। इस अपेक्षा से विवाह एक पुनीत कार्य भी हो सकता है।

गंगेश अरुण की बात पर कुछ खीझता हुआ बोलने लगा – अरुण! मुझे तो तुम्हारे इस अपेक्षावाद की खेंचतान कुछ समझ में नहीं आती जबकि विवाह वास्तव में जीवन का वह आनंद द्वार है जो दो व्यक्तियों के मंगल मिलन का प्रसंग पैदा करता है। विवाह प्रेम का वह कुंभ है जिस महातीर्थ में डुबकी लगाकर दो व्याकुल आत्माएं उस व्याकुलता से मुक्ति प्राप्त करती हैं और नई सृष्टि का द्वार खोलती हैं। दो अपूर्ण व्यक्ति पूर्णता का अनुभव करते हैं। मित्र, जरा तुम भी अपने हृदय को टटोलो – उसमें क्या धड़क रहा है? मित्र, जरा सच बोल, क्या तू इसके लिए व्याकुल नहीं है?

इस बात पर अरुण बोल पड़ा – यार! इस समय तुम मेरे हृदय को क्या जानो? जो अपने मन में है उसी के आधार पर तुम मेरे मन को भी देख रहे हो क्योंकि व्यक्ति जैसा चश्मा लगाकर देखता है वैसा ही सामने वाला दिखता है। पुनः गंगेश उसकी आंखों में झांकता हुआ बोला – देख अरुण; मेरे से मत छिपा। मैं तेरे मन में बसे शून्य को अपने अनुभव से स्पष्ट देख रहा हूँ जो तुझे व्याकुल बना रहा है। बोल – वह क्या है? तूने उसे कभी समझा? क्या कभी सोचा?

गंगेश का एक–एक शब्द अरुण को अभिभूत कर रहा था। फिर भी बोला– मित्र, तुम तो आज ऐसी बातें कर रहे हो मानो सर्वज्ञ बन गये हो। गंगेश बोला– मैं सर्वज्ञ हूँ या नहीं, पर यह बताओ कि मैं जो बोल रहा हूँ वह सत्य है या नहीं है? अरुण गंगेश की बात पर चुप हो गया तब गंगेश बोला– दोस्त! याद रखो, इस प्रकार अपने–आप की अवहेलना ठीक नहीं है। तेरा शरीर भी तो मेरे जैसा ही है। जरा सोच – क्या आज जैसी प्रसन्नता मुझमें पहले कभी देखी, जो चाहने पर भी नहीं आती थी। गंगेश की बात सुनकर अरुण बोला– मित्र! बात तो तुम्हारी यथार्थ है। वास्तव में मुझे भी आश्चर्य होता है कि तुम आज इतने प्रसन्न और भावविभोर लग रहे हो मानो तुम जीवन में कोई महान कार्य करने को तत्पर हो। गंगेश बोला– अरुण! जरा तुम ही सोचो– अपूर्णता में पूर्णता का वरण करना – इससे महान और कोई कार्य हो सकता है? क्या

जिनको हम अपना आराध्य मानते हैं उन शिव ने पार्वती को पा, राम ने सीता को पा, महावीर ने यशोदा को पाकर पूर्णता का वरण नहीं किया?

अरुण टकटकी लगाकर गंगेश की बात सुन रहा था और उसके चेहरे पर छलकती खुशी की लहर को। मानो आज वह किसी स्वप्नलोक में ही बोल रहा हो। वह कह रहा है – अरुण! अब मेरा शून्य भर रहा है। गंगेश इन भावों को व्यक्त करते हुए अपनी दृढ़ आस्था प्रगट कर रहा था। आगे बोलते–बोलते बोलने लगा– अरुण! पति–पत्नी का मिलन मधु है। उसको पाने में जो आनन्द है, वह पाकर ही अनुभव किया जा सकता है। साथ ही कहने लगा– तुम भी इसके बारे में थोड़ा गहराई से सोचना। मुझे विश्वास है कि तुझे भी इस सत्य की अनुभूति होगी। इस प्रकार गंगेश के स्वभाव और बातों से अरुण की अंतर्वीणा के तार झंकृत हो उठे। वह संमोहक दृष्टि से उसकी ओर निहार रहा था। इतने में विवाह सम्बन्धी आगे के कार्यक्रम हेतु गंगेश को बुलाया गया। गंगेश उठा और अरुण को भी हाथ पकड़कर अपने साथ ले गया। वहां अरुण प्रत्येक क्रिया–कलाप को ध्यानपूर्वक देखने लगा– साथ ही गंगेश के उल्लास को भी। इधर गंगेश भी हर क्रिया के साथ अरुण की अन्तर्वीणा के तारों को झनकार रहा था जिससे अरुण अज्ञात विचारसागर में गहरे गोते खाने लग गया। साथ ही उस दिन की कार्य निवृत्ति के साथ ही अरुण ने गंगेश से घर जाने की आज्ञा मांगी। गंगेश बोला– अरुण! कल सुबह तू एक बार जरूर आ जाना। अरुण बोला– भैया! मौका देखकर जरूर आने की कोशिश करूंगा। कहकर निकल गया गंगेश के घर से।

अपने घर में प्रवेश करके अरुण सोपान चढ़ रहा था। उसका मन गंगेश के उत्साह, उमंग एवं उसकी बातों की स्मृतियों में ही उलझ रहा था। साथ ही अपने मन में प्रवेश पाती वासना के झूले में भी झूल रहा था। इतने में उसके कान में माता–पिता के शब्द सुनाई पड़े, जो भीतरी कक्ष में बात कर रहे थे। श्रेष्ठी सागरचंद बोल रहे थे– अरुण की मां, मुझे कुछ समझ ही नहीं आ रहा है कि क्या करूं, क्या नहीं? सिद्धिदेवी बोली– क्यों, क्या बात हुई, जरा बताओ तो सही। सागर श्रेष्ठी– क्या बताऊँ, बड़ी समस्या में उलझा हुआ हूँ, एक तरफ तो मेरा साथी सूरजचंद अपनी पुत्री भुवनेश्वरी से अरुण की सगाई हेतु स्वीकृति मांग रहा है, दूसरी तरफ छोटी बहू के काकाजी, मझली बहू के फूफाजी, बड़ी बहू के मामाजी, मौसाजी अपनी–अपनी कन्या के लिए आग्रह कर रहे हैं। अब किसका मन रखूं, किसका नहीं रखूं?

सिद्धिदेवी मुस्कराती हुई कहने लगी– इसमें उलझने की क्या बात है? आपका सबसे छोटा और प्राणों का प्यारा है अरुण। तो सबको स्वीकृ...

ना। सागर श्रेष्ठी तुनककर बोले– वाह, वाह कैसी बात करती हो तुम भी? तुमने तो उसको पूरा धर्मात्मा बना रखा है। सबकी छोड़ो, एक के लिए तो तैयार कर लो तो भी मेरी सारी उलझन मिट जाएगी।

सिद्धिदेवी– अच्छा, अच्छा। मैंने उसे धर्मात्मा बनाया है तो आप उसे समझाकर बांध लो किसी के बंधन में।

श्रेष्ठी सागर बोला– तुमको तो हर बात उलझाने में ही आनंद आता है। यह तो नहीं कि उसकी मनोभावना को जानने का प्रयत्न करूं। पर तुम्हारे मन में तो और ही चल रहा है।

सिद्धिदेवी– हां, हां! कह दो ना कि मैं तो उसको दीक्षा दिलाना चाहती हूँ।

सागर श्रेष्ठी– और क्या, नहीं कहूं तो क्या हुआ– तुम्हारे भाव तो ऐसे ही लगते हैं। शिवसुंदरजी की दीक्षा के प्रसंग से भी कह रही थी, धन्य है गाथापतिजी को, जिन्होंने गुरु के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा का परिचय दिया और यह भी तुमने नहीं कहा क्या कि अपनी चार संतानों में से यदि एक भी दीक्षा ले लेवे तो अपना परिवार कितना धन्य हो जाय?

सिद्धिदेवी– इसका क्या मतलब, जो सम्यग्दृष्टि आत्मा होगी उसका तो ऐसा चिंतन होना स्वाभाविक है। होना या नहीं होना भवितव्यता पर निर्भर है। मेरी चाह–मात्र से क्या अरुण दीक्षा ले लेगा और नहीं चाहने–मात्र से यदि उसका भाव दृढ़ हो गया तो रुक जायेगा? धार्मिक भावना अपनी जगह है और सांसारिक कर्तव्य अपनी जगह हैं। क्या मैं नहीं चाहती हूँ कि अरुण अब युवा हो गया है, जल्दी से उसका विवाह सम्पन्न करके निज उत्तरदायित्व से निवृत्त हो जावें?

सागर सेठ– हां, अब कही मेरे मन की बात। ऐसी ही खाली टेढी–मेढी बातों से कैसे समस्या सुलझेगी। बात ऐसी बताओ जिससे अपने ऊपर आई यह बड़ी समस्या सुलझ जाय और अपन तनावमुक्त हो जावें।

सिद्धिदेवी– पतिदेव! या तो आप उससे ही पूछ लें या फिर लड़कियों के चित्र मंगवाकर गंगेश आदि के माध्यम से दिखा दिये जायं। फिर जिसको पसंद करे उससे संबंध करना ही रहा।

सागरचंद– हां, हां, यह तो तूने पते की बात कही। इससे काम भी बन सकता है और अपने ऊपर भी बात नहीं रहेगी, जिससे न कोई प्रसन्न होवे, ना नाराज। यह भी अच्छी बात रही कि कल ही मेरे पास चित्र भी पहुंच गये हैं। कहाँ है अरुण?

सिद्धिदेवी बोली– वह गंगेश के यहाँ गया हुआ है क्योंकि उसकी शादी का आज कार्यक्रम प्रारंभ हुआ है और आजकल वह उससे घुलमिल भी इतना

गया है कि आप खुद ही देखिये, पहले कभी ऐसे कार्यों से सदा दूर ही भागता था और आज तो सवेरे से गया है जो अभी तक नहीं आया। मन कहता है, शायद वहां के रंग में रम गया है।

इस प्रकार अरुण माता–पिता की बातों को सुनते हुए चिंतन करने लगा – वास्तव में यह आश्चर्य ही है कि एक वैरागी राग के वातावरण में कैसे रम गया? यह गंगेश भी बड़ा दार्शनिक निकला। उसके विचार मुझे भी कुछ यथार्थ लगे। उसने मेरे भीतर के भावों को उद्वेलित कर दिया है। ऐसा चिंतन करते–करते वह होश में आया और सोचा– अब यहाँ से हट जाना ही उचित है। वह वहां से तुरंत खिसक गया और दबे पांवों दूसरे रास्ते से अपने कक्ष में जाने लगा। इतने में तो बड़ी भाभी प्रभावती सामने आ गई और बोली– अच्छा लालजी, आज तो अपने सखा के विवाह कार्यों में ऐसे रम गये कि अब घर आ रहे हैं। यह ठीक हुआ, नहीं तो यहाँ बैठे आकाश में आंखें फाड़ते रहते और उसासें छोड़ते रहते। कम से कम विवाह का कैसा आनन्द होता है, यह समझने का मौका तो मिला होगा और कुछ अपने बारे में भी तो सोचा होगा? क्योंकि बेचारे श्वसुरजी किसको–किसको उत्तर देते रहेंगे। यह उनके सामने कैसी भारी उलझन खड़ी कर दी है तुमने। उसको अब तो सुलझाना ही होगा।

अरुण– कौनसी उलझन?

भाभी– कौनसी क्या, विवाह की। तुम्हीं बताओ, क्या तुमने विवाह नहीं करने का पक्का निश्चय कर लिया है?

अरुण– बस भाभी, हर समय तुमने यह क्या रट लगा रखी है। क्या और कोई बात का विषय ही नहीं है। बस, जैसे कोई आज का आज विवाह निश्चित हो रहा है।

भाभी– बस, बस मिल गया उत्तर। इससे स्पष्ट हो गया है कि आपने शादी करने का त्याग तो नहीं किया है। सिर्फ विचारों में उलझ रहे हो – किससे विवाह करना, न मालूम वह कैसी निकलेगी और यह यथार्थ भी है क्योंकि आप पढ़े–लिखे ग्रेज्युएट जो हैं।

अरुण भाभी की बात सुनकर एकदम झल्लाता हुआ जोर से बोल पड़ा– भाभी! आप तो मानो सर्वज्ञ हो जो मेरे मन की सब बातें जानती हो, मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ, आप मुझे तंग मत करें।

भाभी– इसमें क्या? मैं तंग करूंगी तो भी फायदे में ही रहूंगी क्योंकि मेरे एक छोटी देवरानी जो आएगी लालजी। आप संकुचित मत होइये– ऊपर पधारिये अपने कक्ष में। मैं अभी उपाय करती हूँ आपकी उलझन को सुलझाने का। इतना कहकर वह अंदर चली गई और अरुण अपने कक्ष में। थका

था ही – कपड़े बदलकर अपनी शय्या पर लंबा हो गया, थोड़ी आंख मिली भी तो नींद में भी सारी रात उसे गंगेश और उसकी उत्साह–उमंगभरी बातें ही दीखती रहीं। प्रातः उठा और अपनी शारीरिक निवृत्ति के पश्चात सोचा– प्रार्थना की पुस्तक लेकर कम से कम प्रातःकालीन प्रार्थना तो कर लूं। इसलिए वह ज्योंही पुस्तक ढूंढने लगा तो अकस्मात् उसमें उसे कुछ युवतियों के चित्र मिल गये, चित्र क्या थे मानो कोई अप्सराएँ ही हों। वह सबको टकटकी लगाकर निहार रहा था। इधर पीछे आड़ में छिपकर उसकी बड़ी भाभी प्रभावती उसके हावभावों को देख रही थी, लेकिन वह अनभिज्ञ था। सब चित्रों को देखकर रखता जा रहा था लेकिन प्रभावती ने देखा उसकी मौसी की लड़की स्वयंप्रभा का चित्र उसके हाथ आया तो उसको उठाकर वह बार–बार टकटकी से निहार रहा है। भाभी ने सोचा कि स्वयंप्रभा पर अरुण की दृष्टि कुछ स्थिर बनी है। वह मौका पाकर वहां से हट गई। अरुण जल्दी से उठा और नाश्ता करके चला गया गंगेश के घर।



(३३)

ज्योंही अरुण ने गंगेश के घर में प्रवेश किया, त्यों ही उसे गंगेश के पिताजी श्री महेश्वरदत्तजी मिल गये। अरुण ने उनके चरणों में नमन किया और बोला– फरमाइये, मेरे लायक कोई कार्य। महेश्वरदत्तजी उसके सिर पर स्नेह से हाथ फिराते हुए बोले– बेटा! बाकी तो सारा कार्य हो ही रहा है। बस, तुमको तो सभामंडप अपनी देखरेख में सजवाना है क्योंकि तुम गंगेश की इच्छा के साथ इस कला में निपुण भी हो।

अच्छा पूज्यवर, कहकर वह गंगेश के पास गया। वह उसे स्नेह से बांहों में भरते हुए बोला– अरुण! कितनी देर से आया, यार। मैं तेरा इंतजार करते–करते थक गया। अभी तक नाश्ता भी नहीं किया। ले बैठ, अपन नाश्ता कर लेते हैं। अरुण बोला– मैं करके आया हूँ, तुम कर लो। पर गंगेश कब मानने वाला था। उसने उसे हाथ पकड़कर साथ बिठा ही लिया और जबरदस्ती अपने हाथ से मिठाई का पीस अरुण के मुंह में डालने लगा।

अरुण बोला– मित्र! एक–दो दिन तक मेरी इंतजार कर ले और मेरे मुंह में अपना हाथ डाल दे, फिर तो यह हाथ भाभी की ओर ही बढ़ेंगे, हम कहाँ याद आवेंगे? इस प्रकार विनोदभरी मुस्कान से मुस्कराने लगा जिसे देखकर गंगेश का मन हर्षित हुए बिना नहीं रहा और सोचने लगा– मेरा प्रयत्न सार्थक हो रहा है। इधर अरुण जल्दी से उठकर जाने लगा तो गंगेश बोला– कहाँ जा रहा है? यहीं बैठा रह। तेरे बिना मेरा मन नहीं लगता है।

भैया, अभी मुझे मेरा काम देखना है जो तुम्हारे पिताश्री ने सौंपा है। यह कहकर चला गया। गंगेश सोचने लगा– पिताजी को भी न मालूम क्या हो जाता है, इसको भी काम में लगा दिया। क्या इसके बिना काम पड़ा रहेगा?

लेकिन अरुण तो चला गया सभामंडप में और बड़ी सतर्कता से सबको सजावट का निर्देश देने लगा। लेकिन अचानक अरुण का पांव फिसल गया और नीचे गिर गया। वहाँ पड़े पत्थर की चोट से उसे बेहोशी आ गई। अचानक गंगेश की चचेरी लड़की अमला की दृष्टि पड़ी। वह चीखती हुई गंगेश के पास आई और ज्यों ही सारी बात बताई, गंगेश एकदम घबराता हुआ वहाँ आया और उठाकर उसे अपने कक्ष में ले गया और तुरंत चिकित्सक को बुलाया। चिकित्सक ने अरुण का परीक्षण करके उपचार बता दिया और बोला– इस दवा को चंदन के तेल में मिलाकर पैरों के तलवों में मलने से इसकी मूर्च्छा दूर हो जायेगी। यह कहकर चिकित्सक चला गया। गंगेश ने अपने चाचा की लड़की अमला को कहा– ले, तू इसके तलवों में धीरे–धीरे मसल। मैं अभी अन्य कार्य निवृत्त करके आता हूँ।

अमला वैसे ही सेवाभाविनी थी। सेवा का मौका पाकर वह प्रसन्नता से अरुण के तलवों में मालिश करने लगी। जिसके फलस्वरुप कुछ समय बाद ही अरुण सचेत होने लग गया और उठने लगा। तब अमला बोली– अभी आप विश्राम कीजिए। अरुण बोला– आप कौन हैं? तब बोली– मैं अमला हूँ। गंगेश की चचेरी बहन। आपके चोट लग जाने से डाक्टर ने जो उपचार बताया– मैं वही कर रही हूँ। तब वह पुनः आँख बन्द कर सो गया। अमला पुनः मालिश करने लगी। अरुण को उसके मधुर स्वर से भी अधिक उसका स्पर्श रोमांचित कर रहा था। वह मन ही मन सोच रहा था– अहो, कैसा कोमल और सुखद स्पर्श है। ऐसा मन होता है– मैं सोया ही रहूँ और इस सुखद स्पर्श का आनन्द लेता रहूं। अहो, वास्तव में गंगेश का कथन यथार्थ है। कितना आनंददायक होता है नारी का स्पर्श। वास्तव में इसके बिना नर अपूर्ण ही है। अरुण इसका चिंतन करता हुआ मानो स्वर्गलोक की यात्रा करने लग गया।

उसको ध्यान तो तब आया कि जब गंगेश ने आवाज लगाई– मित्र अरुण! आंख खोलो। अरुण ने आंख खोली और मुस्कराया और बोला– मैं कहाँ हूँ, क्या हो गया मुझे? गंगेश बोला– कुछ नहीं। पहले यह गरम–गरम दूध पी ले, फिर बताऊंगा। अब गंगेश और अरुण दो ही रह गये, बाकी सब चले गये थे। अरुण दूध का प्याला हाथ में लेकर पीने लगा। आज उसकी आंखों से अजीब–सी मादकता झर रही थी। उसके चेहरे पर अजीब ही खुशी का नजारा दिख रहा था। अब भी उसके सारे शरीर में रोमांच हो रहा था। फिर भी बोला–

भैया गंगेश! मुझे पता ही नहीं चला कि मैं किस लोक में पहुंच गया। गंगेश बोला– अरुण! तेरा पांव फिसल जाने से तू गिर गया। कुछ मर्मस्थल पर दबाव पड़ने से तुझे बेहोशी आ गई थी और तू कोमल ही तो ठहरा। अब कैसा अनुभव हो रहा है? अरुण बोला– मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ। भैया गंगेश! आज तो मैंने तेरी शय्या पर सोने का आनन्द ले लिया। उसके बाद तो इस आनंद की हकदार भाभी हो जायेंगी। गंगेश बोला– अरुण! तू चिंता क्यों करता है। तेरे लिए इससे भी बढ़कर नरम–नरम शय्या तैयार कराऊँगा। जिस पर सोकर तुझे ऐसा अनुभव होगा मानो विष्णु और कमला नागशय्या का आनंद लूट रहे हों। सुनकर अरुण और अधिक रोमांचित होता जा रहा था।

इतने में गंगेश फिर बोला– अब तुझे कल जल्दी तैयार होकर आना है। क्योंकि कल यहाँ से बरात प्रस्थान करेगी और तुझे मेरे साथ ही रहना है। देख भूल मत करना। गंगेश की बात सुनकर पहले तो अरुण बोला– मित्रवर, बरात–धरात से मुझे क्या लेना–देना? मैं तो तुम्हारी मित्रता का निर्वाह करने आ गया, नहीं तो तुम जानते ही हो हम तो:...।

गंगेश बोला– फिर वही बात, अरुण अब रहने दे इस दिखावे को। तेरा मन क्या बोल रहा है उसे सुन, नहीं तो मैं बताऊँ। अरुण बोला– मेरा मन क्या बोल रहा है, जिसको तू सुन रहा है मानो कोई मेरे मन का स्विच तेरे कान से लगा हो। बड़ी गजब की बात है। तुमको तो शादी का ऐसा रंग लगा है कि बस उसी रंग में मुझे भी रंगना चाहते हो। बस, समझ गया तुम्हारी सारी चालबाजी को।

गंगेश बोला– अच्छा, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे–जैसी कहावत चरितार्थ कर रहे हो! लेकिन तेरे मन के चोर को तो तेरी आंखें, तेरा यह गोरा–गोरा चेहरा, उसमें उठने वाला रोमांच ही बता रहा है। बस बच्चू अब आगे कुछ भी ननुनच मत कर। इस शादी के कार्य से निवृत्त होने की देर है। फिर मैं तेरे मन की सारी बातों को तेरे मम्मी–पापा को बताकर जल्दी से जल्दी सर्वगुणसंपन्न सुकुमारी से सम्बन्ध जुड़ाकर विवाह रचवाऊंगा। अब तू जल्दी जा और कल बरात में चलने की तैयारी करके आना है।

गंगेश की एक–एक बात अरुण के सुप्त कामदेव को उद्वेलित कर रही थी। वह गंगेश को वादा करके अपने घर पहुंचा और माता–पिता से बोला– आपकी आज्ञा हो तो गंगेश का बहुत आग्रह है कि मैं उसकी बरात में जाऊँ। माता–पिता तो खुद चाहते ही थे कि अरुण की ऐसे कार्यों में रुचि जगे। कहा– बेटा, गंगेश तेरा प्यारा सुहृदयी मित्र है। उसका मन तो रखना ही चाहिये। इतना कहकर सागर श्रेष्ठी ने मणिमुक्ताजड़ित हार, अंगूठी आदि जेवरों के साथ अच्छी

से अच्छी पोशाकें और नगदी रुपये अरुण को पकड़ा दिये। अरुण ने कुछ आना–कानी की तो फिर पिताश्री के आग्रह से ग्रहण कर लिए और सजधज कर चल पड़ा। गंगेश के घर की ओर रथ में बैठकर जाने को तत्पर होने लगा।

आज इस प्रकार सजे–धजे अरुण को देखकर सब आश्चर्यान्वित होने लगे। बड़ी भाभी तो बोल पड़ी– थू–थू, मेरे लालजी को कहीं नजर न लग जाय! अब तो ऐसे लगते हैं मानो कोई राजकुमार हो। ऐसा कहते–कहते जल्दी से काजल की डिब्बी लाकर उसके चेहरे पर काजल का डिठौना कर दिया जिससे तो उसका चेहरा और चमक उठा। ज़ाते–जाते भाभी ने कहा – वहीं वो भी रहती है, जिसका चित्र आपने देखा। अरुण थोड़ा रोष में बोला – बस भाभी, तुमको तो एक ही रंग चढ़ा हुआ है, जब देखो तब। मैं मेरे मित्र की शादी में जा रहा हूँ या इसके लिए?

ज्योंही रथ गंगेश के घर के बाहर रुका– गंगेश दौड़ा हुआ बाहर आया और बोला– मित्र, सब तेरी ही इन्तजार कर रहे हैं। सब लोग अरुण को देखकर आनंदित हो उठे और गंगेश को बोले– गंगेश! तुम दोनों मित्रों की जोड़ी तो जोड़ी ही है, बरात में मानो दो दूल्हे हों। अरुण सकपका गया। बरात रवाना हुई, ससुराल पहुंची। अरुण को गंगेश हर समय अपने साथ ही रखता था। वहां भी जो देखता, परिचय पूछता और जानकारी कर बोल पड़ता – वह बाला कितनी भाग्यशालिनी होगी जिससे इसका वरण होगा।

बड़े हर्षोल्लास में शादी सम्पन्न हुई। बरात वापस कुशस्थलपुर पहुंच गई। यामिनी–मिलन की शय्या सजाने का उत्तरदायित्व भी गंगेश ने अरुण पर ही डाला। अरुण की देखरेख में शय्या तैयार हो गई। अब अरुण बोला– भैया गंगेश, हो गया तुम्हारा सब मन–इच्छित? अब तो मेरा कोई काम नहीं है। अब तो मैं जा सकता हूँ। बोलो आपकी इजाजत है या यहीं तुम्हारे साथ रात्रि व्यतीत करूं?

बेचारा गंगेश कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि एक उदासीन व्यक्ति भी इस प्रकार की चुलबुली बातें कर सकता है। बोला– अरुण! आज तो तेरा रंग ही अलग दिख रहा है। मेरे से भी आज तू ज्यादा रसिक लग रहा है। क्या तूने अपनी भाभी से परिचय कर लिया? अरुण बोला– नहीं, अभी मेरे परिचय की जरूरत नहीं है। आज तो आप अपना परिचय बता देना और मेरा तो मैं बाद में भी परिचय दे दूंगा। ऐसा कहकर अरुण गंगेश का हाथ छुडाकर घर से बाहर आ गया और रथ में बैठकर रवाना हो गया। गंगेश देखता ही रह गया।



अरुण रथ में बैठकर घर पहुंचा। माता–पिता को नमन कर अपने कक्ष में जाने लगा। ठीक उसी के पीछे उसकी भाभी प्रभावती पहुंच गई। वह चतुर थी। सोचने लगी, अभी लालजी को गंगेश की शादी के माहौल की जो उमंग चढ़ी है वह उनके हावभाव से झलक रही है। अच्छा हो कि इसी मौके में उनके मन की बात भी जान लूं। यह सोचकर धीरे से उसके कक्ष में पहुंच गई। देखा, अरुण दीवार की तरफ मुंह करके लेटा हुआ है और उसके विचारों में उथल–पुथल चल रही है। मानो अपने–आप बुदबुदा रहा है। आज गंगेश को तो मानो जीवन की महान् उपलब्धि हो गई है। आज तो वह अपने–आपको पूर्ण मानकर हर्षविभोर है। वास्तव में उसकी इच्छा के अनुरूप ही उसको पत्नी भी सर्वांगीण सुंदर प्राप्त हुई है। उनकी जोड़ी कितनी भव्य लग रही थी।

भाभी प्रभावती उसके मुंह से निकलने वाले शब्दों को सुन रही थी। उसी समय वह धीरे–से उसके बालों को हाथ से सहलाते हुए बोली– लालजी! गंगेशजी की अपूर्णता को तो पूर्ण करके आ गये। अब आपकी यह अपूर्णता कब पूर्ण होगी? जाते समय मैंने जो कहा था, उसका क्या उत्तर लाये? यदि इसके अलावा भी कोई मन में जची हो तो बताइये? भाभी के स्पर्श और शब्दों ने एक बार पुनः उस दिन की तरह ही रोमांचित कर दिया। फिर भी वह संभल गया और उठकर बोला– भाभी! कुछ आराम भी करने दोगी या नहीं? तुम तो मेरे पीछे ही पड़ गई हो। मानो शादी तो जीवन का आवश्यक अंग हो।

हां! लालजी, संसारी जीवों के लिए तो यही है। आपने गंगेश के विवाह में भाग लेकर अनुभव किया ही होगा। अब अपने निर्णय का अवसर आ गया है। आपको मालूम ही है, माताजी–पिताजी कितने व्यथित हो रहे हैं? इसलिए अब मेरी बात मानकर इस नाटक को बन्द करो और जो भी पसन्द आई हो, वह बताओ या फिर मैं अपने मन की बात बताऊं। अरुण बोला– भाभी! आप बार–बार पसंद की बात करती हो, पर मैंने अभी तक प्रणयन की भावना से किसी को देखा ही नहीं है। वे चित्र भी ऐसे ही ऊपरी–ऊपरी देख लिए लेकिन मन अभी तक किसी की ओर आकर्षित ही नहीं हो रहा है। हां, गंगेश के विवाह के बाद इतना जरूर है कि जैसे गंगेश इसके पहले अपने को अपूर्ण समझ रहा था और अब वह अपने–आप को पूर्ण समझ रहा है वैसे ही मैं भी कुछ अपने–आप में अपूर्णता का अनुभव कर रहा हूँ। पर क्या बताऊँ भाभी, कुछ समझ में नहीं आता है। इतने में भाभी ने वे चित्र सामने रख दिये और एक–एक का परिचय देने लगी। ऐसा करते–करते जब स्वयंप्रभा का चित्र सामने आया तो प्रभावती हाथ में लेकर बोली– लालजी! यह मेरी मौसी की लड़की है, चंद्रपुर

वाली। इकलौती लाडली है, सर्वकलाओं में निपुण व धर्मकला से परिपूर्ण है। देखो, इसका चित्र। ऐसा कहकर प्रभावती ने वह चित्र अरुण के हाथ में पकड़ा दिया। जिसको देखकर वह बोला– भाभी! वास्तव में तुम्हारा कथन सत्य है। आपके मौसाजी–मौसीजी ने नाम भी गुणात्मक ही रखा है और है भी आपकी मनभावन। क्योंकि अभी तो आप अकेली ही घर में दबदबा जमाकर चल रही हैं फिर तो दो बहनों का राज्य इस घर पर हो जायेगा। ऐसा कहकर मुस्कराते हुए अरुण ने मुंह फेर लिया। भाभी प्रभावती "मौनं सम्मति लक्षणम्" कहकर अरुण के कक्ष से बाहर आ गई और अपनी सासू सिद्धिदेवी को सारी बात बता दी। जिसको सुनकर सारे घर में हर्ष ही लहर छा गई। तब प्रभावती बोली– सासूजी, अब ज्यादा देर करने में फायदा नहीं है। आपकी इजाजत हो तो मैं एक बार चन्द्रपुर जाकर सारी बात निश्चित करके आगे की सारी भूमिका बनाकर मौसाजी को यहाँ भेज दूं?

नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र और सिद्धिदेवी ने भी इस बात को गहराई से लिया और बोले– बहू, तू स्वयं सुज्ञ है। तूने ही हमारी बहुत बड़ी उलझन सुलझाई है। अब आगे का सारा भार भी तुझे ही संभालना है। इसलिए जैसा तुझे उचित जंचे, वैसा कर। सास–श्वसुर के इस कथन से प्रभावती हर्षविभोर हो उठी और जल्दी से सारी व्यवस्था करके तैयार हो गई। फिर सास–श्वसुर की आज्ञा लेकर रथ में चढ़कर चल पड़ी चंद्रपुर की ओर। रास्ते में अपने मन में अरमानों को संजोती हुई जा रही थी। रथ अपनी गति से चंद्रपुरी के पथ पर दौड़ रहा था। दौड़ते–दौड़ते आखिर चंद्रपुर पहुंच ही गया और सीधा सुमतिचंद्र श्रेष्ठी के भव्य भवन के सामने रुका। ज्योंही उनकी दृष्टि रथ पर पड़ी, बाहर आये और देखा, प्रभावती आई है। उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे बड़े प्रेम से उसको घर के भीतर लेकर आये और रथ को रथशाला में पहुंचा दिया।

प्रभावती ने मौसाजी–मौसीजी को नमन किया। दोनों ने आशीर्वाद देते हुए कहा– प्रभावती! तुम्हारे आने से हमारा हृदय बड़ा प्रसन्न है। तुम्हारे वहाँ सब सकुशल तो हैं ना? प्रभावती बोली– हां मौसाजी! हमारे वहाँ सब आनन्दमय हैं और यहां भी आनंद मंगल बांटने ही आई हूँ। सुमतिचंद्रजी बोले– क्या आनन्द बांटने आई है? मैंने तुमको समाचार भिजवाये थे उसका क्या हुआ?

मौसाजी! आपके सारे समाचार मिल गये लेकिन आपने सुना ही होगा– मेरे देवरजी, वैसे तो बहुत प्रतिभासंपन्न, विनयवान व गुणवान, संपूर्ण कलाओं में निपुण हैं पर आचार्यदेव के सतत सान्निध्य का उन पर ऐसा रंग चढ़ा है कि वे पूरे धार्मिक बने हुए हैं। साथ ही संसार से ही मानो उदास हो गये हों। वैसे उनके लिए अनेक जगह से सम्बन्ध एवं चित्र भी आये हुए थे, पर वे तो इस

को बिल्कुल ही टालते रहते। उनके आचरण से तो ऐसा लग रहा था कि वे संयम पथ पर ही कदम बढ़ायेंगे। पर आचार्यश्री के स्वर्गवास के बाद संत–समागम कम होता गया जिससे उनके वे भाव तो स्थायी नहीं रहे पर अब भी श्रावकाचार का पूर्ण पालन करते हुए सामायिक, प्रतिक्रमण, रात्रिभोजन त्याग आदि व्रत–नियम का पालन करते हैं। सारे शहर में उनका जीवन आदर्श माना जाता है। लेकिन उनमें विवाह के प्रति कोई आकर्षण नहीं पाया। इससे सब व्यथित थे। पर वे मुझ पर पूर्ण विश्वास रखते हैं इसलिए मैंने ही यह उत्तरदायित्व अपने पर लिया और एक सहज भाव से उनके मन की थाह लेने हेतु वे चित्र उनको दिखाये पर उनका कोई आकर्षण नहीं देखा। आखिर मैंने स्वयंप्रभा का चित्र उनके सामने खिसका दिया। संयोग ही कहिये कि उसको देखते ही वे थोड़े मुस्काये और पूछा – भाभी, सह किसका चित्र है? तब मैंने बताया कि यह मेरी मौसी की लड़की स्वयंप्रभा का चित्र है। साथ ही इसकी रुचि और निपुणता का भी वर्णन किया तो बोले– रूप के साथ में गुण और नाम का भी अच्छा समन्वय जुड़ा है। साथ ही आपका और उनका भी, ताकि इस घर पर एकछत्र राज्य जम जाय। इतना कहकर वे मुस्कराते हुए वहाँ से उठ गये। अब बताइये – आपका क्या विचार है?

प्रभावती की बात को सुनके उसके मौसा–मौसी दोनों बोले– प्रभावती क्या बताएं, स्वयंप्रभा का तेरे देवर जैसा ही हाल है। वह भी धर्म रंग में रंगी हुई हमारी बातों की उपेक्षा ही करती रहती है। हमने तो सब प्रयत्न कर लिये हैं, अब तू आ ही गई है। जैसे तूने अपने देवरजी को मनाया, वैसे ही यदि इसको भी मना ले तो हमारी बहुत बड़ी समस्या हल हो जायेगी, फिर क्या चिंता। तू है ही, दोनों परिवार एक–दूसरे से छिपे हुए तो हैं ही नहीं। जो घनिष्ठता है उस में और घनिष्ठता आ जायेगी।

इधर स्वयंप्रभा ने प्रभावती बहन के आगमन की बात सुनी तो वह भी मिलने के लिए आ ही रही थी कि उसके कानों में तीनों में चलती बातें पड़ गई तो वह वहीं चुपचाप खड़ी होकर सारी बातें तन्मयता से सुनने लग गई। जिससे अरुण की वृत्ति, योग्यता और पिताजी के हाथ में प्रभावती द्वारा दिया गया चित्र, सबको देख–सुनकर उसे रोमांच हो आया। वह अरुण की ओर सहज आकर्षित होने लगी। इतने में प्रभावती ज्यों ही कक्ष से बाहर आती हुई उसे दिखी तो वह जल्दी से भागने लगी, जो प्रभावती से छिपी नहीं रही। प्रभावती भी उसके पीछे–पीछे उसके कक्ष में पहुंच गई।

स्वयंप्रभा प्रभावती को अपने कक्ष में आते देखकर सामने गई और स्वागत के लहजे में उसके चरणों में नमन करते हुए बोली– दीदी! आज आप

अकस्मात कैसे पधारीं? कुछ मालूम ही नहीं पड़ा, न कोई पूर्व सूचना ही मिली। प्रभावती ने यह उसके चेहरे से ही भांप लिया कि यह अब जानबूझकर अनभिज्ञ बन रही है। प्रभावती ने मुस्कराते हुए कहा– रहने दे, अपनी बात को। हमारी सारी बातें सुन–समझकर अब भोली बन रही है। यह तो तेरा चेहरा ही बता रहा है कि उन बातों को सुनकर तू कितनी रोमांचित है? क्या अब भी बताना पड़ेगा– मैं क्यों आई हूँ? तो ले सुनले– तुझे ले जाने.....।

स्वयंप्रभा– यह तो बड़ी खुशी की बात है, दीदी के घर जाने का आनंद आयेगा। प्रभावती बोली– यह दो–चार दिन के मेहमान के तरीके से आनंद को लूटने के लिए नहीं। तू सदा वहीं बंधी रहे, ऐसे मेरे देवरजी के बंधन में बांधकर ले जाऊंगी, तब जीवन का सच्चा आनंद प्राप्त करेगी।

स्वयंप्रभा बोली– दीदी! आज आप ऐसी व्यंग्यात्मक शैली में कैसी बातें कर रही हैं? कुछ समझ नहीं आता। प्रभावती बोली– तुझे ऐसे कैसे समझ में आयेगा? क्योंकि तूं ठहरी धर्मात्मा, लेकिन कोई बात नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि जैसे मेरे धर्मात्मा देवरजी समझे, वैसे तू भी समझ जायेगी। क्योंकि दोनों का नेचर समान है। वे भी धर्मनिष्ठ, व्रतधारी श्रावक और तू भी पूरी श्राविका। वे भी सर्वकलाओं में निपुण और तू भी। साथ में तू जैसे रूपसुंदरी, तो वे भी तेरे से कुछ ज्यादा ही। यदि शंका हो तो ले देखकर उसका निवारण कर ले। ऐसा कहते हुए प्रभावती ने अरुण का चित्र उसके हाथों में थमा दिया। जिसको देखते ही वह अरुण के प्रति इतनी आकर्षित हो गई जिसकी साक्षी उसकी आंखें दे रही थी। प्रभावती बोली – बोल, और कोई शंका है? प्रभावती की बातों को सुनकर लज्जा से वह इतनी भर गई कि उसकी आंखें नहीं खुल पाई। केवल इतना ही बोल पाई – जहाँ मेरी प्यारी दीदी है, वहाँ मुझे किस बात की चिंता।



(३५)

स्वयंप्रभा की भावना को जानकर प्रभावती मौसा–मौसी के पास आई और बोली– बस, अब जल्दी से तैयारी करके पधारिये कुशस्थलपुर ताकि वहीं सगाई का दस्तूर एवं विवाह–तिथि का भी निश्चित कर दीजिए। प्रभावती की बात से सारे परिवार में खुशी की लहर व्याप्त हो गई और जुट पड़े तैयारी में।

इधर प्रभावती भी मौसा–मौसी से विदाई लेकर रवाना हो गई कुशस्थलपुर की ओर। रथ अपनी गति से रास्ता पार करके कुशस्थलपुर पहुंचा और सीधा हवेली के पास आकर रुक गया। ज्यों ही प्रभावती ने रथ से नीचे उतरकर घर में प्रवेश किया, सास–श्वसुर बोल पड़े– लगता है बहू अपने कार्य में सफल

होकर आई है। प्रभावती बोली– जहाँ पूज्यवरों का आशीर्वाद साथ रहे, वहाँ विफलता की कहाँ गुंजाइश? आपकी कृपा से सब–कुछ अच्छा हो गया। अब वे यहाँ पहुंचने ही वाले हैं। दो–चार दिन में अब शुभ मुहूर्त में सगाई पक्की करके शुभ मुहूर्त निकलवाकर शादी भी निश्चित कर देनी है। प्रभावती की इस बात से सारे परिवार में प्रसन्नता छा गई। अरुण भी भीतर से तो खुशी से झूम रहा था। पर था तो आखिर गंभीर प्रकृति का, इसलिए गंगेश की तरह इतना उछलकूद कर अपने हृदय की खुशी को अभिव्यक्त नहीं कर रहा था। सभी लोग उसकी प्रकृति से परिचित थे ही।

दो–चार दिन इसी खुशी के वातावरण में निकल गये। उसके साथ ही चंद्रपुरी से श्रेष्ठिवर्य सुमतिचंद्र अपने निकट के सगे–संबंधियों के साथ पहुंच गये। नगरश्रेष्ठी सागरचंद्र ने बड़े हर्षोल्लास से सबका स्वागत किया। सब परस्पर मिलकर बड़ी प्रसन्नता की अनुभूति करने लगे। बड़ी मान–मनुहार के साथ भोजनादि से निवृत्त हुए। सारे भवन में खुशियों की लहर व्याप्त थी।

गंगेश भी यह शुभ संदेश पाकर दौड़ा आया और लगा अरुण से चुलबुली करने। साथ ही सजाने–संवारने। शुभ मुहूर्त में सबकी साक्षी से श्रेष्ठी सुमतिचंद्र ने सगाई का दस्तूर किया और पंडित को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकालने का अनुरोध किया। पंडित ने अपनी ज्योतिष का मिलान करके वैशाख शुक्ला एकम का मंगलमय मुहूर्त बताया जिसको सबने श्रेष्ठ समझकर निश्चित कर दिया और जुट गये दोनों तरफ से शादी की तैयारी में।

गंगेश को तो इतनी प्रसन्नता थी कि मानो उसने बहुत बड़ी सैद्धान्तिक विजय पा ली हो। यह मनुष्य के मन की विचित्रता ही समझें, जिसको वह अपने मन में अच्छा समझ लेता है उसी को सिद्धान्त का चोगा पहनाकर उसके प्रति राग–भाव से आबद्ध हो जाता है और दूसरे को भी उसी सिद्धान्त में रंगने की कोशिश करता है। और जब उसमें सफल हो जाता है तो फिर उसके हर्ष का कोई पार नहीं रहता है। अरुण की सगाई व शादी की तैयारी से अब उसका मन विश्वस्त हो गया कि अब अरुण की मित्रता कभी छूटेगी नहीं। क्योंकि वह अब मेरे सिद्धान्त से जुड़ गया है।

इधर अरुण भी आश्चर्य करने लगा और बोला– गंगेश! यह सब क्या हो रहा है? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। तेरी मित्रता और सगाई होने के बाद मेरे तन–मन में अपूर्व ही मादकता छाई रहती है। बिना नशे के ही नशे में झूमता रहता हूँ। तब गंगेश बोला– मित्र! यह तो जीवन की वास्तविकता है। अब तुम प्रेमालय में प्रवेश कर चुके हो, जो तुम्हें अपने जीवन की दिव्यता के आनंद की अनुभूति करा रहा है। अभी तो हुआ ही क्या है– केवल प्रेमालय में चरण ही रखा

है। जब उस प्रेमालय की देवी स्वयंप्रभा का मिलन होगा, उस समय के आनंद की जो अनुभूति होगी उससे तुझे खुद अपने–आप में जीवन की यथार्थता के आनन्द की अनुभूति होगी। अरुण बोला– भैया! मुझे तो होगी तब होगी, पर तुम तो उसका अनुभव कर ही चुके हो। गंगेश– इसीलिए तो मैं अपने अनुभव की ही तो बात बता रहा हूँ कि उस मधुर मिलन से तू स्वयं ही अपने में पूर्णता का अनुभव करेगा।

अरुण का विवाह महोत्सव प्रारंभ हो गया। नगरश्रेष्ठी की सारी हवेली गीतों के गुंजार से गुंजित होने लगी। मेहमानों की भीड़ उमड़ने लगी। नगरसेठ ने अरुण के विवाह महोत्सव को यादगार बनाने हेतु धन का भंडार खोल दिया। एक तो वह अंतिम विवाह था, दूसरा बड़ी कशमकश के बाद अरुण इसके लिए तैयार हुआ था। इसका सारा श्रेय श्रेष्ठी सागरचंद्र व परिवार के सदस्य गंगेश को ही दे रहे थे। इसलिए गंगेश का भी सब पूरा सम्मान करते और अरुण तो एक पल भी उससे दूर रहना नहीं चाहता था।

सेठ सागरचंद्र ने सारी बातों पर गहन विचार करके निश्चय किया कि ग्रीष्म ऋतु का प्रकोप है इसलिए उचित यही है कि वैशाख कृष्णा तेरस को बरात यहाँ से प्रस्थान करके रास्ते में दो पड़ाव देकर अमावस्या को तीसरा पड़ाव चंद्रपुरी के बाहर रख दिया जाय ताकि किसी को तकलीफ भी न हो और ग्रीष्म ऋतु में लोग वनश्री का आनन्द भी लूट सकें। ऐसा सोचकर सारी व्यवस्था कर दी। ऊंटगाड़े, रथ आदि की प्रचुर व्यवस्था के साथ मंगल मुहूर्त में बरात रवाना हुई कुशस्थलपुर से चंद्रपुरी की ओर। साथ में कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया कि आप आगे चलकर जहाँ वनश्री से सम्पन्न वापियें हों, वहां तंबू तानकर भोजन–पान की सुंदर व्यवस्था करें ताकि किसी को किसी प्रकार की दुविधा न हो।

इधर बरात में नगर के विशिष्ट राज–कर्मचारियों के साथ अनेक ग्राम–नगरों के प्रतिष्ठित सेठ–साहूकारों, सगे–सम्बन्धियों व कुशस्थलपुर के गणमान्य व्यक्तियों से बरात की शोभा अलग ही दिख रही थी, मानो कोई राजकुमार की ही बरात जा रही हो। वर–राज अरुण एक विशेष सजावट के साथ हस्ती पर बैठा था, पास में ही गंगेश। बराती, बरात की भव्यता को देखकर कई तरह की अटकलबाजियां लगा रहे थे। कोई सेठ सागरचंद्र की उदारता की चर्चा कर रहा था तो कोई कह रहा था सब बेटों में अरुण के प्रति उनका स्नेह अधिक ही है क्योंकि वह सबसे छोटा है। कोई कह रहा था– यार! मुझे तो समझ ही नहीं आ रहा है। यह दीक्षित होने हेतु कैसा छटपटा रहा था, जब

गुरुदेव का संथारा चल रहा था और आज वह दूल्हा बनकर शादी के लिए कितना उत्सुक लग रहा है? इतने में एक ने बोला– भैया! मुझे तो यह गंगेश की करामात लगती है क्योंकि वह पूरा श्रृंगाररस का रसिक है। देखो तो सही, अपनी कला का अरुण पर कैसा जादू डाल दिया है और उसके मानो गले का हार ही हो, ऐसा चिपका रहता है। कुछ बोले – भैया छोड़ो ना इन बातों को – जिसका जैसा योग जुड़ा है, वैसा होकर ही रहता है। कुल मिलाकर अपन तो देख रहे हैं श्रेष्ठी सागरचंद्र की उदारता व आत्मीयता, कितनी नम्रता व अपनत्व दिखा रहे हैं। इस प्रकार अनेक तरह की अनुकूल, प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं के साथ बरात एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव और आखिर वैशाख बदी अमावस्या को चन्द्रपुरी के बाहर पहुंच गई।

अरुण–गंगेश दोनों हस्ती पर बैठे थे। अरुण का मुखमंडल प्रसन्नता से दमक रहा था। उसका रोम–रोम पुलकित हो रहा था। उसके नयनों से काम–राग, विषय–राग का मद झर रहा था। गंगेश का हाथ अरुण के हाथ में था। वह उसको सहलाता हुआ उससे फूटने वाली उष्मा का आस्वादन कर रहा था। उसे उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उसकी प्राणप्यारी स्वयंप्रभा का हाथ हो। मानो वह उसके पास ही विवाह मंडप में बैठी हो हथलेवा मिला कर और वह उसके मुखकमल पर भ्रमर की भांति मंडराता हुआ उससे प्रवाहित मकरंद का आनंद लूट रहा हो। अरुण उसी चिंतन की धारा में इतना तन्मय हो गया कि गंगेश के हाथ को अपनी प्रिया का हाथ समझकर इसने जोर से दबा दिया कि गंगेश एकदम चीख पड़ा और हंसते हुए बोला– अरुण! यह क्या कर दिया? क्या दिवास्वप्न में बेभान होकर यह भी नहीं देखा कि यह तेरी प्रिया का नहीं, मेरा हाथ है। तब जाकर अरुण की विचारतंद्रा टूटी, वह मुस्कराने लग गया।

गंगेश सोचने लगा मन ही मन– कहाँ गया इसका वैराग्य रंग? वास्तव में आखिर वह अस्वाभाविक ही तो था, जो कपूर की तरह उड़ गया, मोम की तरह पिघल गया। बोला– मित्र देखा, अभी ही जीवन में कैसी पूर्णता की अनुभूति हो रही है? अरुण गंगेश की बात पर मुस्कराने लग गया, जिससे उसका सारा चेहरा लाल हो गया। उसकी भीतर की मस्ती उसके चेहरे पर अठखेलियां करने लग रही थी। इधर श्रेष्ठी सुमतिचन्द्र को ज्ञात होते ही बरात की अगवानी करने में लग गये। दोनों ओर से विवाह–खुशी की अभिव्यक्ति वाद्यों की मधुर ध्वनियों से प्रतिस्पर्धा के रूप में प्रगट हो रही थी।



बरात के कुशलस्थलपुर से विदा होते ही प्रभावती भाभी सास सिद्धिदेवी की आज्ञा से एक दिन पहले ही चंद्रपुरी पहुंच गई थी। जिससे मौसा–मौसी बड़े प्रसन्न थे। स्वयंप्रभा भी उसके चरणों में झुककर बोली – बहिन पधारिये – आपका स्वागत है। तब प्रभावती बोली – अब बहिन नहीं, तेरी जेठानी हूं। तुझे मेरी मर्यादा तो रखनी ही होगी। स्वयंप्रभा प्रभावती की बात सुनकर लम्बा घूंघट खींचते हुए बोली – लो जेठानीजी, आपकी मर्यादा। सब खिलखिलाकर हंसने लगे।

इतने में आवाज आई – अरे स्वयंप्रभा को जल्दी स्नान कराकर दुल्हन वेश सजाओ। लग्न का समय नजदीक आ रहा है। देखो ना – बरात भी महल्ले में पहुंच गई है और मंडप में पहुंचने वाली है। यह सुनते ही सखी–सहेलियां स्वयंप्रभा को सजाने में लग गई। साथ ही अरुण के रूप–वैभव की चर्चा करते हुए स्वयंप्रभा से चुटकियां ले रही थी। बाहर सुहागन बहिनें गीतों से मण्डप को गुंजा रही थी और वरराज को बधाने मंडपद्वार पर जमा होने लगी। इधर मण्डप से थोड़ी दूर ही दोनों सम्बन्धियों का स्नेहमिलन हुआ। वरराज अरुण घोड़े पर सवार थे। गंगेश उसके हर कार्य में सजगता से जुटा हुआ था। सासूजी ने आरती उतारी, मंगल तिलक किया, तोरण बंधन की क्रिया पूर्ण हुई और घोड़ी से नीचे उतारकर वरराज को विवाह मंडप में लाकर उसमें सज्जित एक सिंहासन पर बिठा दिया गया। पास ही एक सिंहासन खाली पड़ा था, कुछ ही समय बाद सखी–सहेलियों से घिरी हुई, साक्षात् रतिरूप में स्वयंप्रभा ने मंगल गीतों की गुंजार के साथ विवाह मंडप में प्रवेश किया और गजगति से चलकर पास पड़े सिंहासन पर बैठ गई। उस समय अरुण और स्वयंप्रभा ऐसे लग रहे थे मानों राम–सिया की जोड़ी बैठी है। सब अरुण के भाग्य की सराहना कर रहे थे। इधर पंडितजी मंत्रोच्चारण करते हुए बोले – लाइये सेठ साहब, वरराज को इस जगह खड़ा कीजिये। गंगेश ने उसी क्षण अरुण को हाथ पकड़कर उस स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया तो ठीक उसके सामने ही उसकी सखियों ने स्वयंप्रभा को भी।

ठीक उनके बीच ही स्वर्ण थालों में दो वरमालाएं सजी हुई थी। पंडितजी ने मंत्रोच्चारण करते हुए एक–एक वरमाला दोनों के हाथों में थमा दी और पुनः मन्त्रोच्चारण करते हुए बोले – अब दोनों परस्पर यह वरमाला पहनाइये। पंडितजी के इन वाक्यों को सुनते ही दोनों के चरण एक–दूसरे की तरफ अपने स्थान से आगे बढ़े। दोनों का हृदय मधुरमिलन हेतु उछालें मार रहा था। इधर मधुर गीतों की गुंजार वातावरण को और मधुर बना रही थी। मन्थर

गति से दोनों एक–दूसरे के सामने खड़े हुए और एक–दूसरे के गले में वरमाला डाल दी। उसी क्षण दोनों की चार आंखों का मिलन हुआ और मानों दोनों के हृदय में सहस्रों बिजलियां एक साथ कौंध उठी हों, ऐसा प्रकाश फैलने लगा।

अरुण सोचने लगा – यह कौन है? इसको तो मैंने पहले देखा है। यह तो मेरी चिरपरिचित है। फिर सोचा, मैंने इस जीवन में तो किसी कुमारी से परिचय नहीं किया, पर लगती है यह परिचित। कब, कैसे यह परिचय में आई? इसका गहन चिंतन करते–करते अरुण के मस्तिष्क पर झटका–सा लगा। उसी सयम वह वहीं बैठ गया और थोड़ी देर में मूर्च्छित हो गया। इधर स्वयंप्रभा ने जब कनखियों से अरुण को देखा तो वह भी इसी विचारधारा में उलझ गई कि इनको मैंने पहले कहां देखा है। ये मेरे पहले से चिरपरिचित हैं। इनका–मेरा कहां परिचय हुआ – सोचते–सोचते वह भी मूर्च्छित हो गई।

अकस्मात् वर–वधू दोनों की यह दशा देखकर मंडप में हर्ष की जगह कुहराम मच गया। सब हक्के–बक्के रह गये। किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था। मंडप से उठाकर दोनों को अलग–अलग कक्ष में लेकर गये। स्वयंप्रभा के आस–पास उसके परिजन शोकसागर में डूबे टकटकी लगाकर खड़े थे। तो अरुण के पास गंगेश और श्रेष्ठी सागरचंद्र, भाभी प्रभावती आदि खड़े थे आकुल–व्याकुल से। भाभी प्रभावती पंखा हाथ में लेकर हवा करने लगी। गंगेश उसके चेहरे पर शीतोदक छिड़कने लगा जिससे अरुण कुछ होश में आने लगा। पर देखते क्या हैं कि होश में आते–आते वह अपनी गले की वरमाला निकाल कर फेंकने लगा गंगेश बोला – मित्र! ऐसा क्यों कर रहा है? क्या हो गया तुझे? उसका एक हाथ गंगेश ने और एक हाथ श्रेष्ठी सागरचंद्र ने पकड़ लिया तो अपने मुंह से हाथ में बंधे कंकण–डोरों को तोड़ने लगा और जोर से बोला – छोड़ो मुझे। इनका मुझे क्या प्रयोजन है? मुझे यहां क्यों लेकर आये। नहीं करना है मुझे विवाह। ऐसा कहते हुए अरुण उठकर वहां से रवाना होने लगा। सबने उसको पकड़कर बिठा दिया।

वधूपक्ष वालों ने यह बात सुनी तो पूछने लगे– क्यों क्या बात हो गई? क्यों नहीं होगा विवाह? आप यहां किसलिए आये? क्या हमारे साथ खिलवाड़ करने? तब अरुण पूर्ण होश में आकर गंभीर स्वर में बोला – आपका कहना यथार्थ है। मैं आया तो विवाह करने, पर अब यह विवाह नहीं होगा। बस, नहीं होगा।

इससे कन्यापक्ष में कुछ रोष व्याप्त होने लगा तो कुछ मध्यस्थों ने उनको समझा कर शांत किया और बोले – आप थोड़ी देर के लिए बाहर चले जाइये। सबके बाहर जाने के बाद गंगेश एवं अरुण के मामा, बहनोई आदि ने

बड़े मधुर स्वरों में बोला – अरुण! ऐसा क्या करने लग गया? जरा, सोच इससे अपने कुल की कितनी बदनामी होगी। जरा धैर्यतापूर्वक चिंतन कर। उसी समय अरुण बोला – मुझे कुछ समझाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने कह दिया न आप से, मुझे विवाह नहीं करना है। इतने में सागर श्रेष्ठी खीझते हुए वहां आये और क्रोध से लाल–लाल आंखें दिखाते हुए बोले – क्या कहा? यह क्या तमाशा दिखा रहा है? मेरी नाक कटाने यहां आया है? गुस्से में वे उसे मारने हेतु तत्पर हो गये। पर अरुण उसी शांत मुद्रा में बैठा था।

इतने में अरुण की भाभी प्रभावती ज्वर से पीड़ित होते हुए भी वहां पहुंची। जिसको देखते ही सागर श्रेष्ठी गरजकर बोलने लगा – ले देख बहू, मैंने पहले ही कहा था – तू अपने देवर से पक्की बात करले। पर अब देख, इसका नतीजा – तुम दोनों देवर–भाभी के कारण आज मेरी सारी इज्जत मिट्टी में मिल रही है। हाय! अब मैं क्या करूं? ऐसा कहते–कहते उनकी आंखों से अश्रु प्रवाहित होने लग गये। यह देख अरुण बोला – तात! आप मेरी बात सुनिये – इसमें न तो आपका दोष है, न भाभी का और न मैं आपकी इज्जत खराब कराना चाहता हूं। मैं खुद अपनी इच्छा से ही यहां आया हूं। परन्तु मेरे भीतर में इस वरमाला ने ज्ञान का ऐसा उजाला किया है कि अब यह विवाह किसी हालत में नहीं हो सकता। यह सुनते ही पुनः सागर श्रेष्ठी रो पड़े। अपनी पगड़ी अरुण के पैरों में रखकर बोले – बेटा! इस पगड़ी की तो लाज रख। अरुण ने पिताश्री की पगड़ी अपने हाथों से उठाई और उनके सिर पर रखकर बोला – पिताश्री! इसमें पगड़ी की लाज का कोई सवाल ही नहीं है। आप थोड़ी धैर्यता धारण करें और शांतिपूर्वक मेरी जागृत हुई स्मृति की बात सुनिये –

मैं आपको साफ बता देना चाहता हूं कि यह बहुत रहस्यभरी बात है। पहली बात तो यह विवाह होगा नहीं, होगा तो हम एक–दूसरे के सुख के भागीदार बनने की जगह जीवन–मरण का प्रश्न बन जायेगा। इस पर भी आपको संतुष्टि नहीं हो और आप शांति से इस भेदभरे रहस्य को यदि सुनना चाहते हैं तो मैं सुना देता हूं।

इतने में स्वयंप्रभा भी कुछ होश में आ गई और चलकर उसी स्थल पर पहुंच कर कहने लगी प्रभावती से कि बहन आप दोनों पक्ष के पूज्यवरों से कह दीजिए कि कम से कम शांति से एक बार सारा भेदभरा रहस्य श्रवण तो कर लीजिए। फिर आगे की बात आगे सोचेंगे। स्वयंप्रभा की इस बात से सब को सम्बल मिला और सब शांति से वहीं बैठ गये और बोले – बताओ, आप की भेदभरी ज्ञान की बात।



उसी समय अरुण बोला – कुछ प्राचीन समय की बात है। एक नगर में धनपति नाम का श्रेष्ठी रहता था। स्वयं युवा एवं धनसम्पन्न था। साथ ही व्यापार में पूर्ण दक्ष। उसका विवाह धनवती के साथ सम्पन्न हो गया। धनपति के पिता ने दोनों को घर–बार सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। धनवती रूप संपन्नता के साथ बुद्धिशालिनी भी थी। दोनों का जीवन आनंद से व्यतीत हो रहा था। दोनों में परस्पर प्रीति गाढ़ से से गाढ़तम होती जा रही थी। इसलिए दोनों एक–दूसरे से अलग रह ही नहीं सकते थे। जहाँ जाना होता, दोनों साथ–साथ जाते थे। लोगों में दोनों का दांपत्य जीवन आदर्श माना जाता था।

एक समय धनवती अचानक बीमार पड़ गई। धनपति ने उपचार में कुछ भी कसर नहीं रखी। परंतु ज्यों–ज्यों उपचार होता, रोग अधिक ही बढ़ता जा रहा था। धनवती अब जीवन से निराश हो गई। बोली– पतिदेव! अब आप मेरे कारण बहुत कष्ट उठा चुके हैं। अब मुझे अपने भाग्य पर छोड़ दीजिए। मैं आपके अथाह प्रेम को पाकर अपने–आप को धन्य समझती हूँ और यदि मैं जी जाऊं तो आपकी कृपा की पात्र हूँ ही और मर भी जाऊं तो यही कामना करती हूं कि अगले भव में आपका ही प्रेम मुझे मिले। इतना सुनते ही धनपति ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और बोला– प्रिये! आगे से ऐसे शब्द मुंह से मत निकालो। तेरे बिना तो मेरा जीवन ही नहीं टिक सकता। उपचार चल रहा है। मन कहता है तुम निश्चित निरोग बनोगी।

लेकिन यह बातें कहने–सुनने को ही थी। दोनों का मन निराश हो चुका था फिर भी पुरुष प्रयत्नशील था कि कैसे भी हो, उपचार लग जाये। इतने में एक सिद्ध वैद्य का आगमन हो गया। धनपति ने उसे बड़े सत्कार–सम्मानपूर्वक घर बुलाया और धनवती के उपचार का आग्रह करने लगा। सिद्ध वैद्यराजजी ने धनवती का सारा परीक्षण किया और बोले– उपचार कठिन है, पर असंभव नहीं है। धनपति बोला– फिर देखते क्या हैं, शीघ्र उपचार करिये–ना। आप व्यय का कुछ भी विचार न करें।

सिद्ध वैद्य बोला– व्यय की जितनी बड़ी समस्या नहीं है, उतनी धर्म की है। आप जैन हैं और इसकी दवा का आधार है कौए का मांस। यदि आपकी आज्ञा हो तो यह मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी पत्नी इससे स्वस्थ ही नहीं, पहले से द्विगुणित रूपवती भी बन जाएगी। यह सुनते ही धनपति हताश हो गया। फिर बोला– वैद्यजी! अब क्या करूं? एक तरफ धर्म और एक तरफ पत्नी का ममत्व। यदि लोगों तक बात पहुंच जाय तो कितना अपवाद फैलेगा। सिद्ध वैद्य ने कहा– इसका तो आप पूर्ण विश्वास रखिए, किसी के कान तक यह वात

नहीं पहुंच सकती, मैं वचन देता हूँ। तब वैद्यजी ने उपचार प्रारम्भ कर दिया। खुद धनपति चुपके–से कौए को मारता और वैद्य के कथनानुसार दवा में मिलाता। धनवती को मालूम ही नहीं पड़ने देता। लगभग चालीस दिन में धनवती पूर्ण स्वस्थ व पहले से भी अधिक रूपवती बन गई। लेकिन कुछ वर्षों बाद ही धनपति रोगग्रस्त हो गया और उपचार से पहले कालग्रसित हो गया और उस हिंसाजनित पापकर्म से नरक में चला गया।

अरुण आगे बोलने ही वाला था कि श्रेष्ठी सागरचंद्र बड़बड़ाने लगे और बोले– अरुण! यह क्या लंबी–चौड़ी गप्पें हांकने लगा है। होगा धनपति और होगी धनवती, गये होंगे नरक या स्वर्ग में। हमें इन लंबी–चौड़ी बातों से क्या लेना–देना? हमको तो जिस कार्य हेतु आये हैं वो कार्य पूरा करना है। बंद करो इस कर्मकहानी हो।

इतने में स्वयंप्रभा, जो एकाग्रता से सारी बातें सुनने में तन्मय थी, अचानक उसकी तंद्रा टूटी और बोली– पूज्यवर! आप थोड़ा धैर्य धारण करें और इनको सारी बात कहने दें। तब सागर श्रेष्ठी शांत हुए और बोले– कह दे भाई अरुण तेरी भी कथा पूरी।

तब अरुण पूर्ण धैर्यपूर्वक बोला– तात! इसी बात से सारी गुत्थी अपने–आप सुलझ जाएगी। आप थोड़े धैर्य से सुनें। बाद में अरुण ने बताया कि पंचेंद्रिय की हत्या के कारण वह धनपति पहली नरक में गया। वहाँ उसे एक परमाधामी देव सारी बात बताकर उसे खूब पीटता पर धनपति को उसे देखकर राग भाव उत्पन्न होता था। तब उसने गहराई से सोचा तो मालूम पड़ा, वह और कोई नहीं उसकी पूर्वभव की पत्नी धनवती है और वही मुझे मारपीट कर कई कौवों को छोड़ती है। उसने पूछा– धनवती क्या मेरे उपकार का यही बदला चुका रही है? उसने कहा– हां, मैंने तेरे प्रेम से आकुल होकर कहा था कि अगले भव में हमारा साथ जुड़े और वही हुआ। यहाँ तुम्हें देखकर प्रेम तो उमड़ता है पर आवेश में आकर नहीं चाहते हुए भी तुम्हें दुःख देना पड़ता है। तब धनपति का जीव जोश खाक़र बोला– मांस तो तूने ही खाया था। तब धनवती का जीव बोला– दुष्ट! मैंने कब इस हिंसा के लिए बोला था? तूने मुझे धोखे में मांस खिलाया था इसलिए मैं भी इस नीच देव योनि में आया हूँ, पर अब मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ, पुरुष देव हूँ। अब उस पाप का फल तो मुझे भोगना ही पड़ेगा और वह जोर–जोर से पीटने लगा। उस समय उस धनपति नारक को बड़ा क्रोध आया कि जिसके प्रति मैं इतना मुग्ध बना था वही मुझे इतनी पीड़ा दे रही है। वह कुछ नारकों को समझाकर उस परमाधामी देव को घेरकर मरम्मत करने लगा, लेकिन वह तो देव था उसने दूने वेग से अपनी ताकत बटोरकर उनकी खूब मारपीट की और वहाँ से भाग गया।

संयोग से एक भावी तीर्थंकर का जीव भी उसी नरक में था। वह न तो किसी को दुख देता, न आक्रंदन करता। बड़े समभाव से सब वेदना सह रहा था। धनपति नारक उसके पास पहुंचा। उसे देखकर बड़ी शांति का अनुभव हुआ। उसने कहा– आप इतने शान्ति से कैसे सब दुःख सह लेते हैं? उन्होंने बताया अपने अशुभ कर्मों को याद करके। क्योंकि असलियत में तो अपने कृतकर्म ही अपने को दुःख देते हैं। यदि समभाव से सह लेते हैं तो नये कर्मों का बंधन नहीं होता है। इससे उसको प्रेरणा मिली और अब वह वहां समभाव से रहने लगा। इससे उस देव में भी उसके प्रति क्रूरता कम हो गई। इसी के प्रभाव से उसने शुभ कर्म का उपार्जन किया। इसके फलस्वरूप वही नारक का जीव आपके यहाँ अरुण के रूप में पैदा हुआ है। सागर श्रेष्ठी को संबोधित करके बोला – तीर्थंकर के जीव के सान्निध्य से उसे सम्यग्दृष्टि पैदा हुई थी। इसी कारण मुझे धर्म–श्रद्धा जाग्रत हुई है और वह परमाधामी देव भी अपनी कषाय के उपशमन से सुमतिचंद्र श्रेष्ठी के यहाँ स्वयंप्रभा के रूप में उत्पन्न हुआ है और इसको देखते ही मुझे जाति–स्मरण ज्ञान पैदा हो गया।

सारी बात को सुनकर सागर श्रेष्ठी और सुमतिचंद्र बोले – इसमें तो हर्ष का प्रसंग है कि तुम पूर्वभव के प्रेमी दम्पती पुनः यहां मिल गये। तब अरुण बोला– आपकी बात सत्य है, पर तीर्थंकर देव से प्राप्त सम्यग्दृष्टि का भाव मुझें पहले से ही विकारमुक्त बना चुका था। सिर्फ क्षणिक आवेग से मैं उत्सुक बन गया लेकिन अब मुझे सब–कुछ मालूम हो गया है इसीलिए अब मैं अपनी आत्मा को पुनः पापगर्त में नहीं डाल सकता। बस, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

इधर गंगेश सारी बातों को विस्फारित नेत्रों से देख–सुन रहा था तो उधर स्वयंप्रभा उठकर सामने आई और कहने लगी– पूज्यजनो! अरुणजी ने बात तो बिल्कुल सच–सच कही और मुझे भी जातिस्मरण से सब बात मालूम पड़ रही है। पर कुछ बात आपने अधूरी छोड़ दी। तब अरुण बोला– बहिन स्वयंप्रभाजी, यदि आपको ज्ञात हो तो उसे आप ही स्पष्ट कर दीजिए। तब स्वयंप्रभा बोली– पहले तो आप यह वचन दें कि मैं जो बात कहूं उसे आप अपने ऊपर दोषारोपण न समझें, क्योंकि कुछ बातें धनपति की मृत्यु के बाद घटित हुई थी।

अरुण बोला– इसमें दोषारोपण की बात ही क्या है। आपकी बातों से और गहरा स्पष्टीकरण हो जायेगा। तब स्वयंप्रभा बोली– धनपति और धनवती में परस्पर गाढ़ा प्रेम था। धननपति की मृत्यु के बाद धनवती अतिव्याकुलता से पागल हो गई और मन में निश्चय किया कि मैं पति के साथ सती हो जाऊँगी। यह बात सुनते ही सबने उसका स्वागत किया। परिवार वाले जैन थे, फिर भी

सोचा यौवनावस्था है, कहीं कुल पर कलंक नहीं लग जाय इसलिए जो कर रही है, वह ठीक है। तैयारी होने लगी– धनवती स्नान करके धनपति के शव को अपनी गोद में रखकर अरथी पर बैठ गई और श्मशान भूमि में पहुंच गई। वहाँ चिता तैयार हो गई। उसकी परिक्रमा करके वह पति के शव को गोदी में लेकर बैठ गई और आग लगा दी गई। जय–ध्वनि से आकाश गूंज रहा था। लेकिन ज्यों ही अग्नि की ज्वाला की चपेट में आई, उसके शरीर में भयंकर पीड़ा उत्पन्न होने लगी। तब वह उस चिता से निकल तो नहीं सकी पर उसके मन में अपने कुटुम्बियों के प्रति रोष भाव जाग्रत हो गया और वह मरकर परमाधामी देव बनी। अरुणजी यह है धनवती की पूरी कथा, जिसे सुनकर अश्रुओं से अरुण के नयन गीले हो गये।



(३८)

इधर चंद्रपुरी में तो यह घटना घटित हो रही थी, उधर कुशस्थलपुर से बरात रवाना होने के बाद सिद्धिदेवी अपने कक्ष में विश्राम कर रही थी। अचानक उसके अरुण के त्याग–वैराग्यमय जीवन की झलक के साथ गुरुदेव के संथारे का दृश्य सामने उभरने लगा। गुरुदेव संथारा करके सोये हुए हैं। मुनि शिवसुंदरजी उनकी उपासना में बैठे हैं। अरुण गुरुदेव के चरणों में भावविह्वल होता हुआ बोल रहा है– नाथ! मेरी भी सुनिये, मेरे लिए भी कुछ संदेश दीजिए। क्या आप मुझे ऐसे ही मझधार में छोड़कर पधार जायेंगे? फरमाइये गुरुदेव! यह दृश्य देखकर सबका हृदय आर्त हो उठा था। तब गुरुदेव ने दृष्टि खोली। अरुण की ओर निहारा। जिसे देखकर हमारा भी हृदय गद्‌गद हो गया। मन बोल उठा– मेरा अरुण कितना भाग्यशाली है, जिस पर ऐसी स्थिति में भी गुरुकृपा बरस रही है।

गुरुदेव ने आचार्यश्री धर्मप्रियजी को बुलाया और फरमाया था कि अगली वैशाख सुदी एकम को चंद्रपुरी पहुँचने का ध्यान रखना। फिर अरुण को बोले– मैंने तेरी व्यवस्था कर दी है। लेकिन इस रहस्य को कोई समझ नहीं पाया और गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया और हम भी उस बात को भूल ही गये। लेकिन अरे, यह कैसा संयोग जुड़ रहा है, वही वैशाख सुदी एकम और इधर चंद्रपुरी में अरुण के विवाह का समय। तो क्या आचार्यश्री आज पधारे होंगे। हां–हां, जरूर पधारे होंगे क्योंकि वे अपने गुरुदेव की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं कर सकते। तो क्या वे अरुण को उपदेश देंगे? और यदि देंगे तो अरुण न मालूम क्या कदम उठाएगा! ऐसे में पतिदेव न मालूम आचार्यदेव के साथ कैसा

अभद्र व्यवहार करने हेतु तत्पर हो जायें! इन्हीं शंका–कुशंकाओं से उसका मन बेचैन हो गया और मन ही मन चंद्रपुरी जाने का निश्चय कर लिया।

सिद्धिदेवी ने अपनी बात को गुप्त रखकर छोटी बहुओं को कहा– देखो मुझे कुछ आवश्यक कार्य से बाहर जाना है। बरात आने से पहले ही पहुँच जाऊंगी। तुम पीछे सारी व्यवस्था संभाल लेना। यह कहकर रथ में सवार होकर रवाना हो गई। साथ में एक वृद्धा दासी को लेकर और पहुंच गई चंद्रपुर। एकम की संध्या को तो उसने अपनी आंखों से अरुण को विवाह मंडप में जाते देख लिया और गुप्त रूप से विवाह मंडप में पहुंचकर वरमाला पहनाने तक की सारी खबर सुन ली और वहीं नगर के बाहर एक धर्मशाला में ठहर गई। पास में ही उस ने सुना कि आचार्यश्री धर्मप्रियजी महाराज भी आज प्रातः ही यहाँ पधारे हैं। लेकिन सोचा– अब यहीं विश्राम करना उचित है। वह बिना किसी को कुछ सूचना दिये कक्ष में विश्राम करने लगी। पास में ही बरात का विश्राम स्थल भी था।

लेकिन सिद्धिदेवी को थकी हुई होने पर भी निद्रा नहीं आ रही थी। उसे बड़ी बेचैनी का अनुभव हो रहा था। वह उठी और उस वृद्धा दासी से बोली– माजी! मेरे मन में बड़ी बेचैनी हो रही है। न मालूम अनेक शंका–कुशंकाएँ मेरे मन को व्यथित कर रही हैं। आप जाकर सब पता लगाओ कि क्या अरुण की भांवरें पड़ गई हैं?

वृद्धा यह सुनकर मन में विचार करती हुई बाहर आई कि यह मन भी कभी–कभी तो कितना शंकाशील बन जाता है। वह बड़ी आतुर दृष्टि से राह निहार रही थी। इधर विवाह–मंडप में कुछ और ही घट रहा था। अरुण और स्वयंप्रभा की बातों से सब आश्चर्य कर रहे थे। श्रेष्ठी सागरचंद्र और सुमतिचंद्र के साथ सारे बरात–घरात वाले बड़े व्यथित हो रहे थे। श्रेष्ठी सुमतिचंद्र बोले– ये पूर्वभव की बातें याद कर क्या वर्तमान जीवन को विषमय बनाना उचित है? हमारा तो क्षमाप्रधान धर्म है। दोनों परस्पर क्षमायाचना कर लो। पूर्वभव के सम्बन्ध इस भव के लिए, पहली बात तो बाधित नहीं बनते, चाहे भाई–बहन और माता–पुत्र के ही क्यों न रहे हों। उसमें भी आपके तो पति–पत्नी के ही सम्बन्ध रहे हैं। फिर यह विवाह क्यों नहीं हो सकता है?

अरुण बोला– पूज्यवर! मैं आपकी सारी बात का मर्म समझ रहा हूँ। पर मेरी बातों का जो गलत अर्थ लगाया जा रहा है वह बात विचारणीय है कि क्या मैं यह विवाह पूर्व वैर के कारण स्थगित कर रहा हूँ? यह स्पष्ट सुन लीजिए कि मेरे मन में स्वयंप्रभा के प्रति तनिक भी वैरभाव नहीं है। सिर्फ इस वरमाला ने जो ज्ञान का उजाला मेरे घट में पैदा किया है, उससे मेरा मन विरक्त बन गया

है इसलिए अब मैं यह विवाह किसी हालत में नहीं कर सकता। इस पर भी आप शायद ऐसा सोच सकते हैं कि यह कैसी विरक्ति? अभी–अभी राग–रंग में झूमते हुए विवाह में आ रहे थे और अब वैराग्य के झूले में झूलने लग गये! तो पूज्यवर आप स्वयं सोचें– कहावत है– "जागे तभी सवेरा।" मेरे बारे में ही क्यों सोचें, नेमिनाथ भगवान भी तो तोरण से ही मुड़कर संयमी बने थे। जम्बू स्वामीजी ने शादी करके दूसरे ही दिन संयम ग्रहण कर लिया था। मेरे उर में भी इस वरमाला ने ज्ञान का उजाला किया है, तो अब मुझे अपने निश्चय से कोई विचलित नहीं कर सकता। इतने समय तक मोदभरी बातों के बहाव में बह गया सो वह गया। वह स्वयंप्रभा की ओर मुंह करके बोला– बहिन स्वयंप्रभा! बोलो आपका क्या विचार है?

इस बहिन शब्द से तो सब अवाक् रह गये। भाभी प्रभावती चीख पड़ी। बोली– देवरजी! यह क्या कर रहे हो। आपने तो मेरे सारे श्रम पर पानी फेर दिया। अरुण मुस्कराते हुए बोला– भाभी! जरा सोचो– मैं किसी के श्रम पर पानी नहीं फेर रहा हूँ। मैं तो सच्चे श्रम का मार्ग ही अब पा रहा हूँ। मुझे अब स्वयंप्रभा के प्रति प्रिया के भाव ही पैदा नहीं हो रहे हैं। मैं तो इसे कल्याणी की तरह ही देख रहा हूँ।

इतने में स्वयंप्रभा बोली– बहिन, बात बिल्कुल यथार्थ है। मुझे भी अब आपके देवर पति की तरह नहीं, भ्राता की तरह ही लग रहे हैं। इसलिए अब मेरा भी दृढ़ निश्चय हो गया है कि इस जीवन को संयम पथ पर ही लगाकर सार्थक करना है। उसी क्षण वह अरुण के चरणों में झुककर बोली– भैया! जिस मार्ग पर आपका चरण पड़ेगा, वही मेरे लिए पथ होगा। आपने अपने नाम के अनुसार ही मेरे अन्तर्मन में सम्यक् त्रिवेणी का अरुणोदय कर दिया है। मैं आपकी अंतिम लक्ष्यप्राप्ति तक आभारी रहूंगी। अरुण बोला– स्वयंप्रभाजी, आज आपके दर्शन से मेरी आत्मारूप स्वयंप्रभा के दर्शन हुए। मेरे संयम पथ में यह परम सहायक बनेगा। बस, फिर क्या था! तत्काल दोनों पूज्यवरों के चरणों में विनीत भाव से नमन करके बोले – पूज्यजनो! अब आप हमें आज्ञा देकर अनुगृहीत करें ताकि आपके आशीर्वाद से हमारा संयम पथ प्रशस्त बने।



(३९)

दोनों के इस आग्रह पर एक बार तो चारों तरफ गमगीन–सा वातावरण बन गया था। आखिर दोनों पक्ष वालों ने परस्पर गहन चिंतन किया और इस निर्णय पर पहुंच गये कि अब हमारा जोर ही क्या चल सकता है, जब दोनों का

दृढ़ निश्चय हो गया है। आखिर हम भी आर्हत धर्म के अनुयायी हैं और हमारा भी तो यही मनोरथ है कि वो दिन धन्य होगा जिस दिन इस आरंभ–परिग्रह से निवृत्त होकर अणगार बनेंगे? तो अब हमारे लिए संसार में क्या करना रह गया है। सुमतिचंद्र बोले– मैं अपने सारे कर्तव्य से निवृत्त हो गया हूँ। सिर्फ यही एक कार्य बाकी था। श्रेष्ठी सागरचंद्र बोले– मेरे भी तो यह एक कार्य ही शेष था। लेकिन अब इन्होंने तो अपने–आप ही हमको निवृत्त कर दिया है तो अब हम क्यों पीछे रहें? बस, मेरा तो दृढ़ संकल्प है कि इन्हीं के साथ प्रव्रजित हो जाऊंगा। सिर्फ अरुण की माता से अनुमति–भर लेने की देरी है। श्रेष्ठी सुमतिचंद्र बोले– आपको तो इतनी–भर देर है पर मेरे को तो अब इसमें भी इंतजार नहीं करनी पड़ेगी क्योंकि स्वयंप्रभा की मम्मी तो पहले से ही दृढ़ संकल्पित है कि स्वयंप्रभा के पीले हाथ होते ही मुझे संयम ग्रहण करना है। लेकिन स्वयंप्रभा ने स्वयं के हाथ संयम के सुरंग से रंग दिये हैं, अब हमको सोचना ही क्या है? बस, अब जल्दी से आराध्य आचार्य धर्मप्रियजी को आमंत्रण दे दिया जाय ताकि वे पधारकर हमें संयम प्रदान करके इन दोनों के साथ हमको भी अपनी चरण–शरण में ले लें।

इतने में अरुण बोला– पूज्यवरो! आज मैं धन्य हो गया हूँ आपके इस निश्चय को सुनकर। बस, अब देरी करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मन कहता है आज आचार्य धर्मप्रियजी महाराज बिना निमंत्रण के ही यहाँ पधार गये होंगे, आप खोज करावें। अरुण की इस बात को सुन सब आश्चर्य करते हुए बोले– तुम यह कैसे बोल रहे हो, क्या तुम को जातिस्मरण से भी विशिष्ट ज्ञान हो गया है?

अरुण बोला– तात! ऐसी तो कोई बात नहीं है पर आप जरा उस दिन की बात पर गौर करें जिस दिन आचार्यदेव के संथारे का अंतिम दिन था। मेरे अंतर विलापात से द्रवित होकर गुरुदेव ने आचार्य धर्मप्रियजी को फरमाया था कि आगामी वैशाख सुदी एकम को तुझे चन्द्रपुरी में रहना है, भूलना मत। और उसके कुछ समय बाद ही स्वर्गपथगामी हो गये। अरुण की इस बात को सुनते ही श्रेष्ठी सागरचंद्र बोले– वत्स! याद आ गई वह सारी बात। धन्य हैं गुरुदेव, जिन्होंने मरण शय्या पर सोते हुए भी हमारे मार्ग को प्रशस्त करते हुए शुभ आशीर्वाद दिया और वह सब संयोग अपने–आप जुड़ गया है। इतने में कुछ लोगों ने कहा– अरुणजी का फरमाना बिल्कुल सत्य है। आज प्रातः ही आचार्य धर्मप्रियजी महाराज यहाँ पधारे और नगर के बाहर के उद्यान में विराज रहे हैं। हमने उनके दर्शन भी किये हैं।

बस, फिर क्या था! सबका मन हर्षित हो उठा और बोले– वत्स! चलो सब आचार्यदेव के दर्शन करके अपनी भावना को चरणों में रखें, फिर आगे का सारा कार्यक्रम निर्धारित करेंगे। इतना कहकर चल पड़े सब आचार्यदेव के दर्शन हेतु। वे तो राजमार्ग से आगे बढ़ रहे थे इससे पहले ही कुछ व्यक्ति सीधे मार्ग से आचार्यदेव के चरणों में पहुंच गये और वहाँ घटित सारी घटना श्रीचरणों में रख दी। जिसको सुनकर वहाँ उपस्थित लोगों ने जोर से आचार्यदेव की जय, जैन धर्म की जय से आकाश गुंजा दिया। वृद्धा दासी भी हक्की–बक्की रह गई इस आवाज को सुनकर और पहुंच गयी उस उपवन के बाहर और सुनने लगी सारी बातें। तो मालूम पड़ा कि विवाह मण्डप में क्या घटित हुआ और आगे क्या होने वाला है?

वह जल्दी से दौड़कर सेठानी सिद्धिदेवी के पास आई और सारी बात जो सुनी वह बताकर बोली– वे सब अभी आचार्यदेव के दर्शन हेतु आ रहे हैं। जिसे सुनते ही सिद्धिदेवी हक्की–बक्की रह गई और सीधी चलकर वहीं उद्यान के बाहर पहुँच गई। इतने में विशाल जनसमूह के साथ श्रेष्ठी सागरचंद्र, सुमतिचंद्र और उनकी पत्नी तथा अरुण व स्वयंप्रभा, बहू प्रभावती आदि वहाँ पहुँच गये। श्रेष्ठी सागरचंद्र की दृष्टि ज्योंही सिद्धिदेवी पर पड़ी, बोले– वाह, वाह! यह भी आज यहीं पहुंच गई। जब चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम होता है तो सब निमित्त अपने–आप जुड़ जाते हैं। श्रेष्ठी सागरचंद ने सिद्धिदेवी को एक तरफ ले जाकर सारी घटित घटना के साथ अपना, अरुण का, स्वयंप्रभा और समधी, समधन का निर्णय भी बता दिया और बोले– अब तुम्हारा क्या विचार है? सिद्धिदेवी एक बार तो सकपका गई। फिर ज्ञानोपयोग से अपने–आप को स्थिर करके बोली– जब आप सबका यह लक्ष्य बन गया है तो मैं फिर पीछे कैसे रहूंगी? मेरे मन में तो पहले से ही विरक्ति छाई हुई थी। सिर्फ अरुण के लिए, आपके कारण ही इस संसार के प्रपंच में पड़ना पड़ा। नहीं तो मेरे मन में यह भाव हमेशा जगते थे कि मैं स्वयं संयम ले सकूं तो ठीक, नहीं तो मेरी सन्तान तो इस कीचड़ से निकले। आज हमारे लिए बड़ा शुभ दिवस आया है गुरुदेव की कृपा से। सेठ सागरचंद्र बोले– तुम्हारी बात सत्य है। गुरुदेव ने स्वर्ग में जाने से पहले ही यह तिथि बताकर आचार्यदेव को चंद्रपुरी पहुंचने का संकेत कर दिया। सिद्धिदेवी बोली– हां, हां। इस बात का चिंतन करके तो मेरे मन में उथल–पुथल मच गई थी। इसीलिए मैं मध्याह्न में ही यहाँ पहुँची और देख रही थी यहाँ के माहौल को। वास्तव में गुरुदेव ने स्वर्ग में विराजते हुए भी हमारे जीवनोद्धार की कैसी योजना बनाई है। बस, मेरा भी अब संयम लेने का दृढ़

निश्चय हो गया है। आप आचार्यश्री के चरणों में हम तीनों की भावना भी रख देना क्योंकि रात्रि के समय हम तो श्रीचरणों में नहीं पहुंच सकती हैं इसलिए हम बाहर से ही अपनी भावना गुरुचरणों में पेश करेंगे।



(४०)

सब आचार्य धर्मप्रियजी म.सा. के चरणों में भीतर पहुंचे और वंदना करके बैठ गये। अरुण भी उसी वर–वेश में वंदना करके आचार्यश्री के चरणों में पहुंचा। उसी समय शिवसुंदर मुनि ने चुटकी लेते हुए फरमाया– वाह भाई वाह! अरुणजी, मुझे तो प्रेरणा देकर आपने त्याग–मार्ग पर लगा दिया और आप शादी रचाकर आ गये। आप भी पूरे करामाती निकले।

अरुण कहने लगा– मेरे वंदनीय! करामाती तो मैं हूं ही। आपने अभी मेरी करामात देखी ही क्या है? करामात तो आपको अब देखने को मिलेगी। शिवसुंदर मुनि– अब क्या करामात बताओगे? अब दो होकर आये। फिर क्या पांच, छः या अर्ध बटालियन लेकर के आओगे? अरुण– पूज्यवर फिर की क्या बात है, आपके वचन तो आज अभी ही सिद्ध करके बताऊँगा।

इतने में आचार्यश्री ने फरमाया– अरुण! शादी करके आ गए? अरुण– कहाँ गुरुदेव! मैं इसीलिए तो आपके चरणों में आया हूँ। अब तो आपश्री के द्वारा ही वह रस्म पूरी होगी। मेरी ही क्या तीन–तीन जोड़ों की रस्म अब आपको ही अदा करनी है। साथ ही दहेज वगैरह भी आपके द्वारा ही देय होगा। मुनि शिवसुंदरजी बोले– अरुण! क्या बात है तेरे पर शादी का इतना क्या नशा चढ़ गया जो आचार्यश्री के सामने भी पहेलियों में बात कर रहा है। अरुण शिवसुंदर मुनि के चरणों में मस्तक रखकर बोला– सखा महाराज! अब भी क्यों मुझे तानों के तीरों से व्यथित कर रहे हो। शायद आपको कुछ भी मालूम नहीं पड़ा है। यदि मालूम पड़ जाता तो आप मेरी बातों को पहेलियां नहीं समझते।

शिवसुंदर मुनिजी बोले– अच्छा भैयाजी! अब आप ही बता दें अपनी करामात। मैं तो इसे पहेलियां ही समझ रहा हूं। क्योंकि अब तो आप पर मेरा नहीं, गंगेश का रंग चढ़ा हुआ है। गंगेश पास ही खड़ा था, बीच में ही बोल पड़ा– नहीं, नहीं, सखा मुनिवर! मेरा रंग तो हल्दी का था, वह उड़ गया। लेकिन आपका रंग किरमची (मजीठिया) है, जो अब उतरने वाला ही नहीं है। आपने सुना ही होगा, आप तो मुझे मझधार में अकेला छोड़कर चले आये और मैं एकाकी हो गया तो उस ऊब को मिटाने हेतु मैंने अरुण से दोस्ती जोड़ ली।

मैं इसको अपने रंग में रंगने में बहुत हद तक सफल भी रहा और इसको दूल्हा बनाकर दुल्हन को भेंट चढ़ाने हेतु यहाँ चंद्रपुरी में लेकर भी आ गया और यहाँ आने के बाद शादी से पूर्व की सारी रस्में अदा भी हो गई और वरमाला पहनाने की तैयारी भी हो गई। इतने में न मालूम वरमाला ने दोनों के घट में ज्ञान का कैसा उजाला किया कि ये दोनों विवाह मण्डप से ही आपके चरणों में पहुंच गये। इतना ही नहीं, इन दोनों के पीछे इनके माता–पिता भी तैयार हो गये हैं संयमपथ पर अग्रसर होने हेतु और ये सब आचार्यदेव के चरणों में इसी संदर्भ में बातचीत करने हेतु उपस्थित हैं। अब देखिए आप अरुणजी की करामात। सारी बात सुनकर शिवसुंदर मुनिजी हर्षविभोर हो गये।

इधर श्रेष्ठी सागरचंद्र और सुमतिचंद्र आचार्यदेव के चरणों में मस्तक रखकर बोले– प्रभो! अब हम आपकी शरण में आये हैं। अरुण और स्वयंप्रभा के प्रगट जातिस्मरण ज्ञान ने उनकी आत्मा में पूर्ण विरक्ति पैदा कर दी है और साथ ही स्वर्गीय गुरुदेव ने अपने संथारे के अंतिम दिन ही अरुण को फरमा दिया था कि अरुण मैं तेरी व्यवस्था कर दूंगा और आपको भी संकेत कर दिया था कि वैशाख सुदी एकम को चंद्रपुरी जरूर पहुंच जाना, आपको याद होगा ही। उसी क्षण आचार्य धर्मप्रियजी बोले– याद क्या है, हम तो गुरुदेव की आज्ञा पालने हेतु आज प्रातः ही यहाँ पहुँच गये थे। हालांकि इस बात को इतनी गहरी दृष्टि से नहीं पकड़ते हुए केवल गुरुदेव की अंतिम आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझकर ही यहाँ पहुँचे हैं। तो बस, गुरुदेव ने स्वर्ग में विराजकर भी हमारी कितनी चिंता रखी कि उन्होंने हमारे उद्धार हेतु ही यह सारा वातावरण निर्मित किया है। इसलिए अब कब और कहाँ पर दीक्षा का कार्यक्रम रखना उचित है– इस बात का आप ही निर्णय लेकर हमें बताने का आग्रह करें ताकि उसके अनुरूप व्यवस्था करने का परिजनों को संकेत कर देवें। इतने में श्रेष्ठी सुमतिचंद्रजी बोले– स्थान का निर्णय तो स्वर्गीय गुरुदेव ने ही कर दिया है। इसलिए दीक्षा का कार्यक्रम तो यहीं सम्पन्न होगा। सिर्फ तिथि का निर्णय आचार्यदेव फरमावें, वो आप और हम सबको शिरोधार्य है।

आचार्य धर्मप्रियजी महाराज साहब ने दोनों की बातें सुनकर मोदभरी मुस्कान से अंगुलियों पर कुछ गणित लगाकर फरमाया– देवानुप्रिय! आपकी भावना एवं गुरुदेव के पूर्व संकेतानुसार दीक्षास्थल चंद्रपुरी ही उचित है और दीक्षा का मुहूर्त वैशाख शुक्ला पंचमी सर्वश्रेष्ठ लगता है। तब दोनों ने परामर्श कर स्वीकृति प्रदान कर दी और जय–जयकारों से आकाश मंडल गूंजने लग गया। इतने में बाहर से आवाज आई–

तर्ज- पल्लो लटके.....

अर्ज सुनलो, गुरु – सा अर्ज सुनलो,
दे दो संयम रो दान, गुरु – सा अर्ज सुन लो।।टेर।।
बाप बेटा और सुसरा जमाई री जोड़ी आ चावे।
सासू बहू और मां बेटी री जोड़ी आ सुनावे।।
ले लो पति–पत्नी रा जोड़ा ने शरण में ले लो।। दे दो....
सगां–सगां और सगी–सगी री जोड़ी भी चल आई।
सास–जमाई मां–बेटा री जोड़ी है सुखदाई।।
आ भाई–बहिन री जोड़ी मान शरण दे दो।। दे दो....

सबने मंगलपाठ श्रवण किया और पुनः विवाह मंडप में आये और यही निश्चय हुआ कि दीक्षा भी इसी स्थान पर होगी, क्योंकि सामने ही विशाल प्रांगण खाली पड़ा है जिसमें पण्डाल को जितना चाहे उतना बढ़ाया जा सकता है। बाकी सारी तैयारी का भार चंद्रपुरी संघ ने अपने ऊपर ले लिया और आचार्यदेव ने भी पास ही के क्षेत्र में विचरने वाली महत्तरा साध्वीजी को समाचार दिला दिये ताकि वो भी समय पर चन्द्रपुर पहुंच जावें।

श्रेष्ठी सागरचंद्र और सिद्धिदेवी ने श्रेष्ठी सुमतिचंद्रजी से कहा– देखिए अब हमारी बात भी सुन लीजिए कि हम बरात लेकर आये हैं तो बहू को लेकर ही जायेंगे और दीक्षा अभिनिष्क्रमण हमारे साथ स्वयंप्रभा का भी हमारे भवन से ही होगा। हम वहाँ का सारा कार्यक्रम निवृत्त करके वैशाख शुक्ला चतुर्थी के मध्याह्न तक यहाँ पहुंच जायेंगे। उसके बाद का सारा कार्यक्रम यहां पर सम्पन्न हो जायेगा। इसलिए अब यहाँ से प्रातः मंगलवेला में ही बरात मय स्वयंप्रभा के विदा कर दीजिए।

श्रेष्ठी सुमतिचंद्र ने भी उचित समझकर बरात को प्रातः मंगल मुहूर्त में विदा कर दिया और खुद लग गये अपनी पारिवारिक व्यवस्था और दीक्षा महोत्सव की तैयारी करने में। इधर बड़ी धूमधाम से बरात रवाना हुई और द्रुतगति से संध्या के पहले–पहले कुशस्थलपुर पहुँच गई। उसके पहले ही सारे समाचार तो वहां ही क्या, सारे आस–पास के क्षेत्र में भी पहुंच गये थे। इसलिए सारे सगे–सम्बन्धी, भी जो विवाह प्रसंग में नहीं पहुंच सके, वे पहुंच गये और भव्य स्वागत के साथ नगर प्रवेश कराते हुए हवेली पर पहुंचे। बाहर तो सबके मुंह से धन्य–धन्य की आवाज गूंज रही थी पर भीतर में कुहराम मचा हुआ था। दोनों पुत्र, पुत्रवधुएँ आंसू डाल–डाल कर कह रहे थे– हे तात! आपने भी यह क्या निर्णय ले लिया। क्या अरुण ही आपका प्यारा बेटा है? जिसके ममत्व से आपने घर, द्वार, धन–संपत्ति और हम सबसे नाता तोड़ लिया? अब हमारा क्या होगा? हम किसकी छत्र–छाया में दिन बिताएंगे?

श्रेष्ठी सागरचंद्र और सिद्धिदेवी सबको गले लगाकर समझाने लगे– सुज्ञ पुत्रो एवं पुत्रवधुओ! आप जैसी आज्ञाकारी, विनीत संतानों को प्राप्त करके हम गौरव का अनुभव करते थे और कर रहे हैं। रही बात अरुण की और हमारी, अरुण तो वैसे ही विरक्त भाव में ही चल रहा था पर स्वयंप्रभा के निमित्त से और वह पुष्ट हो गया तो सहज हमारा और स्वयंप्रभा के माता–पिता का भी मन हो गया कि जब ये संयमपथ पर आरूढ़ हो रहे हैं इस अवस्था में, तो फिर अब हमको क्या करना है। हम तो संसार के सर्वकार्यों से निवृत्त हो चुके हैं। अब श्रावकोचित मनोरथ को सार्थक क्यों नहीं कर लें। इसलिए दृढ़ निश्चय कर लिया है। आप सब सर्वदृष्टि से योग्य हैं ही, बस धर्मभाव को विकसित करते रहें, कुल के गौरव को बढ़ाते रहें और हमारे संयममार्ग में सहयोगी बनें। वैसे ही यह जीवन क्षणभंगुर है, कब नष्ट हो जाय, कोई भरोसा नहीं। इससे अच्छा तो यही है कि जितना इससे कर्मक्षय का लाभ उठा सकें, उतना ही इसका सार है, बाकी तो सब असार ही है।

आखिर वे भी तो इन धर्म–वीर माता–पिता के पुत्र थे। वे अपने मन में धैर्य धारण करके अभिनिष्क्रमण की तैयारी में जुट गये। एक तो नगरश्रेष्ठी, दूसरा हर व्यक्ति से इतना स्नेहयुक्त व्यवहार, जिसने भी सुना, सब सगे–सम्बन्धी नगर–नागरिक उमड़ पड़े। कोई आंसू बहाकर तो कोई धन्य–धन्य कहकर सबका अभिनन्दन कर रहे थे। सबके लिए एक भव्य शिविका निर्मित की गई थी। ये अजब दीक्षार्थियों के अजब जोड़े सबका अभिनंदन स्वीकार करने हेतु हाथ जोड़कर शिविकारूढ़ थे। पुत्रों ने विशाल भोज व अभिनिष्क्रमण हेतु अपने धन का भंडार खोल दिया, साथ ही चारों दीक्षार्थी गरीब लोगों को दिल खोलकर दान देते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे। मुख्य बाजारों से गुजरते हुए कुशस्थलपुर के बाहर पहुंच गये जहाँ विशाल आम्रकुंज में शिविका से नीचे उतरे। विशाल जनसमूह एक विशाल धर्मसभा के रूप में परिणत हो गया। नगर के प्रतिष्ठित संस्थानों, नागरिकों, समाज व संघप्रमुखों ने अभिनंदन कर सजल नयनों से विदाई दी, क्योंकि सागर श्रेष्ठी का किसी–न–किसी रूप में उन सबसे आत्मीय सम्बन्ध जुड़ा हुआ था और अरुण का व्यक्तित्त्व भी सबके हृदय पर छाया हुआ था। सब धन्य–धन्य बोल रहे थे और आंसू बहा रहे थे।

विरक्तमना श्रेष्ठी सागर, सेठानी सिद्धिदेवी, अरुण सबसे क्षमायाचना करते हुए धैर्य बंधा रहे थे। स्वयंप्रभा अपने सास, श्वसुर और होने वाले पतिदेव की प्रतिष्ठा से गौरव का अनुभव कर रही थी। उन्होंने समय की स्थिति का चिंतन करते हुए सबसे पुनः विदाई ली और दीक्षा पर पहुंचने का आमंत्रण देकर रथ में बैठकर चंद्रपुरी की ओर प्रस्थान कर गये। कई व्यक्ति तो उनके साथ ही,

जिस को जैसा साधन उपलब्ध था उसी से, चंद्रपुरी की ओर बढ़ गये। कई अपने कार्य को निवृत्त कर पंचमी के सूर्योदय के साथ ही चंद्रपुरी पहुंच गये। मानो कुशस्थलपुर तो खाली–सा हो गया और ऐसा ही आस–पास के गांवों का हाल था।

विरक्तमना व पारिवारिक जन तो सब ही द्रुतगामी साधनों से चतुर्थी के मध्याह्न तक ही चंद्रपुरी पहुंचे थे। सारी चन्द्रपुरी जनसमूह से आकंठित हो रही थी। श्रेष्ठी सुमतिचंद्रजी की विशाल हवेली में सब कार्यक्रम निर्धारित थे। विशाल प्रीतिभोज एवं अभिनन्दन समारोह का कार्यक्रम भी उसी विवाह मण्डप में रखा गया था।

नरादित्य और गुरुदत्त का गायक मंडल गान कर रहा था–

संसार खारो लागे, वैराग प्यारो लागे।
म्हारा बेरागी बनड़ा ने, वैराग प्यारो लागे।।टेर।।

(1) वरमाला ने ज्ञान उजाला, किया अरुण–स्वयंप्रभा मन में।
वे बन गये आज वैरागी, वैराग छाया मन में।।
सब देख–देख हर्षावे, वैराग प्यारो लागे।।

(2) श्रेष्ठी सागर भी जागे और सभुतिचंद्र आये आगे।
दोनों जोड़े से संयम लेवण ने तत्पर बने आगे।।
यह देख आश्चर्य आवे रे, वैराग प्यारो लागे।।

(3) आचार्य धर्मप्रिय आये और सती मंडल भी लाये।
गुरु मुनिचंद्राचार्य आज्ञा को, अपने शीश चढ़ाये।।
सुन–सुन सब आनंद पावै रे, वैराग प्यारो लागे।।

(4) नहीं समझ पाये कोई इस दिन, पर आज आया वह शुभ दिन।
सबने जयनाद गुंजाया, हर्षाया कर अभिनंदन।।
नरादित्य मंडल गुण गावे रे, वैराग प्यारो लागे।।

इस प्रकार रात्रिकालीन अभिनंदन समारोह के साथ सभा विसर्जित हुई। इधर गंगेश उदासीनताभरे मन से चंद्रपुरी के बाजार में घूम रहा था, तो अचानक उसकी आदर्श विद्याश्रम के कलाचार्य पर दृष्टि पड़ गई। जो आज अपने छात्रों की परीक्षा–सभा में पहुंचे हुए थे। वह दौड़ कर उनके पास पहुंच गया और उनको नमस्कार करके पूछा – आज आप यहां कैसे पधारे? कलाचार्य बोले – गंगेश! बस, मेरा तो वही कार्य है, विद्यार्थियों को सर्वकलाओं में निपुण करके फिर परीक्षण सभा में उनकी योग्याताओं का मूल्यांकन कराकर जैसे तुमको और शिवसुंदर को अपने माता पिता को सौंपा वैसे ही आज भी उसी कार्यक्रम से यहां आया हूं। कहो, तुम्हारा और शिवसुंदर का गृहस्थ धर्म सुचारु, रूप से चल रहा है?

कलाचार्य के मुंह से शिवसुंदरजी का नाम सुनते ही बोला – गुरुदेव! मैं तो गृहस्थजीवन का निर्वाह कर रहा हूं। पर शिवसुंदर तो जैन मुनि बनकर कठोर त्यागी जीवन जी रहे हैं। संयोग से आज वे भी (शिवसुंदरजी भी) अपने धर्माचार्य धर्मप्रियजी के साथ पधारे हैं और जैन भवन में ही विराज रहे हैं। साथ ही आज जो नगरी में आप माहौल देख रहे हैं उसका भी रहस्य बता दूं क्योंकि अरुण से भी आप परिचित हैं ही? कलाचार्य बोले – कौन अरुण, वही नगरश्रेष्ठी सागरचन्द्रजी का लड़का, जो उस दिन तुम्हारा स्वागत करने आया था? गंगेश बोला – हां गुरुदेव! वही अरुण, जिसने हमको मुक्तामालाएं पहनाई थी और आपने बोलने की प्रेरणा दी थी। जब उसने बोलकर अपनी भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत की, तो सारी परीक्षण सभा में आश्चर्य पैदा हो गया था। आप स्वयं ने भी उसकी योग्यता की सराहना की थी। कलाचार्य बोले – हां हां, वह था ही वैसा प्रतिभा–सम्पन्न। उसका आभ्यन्तर व बाह्य व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। अब वह क्या कर रहा है?

गंगेश बोला – गुरुदेव! मैं उसी के बारे में तो बता रहा हूं आपको कि जब शिवसुंदरजी ने त्यागमार्ग अपना लिया था तो मैं एकाकी पड़ गया। संयोगतः अरुण से मित्रता जुड़ गई और प्रगाढ़ होती गई। मैं उसके अन्तर्मन में छाये शिवसुंदरजी की तरह ही संसारी उदासीनता के घेरे को तोड़कर विवाह मंडप तक भी ले आया, वैशाख शुक्ला एकम को सारी शादी की रस्में भी अदा हो गई यहां के श्रेष्ठी सुमतिचंद्र की लाड़ली पुत्री स्वयंप्रभा के साथ और वरमाला पहनाने की मंगलवेला भी प्रस्तुत हो गई। दोनों उत्सुकता से वरमाला पहनाने को तत्पर भी हो रहे थे। पर न मालूम गुरुदेव, उसी समय उस वरमाला ने ऐसा ज्ञान उजाला दोनों के अन्तर्मन में जगा दिया कि दोनों भोगी से त्यागी बनने को दृढ़ संकल्पित हो गये। सबने हजारों–हजार प्रयत्न किये, पर एक भी कारगर नहीं हुआ, जो नहीं हुआ। उनके त्याग की दृढ़ता से उन दोनों के माता–पिता भी उसी मार्ग का अनुसरण करने हेतु दृढ़ संकल्पित हो गये और आज उनके दीक्षा महोत्सव की ही धूम मची हुई है। कल वे सब जैनाचार्य धर्मप्रियजी म.सा. के चरणों में दीक्षित होवेंगे। मैं ही क्या, सारा कुशस्थलपुर नगर और आस–पास के हजारों व्यक्ति आज इसीलिए यहां आये हुए हैं।

कलाचार्य साश्चर्य बोलने लगे – गंगेश! यह क्या कह रहे हो – शिवसुंदर, जो इतना रसिक था, वह जैन मुनि बन गया और अरुण, ऐसे व्यक्तित्व का धनी, ऐसा सुकुमार और विशाल ऐश्वर्य का धनी और जैन मुनि बनने जा रहा है? और उसके साथ उसके माता–पिता और स्वयंप्रभा भी? बड़े आश्चर्य की बात है। जैन मुनि की कठोर साधना ऐसे सुखमय जीवन जीने वाले प्राणी कैसे साध सकेंगे?

गंगेश बोला – चलिये गुरुदेव! मैं आपको शिवसुंदर मुनिजी और उन सब से अभी मिला देता हूं। कलाचार्य के दिल में उत्सुकता जगी और गंगेश के साथ जैन भवन में पहुंचे। पहले आचार्य धर्मप्रियजी से गंगेश ने परिचय कराया फिर उनकी अनुज्ञा से शिवसुंदरजी की सेवा में पहुंचे। जिनको देखते ही कलाचार्य भावविभोर हो गये। अरुण व सभी दीक्षार्थी भाई–बहिन भी वहीं खड़े थे। अरुण तुरन्त कालाचार्यजी को पहचान करके सामने गया और बोला – पधारिये! कलाचार्यजी को देखकर शिवसुंदर मुनि भी गद्‌गद हो गये। कलाचार्य ने सबको देखकर कहा – मुझे आश्चर्य, महाआश्चर्य हो रहा है कि आप सब इस कठिन मार्ग पर कैसे चल पड़े हैं? शिवसुंदर मुनि बोले – आपके सत्संस्कार एवं गुरुदेव के सत्संग से क्या नहीं हो सकता? जीव का अपने–आप अधोगमन से ऊर्ध्वगमन होने लग जाता है। कलाचार्य को उनके चेहरे पर छलकती उत्सुकता एवं परम शांति के प्रवाह को देखकर आनन्दानुभूति हुई। पर वे अपने कौतूहल को नहीं दबा सके और बोल पड़े– शिवसुंदरजी! क्या उस प्रश्न का समाधान मिल गया आपको? शिवसुंदरजी म. बोले – कलाचार्यजी! अब मैंने समझ लिया है कि स्त्री पुरुष का प्रेम केवल विष मिश्रित मिष्टान्न ही है। वही प्रेम जब सुदेव–गुरुधर्म के साथ जुड़ जाता है तो रागद्वेषादि के विकार के विष को बाहर फेंककर आत्मा में परमात्म ज्योति जगा देता है। फिर संसार के सारे सम्बन्ध विषतुल्य प्रतीत होने लग जाते हैं। बस, जिस दिन इस यथार्थ को समझा, उसी दिन से मेरी दिशा और दशा ही बदल गई और आज इस दशा में आपके सामने हूं। अरुण बोला– कलाचार्यजी यही मेरी व स्वयंप्रभा की दशा भी बनी है, साथ ही मेरे पूज्यवरों की भी। कलाचार्य भावविभोर होते हुए बोले – मैं आप जैसे विद्यार्थियों को पाकर धन्य हूं। मुझे नमस्कार करने वाले विद्यार्थी तो बहुत मिले पर मुझे अपने चरणों में झुकाने वाले विद्यार्थी तो आप ही मिले हैं। इसलिए मैं आपके त्याग–वैराग्य–पांडित्य को नमन करता हूं और अब यह पावन दीक्षा महोत्सव देखकर ही जाऊंगा।



(४१)

इधर वैशाख सुदी पंचमी का सूर्योदय हुआ। श्रेष्ठी सुमतिचंद्रजी की विशाल हवेली में अभिनिष्क्रमण की तैयारी चल रही थी। श्रेष्ठीपुत्रों ने पहले तो ममत्व भाव से इजाजत देने में खूब आनाकानी की। आखिर वे भी धर्मज्ञ थे और संयम–जीवन ही सार है, इस सत्य को समझते थे। वे इस सद्‌संस्कार से अपने मन को दृढ़ बनाते हुए अभिनिष्क्रमण हेतु तत्पर हो गये। स्वयंप्रभा को प्रीतिदान

दिया जाने वाला सारा धन और श्रेष्ठी सागर के पुत्रों ने अरुण के हिस्से का धन और बहू स्वयंप्रभा को दिया जाने वाला प्रीतिदान और उसके साथ विपुल धनराशि जोड़कर एक विशाल शिक्षा–दीक्षा फण्ड, साधर्मी कोष, जीवदया कोष आदि की स्थापना कर दी। गरीबों को मुक्तहस्त से अभिनिष्क्रमण के समय उछालनी में सब वैरागियों से उछाल कराई। विशाल प्रीतिभोज से निवृत्त होकर पति–पत्नी के तीन, सास–बहू का एक, पिता–पुत्र का एक, श्वसुर–जमाई का एक, मां–बेटी का एक, माता–पुत्र का एक, सास–जंवाई का एक– ऐसे नौ जोड़ों को तीन शिविकाओं में बिठाया। उस समय शिविकाएं ऐसी लग रही थी मानों देवविमान हों। अभिनिष्क्रमण जुलूस श्रेष्ठी सुमतिचंद्रजी की हवेली से प्रारम्भ होकर मुख्य बाजारों से होता हुआ दीक्षामंडप की ओर आगे बढ़ रहा था। बैंडबाजों की ध्वनि, गीतों की मधुर गुंजार व जय–जयकारों की दिव्य ध्वनि से आकाश गुंजायमान हो रहा था। धीरे–धीरे यथासमय वह दीक्षा मण्डप के नजदीक पहुंच गया।

उसी दीक्षा मंडप में आचार्य धर्मप्रियजी एक उच्च पाट पर विराजमान थे। एक तरफ संतमंडल और दूसरी तरफ साध्वीमंडल अपने धवल परिधान की धवल चंद्रिका से सारे मंडप को आलोकित कर रहा था। ज्योंही दीक्षार्थियों की दृष्टि आचार्यदेव एवं संत–सती मण्डल पर पड़ी, वे शिविकाओं से नीचे उतर पड़े। सीधे गजगति से मंद–मंद मुस्कान बिखेरते हुए आचार्यदेव के चरणों में पहुंच गये और विधिवत् वंदन करके बैठ गये। इधर सारा विशाल दीक्षामंडप जनसमूह से इतना खचाखच भर गया कि लोगों को उसके बाहर ही खड़ा रहना पड़ा।

सब वैरागियों ने खड़े होकर अपनी हर्षानुभूति की अभिव्यक्ति देते हुए परिजनों से एवं उपस्थित सभी लोगों से क्षमायाचना की। मंगलपाठ सुनकर शिर मुंडन व वेश परिवर्तन हेतु पास के विशाल कक्ष में पहुंच गये। इधर प्रचंड मुनिजीजी सात बार महामंत्र का उच्चारण कर सभा में शांति की लहर फैलाते हुए कहने लगे कि आज मुझे परम हर्ष होता है कि हमारे जीवनप्रेरक जीवनपर्यन्त हमारे साथ संयमी जीवन जीने का संकल्प लेने आ रहे हैं। पहले तो मुझे उनके विवाह के समाचार सुनकर कोई अन्यथा विचार उत्पन्न होने लगे। फिर भी हृदय के किसी कोने से एक श्रद्धा की किरण प्रस्फुटित होती हुई बोल रही थी– नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वे जरूर स्व–पर जीवन के कल्याण–पथ पर बढ़कर हमारा साथ निभायेंगे। आज मझे परमानंद होगा – मेरे प्रेरणापुंज का स्वागत करके।

इधर शिवसुंदर मुनिजी खड़े हुए और बोले – आज मुझे परमानन्द की अनुभूति हो रही है उस घड़ी की इन्तजार करते हुए कि हमको कलायतन की

योग्यता की परीक्षण सभा में जिन अरुणजी व श्रेष्ठी सागरचंद्रजी ने मुक्तामाला पहनाकर स्वागत किया, साथ ही अरुणजी ने अपनी मित्रता के संदेश में प्रेरणा दी थी कि धर्मकला ही सर्वश्रेष्ठ कला हैं, उससे ही मुझ में अन्तर्प्रेरणा जगी। इन्हीं के संसर्ग से गुरु–सान्निध्य की प्राप्ति हुई और मेरा इस रूप में परिवर्तन हुआ। आज उन्हीं का रत्नत्रयी रूप मुक्तामाला पहनाकर स्वागत करने की पावन बेला है।

उसी मंच पर आदर्श कलायतन के आचार्य भी उपस्थित होकर बोलने लगे – आज के सुअवसर को पाकर मैं अपने–आप को धन्य मान रहा हूं। क्योंकि मेरे जीवन में मुझे मेरे ऐसे विद्यार्थी तो गांव–गांव, शहर–शहर में मिलते रहते हैं, जो मुझे देखते ही चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं, पर आज मुझे मेरे ऐसे विद्यार्थी मिले हैं कि जिन्हें देखकर सहज मेरा मस्तक उनके चरणों में झुकने को उत्सुक हो रहा है। वे हैं शिवसुंदर मुनिजी और मुनिवेश को धारण करके पधारने वाले ही हैं अरुण मुनिजी के साथ ही साध्वी स्वयंप्रभाजी व दोनों के माता–पिता, जो सब भौतिक सुख–साधनों को तिलांजली देकर साधना के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चरण बढ़ा रहे हैं।

इधर गंगेश भी अपने को रोक नहीं सका। वह भी मंच पर आकर कहने लगा – एक कलाचार्य। आदर्श विद्याश्रम में कलाएं सीखी, वर्षों साथ–साथ जीवन जीया उन मेरे बालसखा शिवसुंदरजी ने मुझे मझधार में छोड़कर संयमपथ अपना लिया तब मैंने अपने एकाकीपन को मिटाने हेतु अरुणजी की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया। मैंने इन्हें अपने रंग में रंगने में इतनी सफलता पाई कि उन्हें विवाह मंडप तक पहुंचा दिया। लेकिन होनहार कुछ और ही थी कि वरमाला ने इन दोनों में ऐसा ज्ञान का उजाला भर दिया कि ये दोनों विरक्ति के पथ पर चल पड़े हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों के माता–पिता भी इस पथ पर चल पड़े हैं। आज यह दृश्य देखकर में अभिभूत हूं। हालांकि मेरा जन्म शैव मतानुयायी के घर पर हुआ था, पर मैं जैन धर्म की यथार्थता की अनुभूति कर रहा हूं। इसलिए आज के इस पावन प्रसंग पर गुरुदेव आचार्य धर्मप्रियजी से निवेदन करता हूं कि मेरे जीवन–साथियों की तरह महाव्रती तो फिलहाल नहीं बन सकता परन्तु मुझे आप सम्यक्त्व सहित अणुव्रत दीक्षा प्रदान कीजिए, जिसकी शिक्षा तो मैं स्वर्गीय गुरुदेव से प्राप्त कर चुका हूँ। आचार्यदेव ने गंगेशजी को सम्यक्त्व दीक्षा प्रदान की।

इतने में पुनः जय ध्वनि से सारा दीक्षामंडप गूंजने लगा। सब की दृष्टि पड़ी– सभी दीक्षार्थी साधु–साध्वी के वेश को धारण करके मधुर मुस्कान बिखेरते हुए पंडाल में प्रवेश करके गुरुचरणों में उपस्थित हो रहे हैं। उनके चेहरे पर

इतना हर्ष व्याप्त था मानो आज उनको अष्टसिद्धि नवनिधि से भी महान् वैभव की उपलब्धि हो रही हो। सबने मस्तक झुकाते हुए गुरुचरणों में प्रवेश किया और वंदन करके सामने खड़े हो गये और अर्ज करने लगे –

(तर्ज – हे प्रभु वीर दया के सागर...............)

हे गुरुदेव दया के सागर, संयम–दान करो कृपा कर।।टेर।।

(1) भवबंधन से हम घबराये, आपकी चरण शरण में आये।
हम पर महर करो करुणाकर।। हे गुरुदेव.....

(2) धन–परिजन लगता सब खारा, तप–संयम लगता है प्यारा।
पूरो आशा बन सुधाकर।। हे गुरुदेव...

(3) आपकी आज्ञाओं पर सारा, तन–मन अपना हमने वारा।
आये दृढ़ संकल्प बनाकर।। हे गुरुदेव......

(4) अब ना नाथ करो कुछ देरी, सुनलो अर्ज अब आप हमारी।
होवें सुखी 'धर्म' धन पाकर।। हे गुरुदेव.....

गुरुदेव उनकी अन्तर्भावना की पुकार सुनकर फरमाने लगे–

(तर्ज – मीठे-मीठे काम भोग......)

जरा सोचलो अपने मन में, अब भी सब देवाणुप्पियां।
बड़ा कठिन संयम का पथ यह, सोचो तुम देवाणुप्पियां।। टेर।।

(1) हिंसा झूठ चोरी व मैथुन, परिग्रह को त्यागना।
तीन करण और तीन योग से, पूरी ममता मारना।
रात्रि में चौविहार का पालन करना, है देवाणुप्पियां।। बड़ा कठिन....

(2) ईर्यासमितिपूर्वक चलना, भाषा समिति से बोलना।
एषणासमितिपूर्वक करना, हर वस्तु की याचना।।
शरीर वस्त्र की सजावट को, तजना है देवाणुप्पियां।। बड़ा कठिन....

(3) जीवन–भर पैदल ही चलना, बावीस परीषह जीतना।
जूते और सवारी की भी, नहीं रखना दिल चाहना।।
बावन ही अनाचार को तजकर, चलना है देवाणुप्पियां।। बड़ा कठिन..

(4) अनुशासन में रहना हरदम, मर्यादा नहीं तोड़ना।
जमाने की आंधी में भी, अपने को नहीं मोड़ना।
ऐसी 'धर्म' धैर्यता हो तो, बोलो तुम देवाणुप्पियां।। बड़ा कठिन....

और बोले–भाइयो! क्या आपकी पूर्ण तैयारी है? तब दीक्षार्थी बोले–

(तर्ज –)

सोच लियो है गुरुवर मन में, जरा नहीं घबरावांला।
प्राण जावेला तो भी प्रण री, पूरी टेक निभावांला।।टेर।।

(1) अनुशासन में रहकर गुरुवर, आत्मज्योति जगावांला हो–2।
जमाने री आंधी सूं डर, कमजोरी नहीं लावांला हो।।
(2) संयम री इण श्वेत चद्दर पर, कलंक नहीं लगावांला हो–2।
दोनों कुल री इज्जत रो, म्हां पूरो ध्यान रखावांला हो।।
(3) संयम मर्यादा री पूरी, प्रण सूं आण निभावांला हो–2।
परीषह री परवाह तजकर, पूरी दृढ़ता लावांला हो।।
(4) शूरवीरता धारण करने आगे बढ़ता जावांला हो–2।
कृपादृष्टि बस कर दो गुरुवर, "धर्म" ध्वज फहरावांला हो।।

जब आचार्यदेव ने उनकी पूर्ण दृढ़ता देखी तो फिर पारिवारिक सदस्यों की अनुमति के साथ वहाँ उपस्थित जनसमुदाय की भी अनुमति ली और फिर महामंत्र का उच्चारण, धम्मो मंगल मुक्किट्ठं गाथा का उच्चारण करके दीक्षा–विधि प्रारंभ की। सबसे पहले ईर्यावही के पाठ के बाद तस्सउत्तरीकरण के पाठ का उच्चारण करके दो लोगस्स के ध्यान का निर्देश दिया। ध्यान की संपूर्ति के बाद ध्यानशुद्धि के पाठ का उच्चारण करके प्रगट रूप से लोगस्स के पाठ से चतुर्विंशति जिनस्तुति की और फिर सबको पुनः सावधानी दिलाते हुए तीन बार "करेमि भंते" की पाटी का उच्चारण करके जीवनपर्यन्त के लिए तीन करण तीन योग से सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान करवाकर फिर दो बार शक्रस्तव का उच्चारण करके सिद्ध अरिहंत प्रभु की स्तुति की और उसके तुरंत बाद प्रचंड मुनि, शिवसुंदर मुनिजी आदि संतों ने और साध्वियों ने नवदीक्षित साधु–साध्वियों का स्वागत करते हुए सबको गुरुदेव आचार्यश्री धर्मप्रियजी म.सा. की सेवा में प्रस्तुत किया। उन्होंने तीनों सन्तों का शिखालोच किया और महत्तरा साध्वीश्री ने नवदीक्षिता सतियों का। सबने आचार्यश्री और सभी संतों को वंदन किया। जिसके उत्तर में सबने संयमी जीवनप्रवेश की सुख–साता पूछकर शुभकामनाएँ अभिव्यक्त कीं और अपने–अपने समूह में आसन बिछाकर बिठा दिया।

इतने में प्रचंड मुनिजी एवं शिवसुंदर मुनिजी बोले–

(तर्ज– तेरे पूजन को भगवान्....)

हमारे प्रेरक मुनिवर आज, आपका स्वागत है
करो अभिनंदन स्वीकार, आपका स्वागत है।।टेर।।
मुक्तामाल पहनाकर आपने, उस दिन स्वागत जो कीना।
धर्मकला ही श्रेष्ठ कला है, यह सन्देश आपने दीना।।
इससे पाया बोध अपार, आपका स्वागत है।।
अब हम करते रत्नत्रयी से स्वागत

छूटे आपकी यह गतागत
यह "धर्म" स्नेह दिलधार, आपका स्वागत है।।

बाद में गंगेश भी खड़ा हुआ। गंगेश की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, फिर भी मनोबल संजोकर अपने भावों को कविता के रूप में प्रस्तुत करने लगा–

तर्ज– पल्लो लटके....

(1) बताऊँ कैसे दिल की बात, गुरुवर साफ सुनलो।
यही तो जीवन का है राज, गुरुवर साफ सुनलो।।टेर।।

(2) बालसखा दो मित्रों के दिल का, देखो गुरुवर हाल।
एक खुशी से झूम रहा, एक का है बेहाल।।
देखो कैसा हो रहा हाल, गुरुवर आप सुनलो।।

(3) शिवसुंदर मुनिजी तो पाकर, अरुण मुनि को हर्षाये।
गंगेश छायावत् साथ रहकर भी, नयनों नीर बहाये।।
उसके दिल में उठ रही झाल गुरुवर।।

(4) ये तो मुझको छोड़ चले, फिर अरुण को मित्र बनाया।
खूब रंगत में रंगा उसको, फिर भी नहीं रह पाया।।
लीना संयम उसने धार गुरु–सा।।

(5) मात–पिता और सास–श्वसुर व स्वयंप्रभा भी आई।
तीनों जोड़ों में नव–जोड़ों का रहस्य रहा समाई।।
कितनी आश्चर्य की बात गुरु–सा।।

(6) अब गंगेश की एक कामना, "धर्म" ध्वज फहराना।
अष्टकर्म से मुक्त बनकर, मोक्षपुरी में जाना।।
पाना शाश्वत सुख का राज गुरु–सा।।

नवदीक्षित अरुण मुन ने उद्‌गार व्यक्त किये–
आये हैं प्रभु शरण तुम्हारे, कर्म रोग निवृत्ति को।
दे दो ऐसी औषध गुरुवर, पा जायें हम मुक्ति को।।टेर।।
नव–घाटी के विकट मार्ग को पार कर हम आये हैं।
जन्म–मरण की महाव्यथा हम, भोग–भोग घबराये हैं।।
छूट जाएं हम उन कष्टों से, चाहें ऐसी युक्ति को।।
क्रोध मान माया व लोभ ये, चार कषाय हैं दुःखकारी।
पुनः–पुनः कसने को गुरुवर हरदम रखते तैयारी।।

कस न सकें ये किंचित् हमको, ऐसी सम्यक् शक्ति दो।।
करके परास्त हम गुरुवर उनको, एक दिन जिन हम बन जायें।
कर्म कलिमल धोकर गुरुवर, ज्योत में ज्योत समा जायें।।
सुन लेना यह गुरुवर सबकी, "धर्म" भाव अभिव्यक्ति को।।

फिर सब संत–सतियों ने आचार्यदेव का शुभाशीर्वाद प्राप्त किया अ सारी जनता ने आचार्यदेव को वंदन–नमस्कार करके मंगलपाठ श्रवण किया अ अपनी दिशा में प्रस्थान कर दिया। दीक्षा– समारोह के सात दिन बाद आठ दिन सब नवदीक्षितों को छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान कराया गया। उसके ब जुट गये विनीत भाव से ज्ञान–दर्शन–चारित्र के आराधन में एकाग्रचित्त करके, मोक्ष मार्ग की आराधना करके सिद्ध–बुद्ध–अविकारी बनने में।

इति शुभम्

